॥ श्रीः ॥

संक्षिप्तवाल्मीकि-रामायणम्

(गवेषणात्मकं शोधपूर्णसंस्करणम्)

संस्कर्ता

श्री भागवत प्रसाद सिंह

सम्पादक

ठकुरोपाह्व श्रीकृष्णमोहनशास्त्री

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

विविधानवद्यविद्याविद्योतितान्तःकरणानां
विविधोपाधिसमलङ्कृतानां दिल्ली
विश्वविद्यालय संस्कृतविभागाध्यक्षाणां
डा. श्री सत्यव्रत शास्त्रि महाभागानां
करकमलयोः
आदरं सविनयं सबहुमानं
समर्पयामि
सम्पादकः कृष्णमोहनठक्कुरः
१. ५. ८३

॥ श्रीः ॥

संक्षिप्तवाल्मीकि-रामायणम्

(गवेषणात्मकं शोधपूर्णसंस्करणम्)

संस्कर्ता

श्री भागवत प्रसाद सिंह

卐

सम्पादकः

ठक्कुरोपाह्वः श्रीकृष्णमोहनशास्त्री

एम० ए० (द्वितय), आचार्यः

(प्रधानाचार्य : रणवीर-संस्कृत-महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मूल्यं दशरूप्यकम्

प्रकाशक :—

भागवत प्रसाद सिंह

मु० बरौनी

पो० बरौनी डयौढ़ी

जि० बेगूसराय (बिहार)

वि० सं० २०३०

प्रथमसंस्करण १९७३

मुद्रक : अमर मुद्रणालय :
(काशी गोशाला) टाउनहाल, वाराणसी
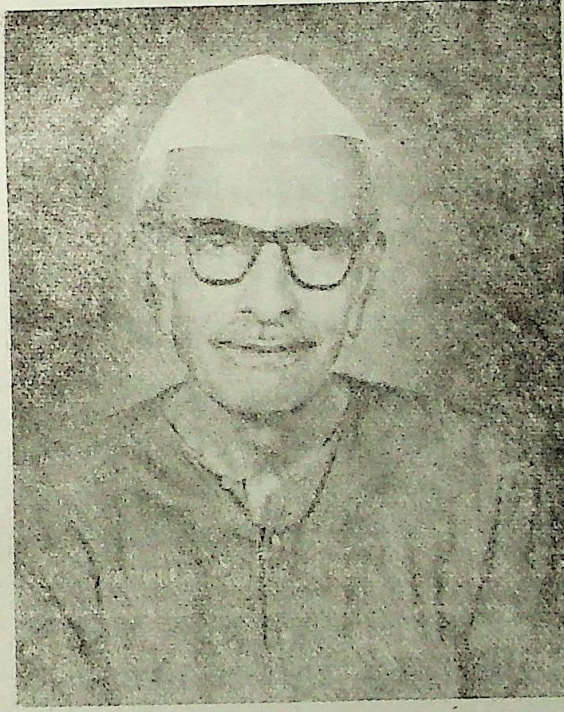
संस्कर्ता

एतद्ग्रन्थस्य संस्कर्ता सिंहोपाधिविभूषितः ।
श्रीभागवतशर्माऽयं द्योतते वार्धकेऽपि यः ॥

प्रस्तावना

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना ॥

उपर्युक्त वन्दनामन्त्रों से ज्ञात होता है कि इस रामायण के प्रणेता महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि हैं। दशरथनन्दन श्रीराम नारायण के अवतार हैं। ब्रह्मस्वरूप श्रीराम के चरित्र का ही वर्णन इस रामायण महाकाव्य ग्रन्थ में है, अतः यह 'वेद' है।

महर्षि वाल्मीकि का परिचय

महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि का पूरा परिचय तो पूर्वोद्धृत वन्दना श्लोकों से ही मिल जाता है, फिर भी अपना परिचय उन्होंने उत्तर काण्ड में उद्धृत ९६ वें सर्ग के १९ वें श्लोक में श्रीराम के राजसूय यज्ञस्थली में, सीता के शपथ के पूर्व दिया है, यथा—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन ।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥

इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि प्रचेता (वरुण) के दशवें पुत्र थे। अब उनके अभिजात के सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह का स्थान तो रह ही नहीं जाता है, क्योंकि उनका अपना दिया हुआ परिचय अकाट्य है। पर अन्यत्र कहीं कहीं उन्हें नीच जाति का बताते हैं। कहीं यह भी आया है कि यह थे तो ब्राह्मण, किन्तु किसी व्याध की संगति से यह हिंसादि अनेक दुर्गुणों से युक्त हो दराचारी हो गये थे और एकबार सप्तर्षियों के संयोग एवं उपदेश से उन दुर्गुणों से मुक्त हुए और इन्होंने राममन्त्र—'मरा मरा'—जपकर सिद्धि पाकर रामायण की रचना की और अमर कीर्ति पायी। गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में भी इस तरह का वर्णन जहाँ तहाँ आया है, पर कदाचित् यह जन्मान्तर की बात रही होगी। इस सम्बन्ध में विशद विवेचन आगे श्री पं० कृष्णमोहन ठाकुर जी के लेख में किया गया है।

रामायण तथा आदि कवि की महत्ता

कुछ भी हो आदिकाव्य श्रीरामायण की मान्यता समस्त आस्तिक जगत में वेदतुल्य ही है। उसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि, विश्व के आदि कवि हैं, अतः सभी परवर्ती कवियों एवं पद्यात्मक ग्रन्थकर्ताओं ने उन्हें गुरु मानकर नमन किया है। रामायण विश्व का आदिकाव्य है। यह मौलिक आदि महाकाव्य भारतीयों की ही नहीं सारे विश्व की अमूल्य गौरवनिधि है, जिसमें सर्वतोमुखी ज्ञान-भण्डार संचित है।

रामायण के सौष्ठव गुण

अनेक विचारकों की सम्मति है कि परवर्ती विद्वानों ने जो काव्यों के पारिभाषिक लक्षणादि लिखे हैं, उनकी आधारशिला रामायणवर्णित लक्षण ही हैं। रामायण के सुन्दरकाण्ड तो यथार्थतः अपने काण्डनाम की सार्थकता एवं अनुरूपता प्रकट करता है। त्र्यम्बकराज मखानी ने तो इस काण्ड के प्रायः सभी श्लोकों को अलंकार एवं रसादियुक्त माना है। यही नहीं, बल्कि 'सुन्दरे किं न सुन्दरम्' की उक्ति वस्तुतः सत्य है। इस काण्ड में भी पाँचवा सर्ग तो समग्र काव्यगुणों से ओतप्रोत, नितान्त सुन्दर उतरा है। ऐसे तो रामायण महासागर के प्रत्येक श्लोक तरङ्ग अपना अपना भिन्न महत्त्व रखता है और भिन्न मूल्य भी।

आश्चर्य तो इस बात की है कि आदि कवि के समय अथवा उसके पूर्व किसी काव्यग्रन्थ का अस्तित्व तो था नहीं, फिर बृहत्काय एवं अद्वितीय महाकाव्य की ऐसी सुन्दर रचना हुई क्योंकर, इसका भी समाधान इस पावन ग्रन्थ से ही हो जाता है। तपोबल से महर्षि ने जगत् कर्ता ब्रह्मा का साक्षात्कार किया, उनसे रामायण को नैसर्गिक काव्यता का प्रसाद पाया और सरस्वती ने स्वयं उनकी सहज भावना को जगाकर उन्हें अपने इष्ट कार्यसम्पादन की प्रेरणा दी। फिर क्या था, सुन्दर कवितास्रोत फूट पड़ा। सन्त कवि की कविता स्वभावतः काव्य के समग्र उपादानों से सम्पन्न रहती है।

प्रकृतिचित्रण तथा संवाद की विलक्षणता

इस महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण तो अनुपम है ही संवादभाग भी कुछ कम रुचिकर एवं आकर्षक नहीं हैं। हनुमान् जी की वाक्पटुता एवं आलाप-कुशलता देखते ही बनती है, चाहे वह श्रीराम लक्ष्मण के साथ हो अथवा लंकास्थित महारानी सीता के साथ, चाहे रावण के समक्ष हो या चाहे भरत के साथ। बोलने की विलक्षण शैली, तर्कयुक्त प्रस्तुतीकरण, वस्तुस्थिति का ज्ञान ये सारे गुण उन्हीं में निहित थे। इसीलिये तो उन्हें 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' कहा जाता है। रावण, विभीषण, भरत, राम आदि के सम्वाद भी अपने अपने ढंग के रोचकतापूर्ण हैं।

सर्वशास्त्र ज्ञान की समन्वितता—

शास्त्र, न्याय, मीमाँसा, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, गणितशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, व्यवहारपरक ज्ञानादि का समावेश इस ग्रन्थ में यथास्थान सुन्दर ढंग से हुआ है।

तपस्या का महत्त्व दर्शन

तपस्या की महत्ता का प्रतिपादन भी जोरदार ढंग से हुआ है। इस ग्रन्थ का आरंभ ही 'तप' शब्द से हुआ है।

"तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदांवरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्" ॥

प्रथम अर्धाली में दो बार 'तप' शब्द का प्रयोग ही इसके महत्त्व को प्रकट करता है। महर्षि की ऐसी अद्भुत कवितारचना तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति का मूलभूत साधनस्रोत उनकी प्रकाण्ड तपश्चर्या ही थी।

सर्वसिद्धियों का आधार तपस्या

विश्वामित्र जी ने अपनी विचित्र तपस्या द्वारा क्या नहीं किया ? यहाँ तक कि उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी तपस्या द्वारा ही एक क्षत्रिय राजा से ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त कर लिया। तप के प्रभाव से ही तो भगीरथ ने गङ्गा को धराधाम में ला पहुँचाया था न? इसी प्रकार चूली (शृङ्गि)ऋषि की तपस्या, गौतम तथा भृगु आदि ऋषियों की तपस्या का वर्णन है। महर्षि वाल्मीकि के मतानुसार स्वर्गादि जितने भी सुख भोग हैं, उनका एकमात्र हेतु तपस्या ही है। किमधिकं रावणादि के राज्य सुख, शक्ति, आयु आदि का मूल भी तप ही है। श्रीराम तो एक विशुद्ध तपस्वी थे ही।

सभी ऋषिगण को श्रीराम के यथार्थ तत्त्व का ज्ञान

श्रीराम दण्डकारण्य में प्रत्येक तपस्वी के आश्रम में जाते हैं, जहाँ वैखानस बालखिल्य, सुतीक्ष्णादि भिन्न भिन्न श्रेणी के तपस्वी विद्यमान थे। वे सब के सब आत्मज्ञानी द्रष्टा थे। जब उनने श्रीराम को आते देखा, तब उनमें नारायण-स्वरूप को तत्त्वतः पहचान लिया। उनके दर्शनमात्र से ही उन्हें अपार आनन्द का अनुभव हुआ। अनुमान से जान पड़ता है कि कदाचित् वे राममन्त्र के ही जापक थे, कारण यह कि इन तपस्वियों में अनेक श्रीराम को देखते ही अपने शरीर को योगाग्नि में त्याग कर देते थे। वस्तुतः ओजस्वी काव्यविधि द्वारा कान्त एवं मधुर वाणी में महर्षि बाल्मीकि का यही दार्शनिक उपदेश प्रतीत होता है।

उनका मूल-तत्त्व इस प्रकार पवित्रतापूर्वक रह कर तपोऽनुष्ठान द्वारा परब्रह्म की आराधना करना एवं अधर्ममार्ग से सदैव विलग रहना है।

श्रीराम की शरणागतवत्सलता एवं प्रच्छन्न ईश्वरता

आधुनिक विचारधारी कुछ लोग आर्ष काव्य को मानव चरित्र मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि इसमें हजारों श्लोक प्रक्षिप्त हैं, पर यह धारणा उनकी इसलिये है कि उन्होंने ध्यान से अध्ययन का प्रयास नहीं किया है। मनोयोग पूर्वक अध्ययन से श्रीराम की ईश्वरता इस ग्रन्थ में सर्वत्र दीखेगी। गम्भीर अध्येता को तो प्रत्येक श्लोक तथा ईश्वरताप्रतिपादक सामग्रियाँ दृष्टिगोचर होंगी। शरणागत विभीषण श्रीराम की शरण में पहुँचता है। सुग्रीवादि यूथपति उसे शत्रुपक्ष के रावण का भाई समझ, उसे दण्डित करने का परामर्श श्रीराम को देते हैं। श्रीराम ने कान्त भाषा में अपने सहयोगियों से कहते हैं, "जो भी प्राणी मेरी शरण में आयगा, उसकी रक्षा करूँगा, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, कोई भी हो। यदि देव, गन्धर्व, असुर, नागादि सभी भूत जुटकर मेरे विरोध में आ खड़े हों तो इन सबों को नष्ट कर दूँगा"। यह है श्रीराम की शरणागत वत्सलता एवं ईश्वरता प्रच्छन्न ही सही। इसीपर सुग्रीव ने कह ही तो दिया—

"किमत्र चित्रं धर्मज्ञ ! लोकनाथ ! शिखामणे ! ।
यत् त्वमार्य ! प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः" ॥लं० १८, २६

हनुमान् की अनन्यता एवं श्रीराम में ईश्वर का बोध—

आत्मज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी हनुमान् जी ने रावण के समक्ष श्रीराम के गुणों का जो विशदवर्णन किया था, उनमें श्रीराम को ईश्वर तो नहीं बताया, किन्तु उनके गुणों का वर्णन जैसा उन्होंने किया वे ईश्वर में ही पाये जाते हैं। उन्होंने उससे कहा था—'रावण ! श्रीराम में वह शक्ति है कि वह एक ही क्षण में समग्र चराचरात्मक जगत् को संहृत कर दूसरे ही क्षण फिर उसे उसी रूप में सृजन कर सकते हैं—

"सत्यं राक्षसराजेन्द्र ! शृणु त्वं वचनं मम ।
रामदासस्य दासस्य वानरस्य विशेषतः ॥
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः" ॥

श्रीराम का मानवरूप में चरित्र चित्रण—

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्रचित्रण सो अवश्य ही मानवरूपमें किया गया है किन्तु, वास्तवमें वाल्मीकि जैसे आत्मवेत्ता तपस्वी के लिये जो वन के कन्दमूल खाकर सतत स्वाध्याय एवं आत्मचिन्तन में तल्लीन रहने वाले थे, भला

उन्हें किसी प्राकृतिक पुरुष के चरित्रचित्रण की क्या अपेक्षा हो सकती थी ? वह वस्तुतः श्रीराम के तात्त्विक रूप के ज्ञाता थे और इसीलिये वे श्रीरामायण के अतिरिक्त एक अन्य विशालकाय ग्रन्थ योग-वासिष्ठ' भी रच डाला। महर्षि राममन्त्र के के ही जापक थे। इसीसे उन्हें सारी सिद्धियाँ मिली थीं।

हनुमान् का रामायण में विशिष्ट स्थान

रामायण में पवनात्मज हनुमान् का प्रमुख स्थान है। उनकी तर्कना शक्ति एवं वाक्पटुता अद्वितीय थी, जिसकी प्रशंसा श्रीराम ने स्वयं श्रीमुख से की है। जो काम किसी से होनेवाला नहीं होता था, उन्हें हनुमान् ही कर डालते थे। मेघनाद के बाणों से श्रीरामादिसहित करोड़ों सैनिक वीरों के आहत होने पर जाम्बवन्त के कहने पर रातोरात शल्यचिकित्सोपयोगी औषधि को हिमालय जाकर ले आना केवल हनुमान् से ही साध्य हुआ। सौ योजन समुद्र पार कर सीता का पता लगाकर श्रीराम को संदेश सुनाना हनुमान् के अतिरिक्त किससे हो सकता था ? दौत्यकर्म का सफल सम्पादन जैसा हनुमान् ने किया वैसा किसी अन्य से सम्भव नहीं था। रावण युद्ध विजय के बाद सीता को संवाद सुनाते समय देवी ने प्रसन्न होकर हनुमान् से कहा था—

"बलं शौर्यं श्रुतं सत्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्।
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः"॥
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः।

इसी तरह श्रीरामने अपने राज्याभिषेकोपरान्त उन्हें विदा करते समय हनुमान् के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की थी, यथा—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे !।
शेषस्यैवोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे !।
नरः प्रत्युपकारणमापत्स्वायाति पात्रताम्॥(उ० ४०-२३-२४)

रामायण कविता-कुञ्ज में विहार करनेवालों में स्वयं महर्षि एवं पवनकुमार प्रमुख रहे हैं। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने वन्दना श्लोक में लिखा है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

हनुमान के विषय में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है।

श्रीराम में नारायणरूप का स्पष्ट संकेत

(१) ब्रह्मादि सभी देवताओं ने, क्रूर रावण के अत्याचार से पीडित हो उसके बध के लिये विष्णु को राजा दशरथ के पुत्रत्व ग्रहण करने की प्रार्थना की

और विष्णु ने अपनी स्वीकृति दे दी। (२) अहल्या का उद्धार। (३) शरभङ्गा-श्रम में इन्द्र एवं शरभङ्ग संवाद। (४) विराध एवं कबन्ध की उक्तियाँ। (५) शबरी एवं अन्यान्य तपस्वियों के श्रीराम के प्रति व्यवहार। (६) हनुमान् की श्रीराम में निःस्वार्थ अनन्यता। (७) शम्बूक वधोपरान्त अगस्त्यमुनि की भक्ति और अभिव्यक्ति। (८) स्वयं ब्रह्मा जी का श्रीरामस्वरूप का तात्त्विक वर्णन, (९) तथा महाप्रयाण काल की घटना। इनके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर यत्र तत्र, उनके ईश्वरत्व का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आभास मिलता ही है।

नारियाँ—

सीता तो आदर्श नारी थीं ही, उनके अतिरिक्त और नारियों का चरित्र-चित्रण इस महाकाव्य में किया गया है, जिन में भिन्न भिन्न प्रकृति के भिन्न भिन्न सद्‌गुण संनिविष्ट थे। हाँ, जहाँ तक पातिव्रत्य का प्रश्न है, यह गुण उस समय न्यूना-धिक सबोंमें था। नारियाँ मृदुभाषिणी धर्मपरायणा एवं कार्यकुशल थीं। उनमें कतिपय उच्चकोटि की विदुषी एवं कालज्ञा भी थीं जिन्हें देश, काल, परिस्थितियों का पूरा ज्ञान था। किन्तु कुछ नारियाँ ऐसी भी थीं, जो यथार्थसिद्धि एवं जघन्यकर्म के लिये उतारू हो जाती थीं। वानर तथा राक्षस जाति में भी अनेक नारियाँ विचारशीला पायी जाती थीं।

राजतन्त्र में गणतन्त्र का ही प्रयोग

शासन-पद्धति यद्यपि राजतन्त्र थी, तथापि किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रारम्भ करते समय सभी वर्ग के विशिष्ट लोगों को आमन्त्रित कर उनकी सलाह ली जाती थी और उसका सम्मान किया जाता था। यद्यपि रावण आसुरी प्रकृति का था किन्तु उसकी विद्वत्ता, एवं नीतिज्ञता किन्हीं से कम न थी, पर वह भी महत्वपूर्ण कार्यारम्भ के समय मन्त्रियों एवं जनता की राय लेता था। राजा दशरथ एवं श्री राम तो प्रत्येक काम में जनता की इच्छा को सर्वोपरि मानते ही थे। श्रीराम ने तो एक साधारण गवाँर व्यक्ति के मिथ्यापवाद के कारण ही अग्नि-परीक्षित सती साध्वी सीता का गर्भावस्था में भी परित्याग कर दिया था। लंका में भी युद्ध-विषयक प्रत्येक काल में विशेषज्ञों का परामर्श लेकर ही वे कार्यारम्भ करते थे, एवं श्रीराम जनमत के पोषक और शुभेच्छुक थे।

मित्रवत्सलता

सुग्रीव से जब मित्रता हो गई और वालिवध के बाद उसे किष्किन्धा का राजसिंहासनासीन करा उसकी पत्नी रुमा को भी दिलाई तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस सुग्रीव ने बरसात बीतने पर सीता की खोज कराने की प्रतिज्ञा की थी। कुछ देर हो जाने के कारण श्रीराम को उस पर थोड़ा क्रोध हो आया। उन्हें ऐसी देख लक्ष्मण ने सुग्रीव का वध ही करने का निश्चय किया। शीघ्र ही

श्रीराम ने अपने प्यारे भक्त भाई को ऐसा करने से रोका और कहा—तात! जिससे मित्रता हो गई, उसे निर्वाह होना चाहिये। उसे समझा देना—कार्य स्मरण करा देना, बस। श्रीराम सुग्रीव को अपने भाइयों में से पाँचवाँ भाई का स्थान दिया था और उसे जीवनपर्यन्त निवाहा। यही बात विभीषण के प्रति भी थी। एक बार सुग्रीव ने कहा था कि जब विभीषण भाई का नहीं हुआ तब हम लोगों का कब होगा ? उस पर श्रीराम ने उससे कहा—

न सर्वे भ्रातरस्तात ! भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा नो पितुः पुत्राः, सुहृदो वा भवद्विधाः॥

भ्रातृवत्सलता

भ्रातृ-वत्सलता तो उनमें कूट कूट कर भरी ही थी। श्री रामने जब चित्रकूट में भरत की सेना देख कर लक्ष्मण का कुपित होते देखा और भरत से जूझने की उनकी इच्छा देखी, तब उनसे कहा—'जब स्वेच्छा से राज्य त्याग ही दिया तब अनुचित हिंसा की क्या आवश्यकता ? कदाचित् भरत हम से मिलने आया हो मैं तो राज्य भी अपने भाइयों के सुख के लिये ही चाहता हूँ, यथा—

नेयं मम मही सौम्य ! दुर्लभा सागरम्बरा।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण !॥
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद !।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखि॥अ० ९७-७८॥

भरत की उदारता लक्ष्मण की राम में अनन्यता

दबाव में ही आकर सही, पिता ने भरत को राज्य तो दे ही दिया था। गुरुजनों ने भरत को अभिषेक करालेने का आग्रह किया, यहाँ तक कि माता कौसल्या और गुरुवसिष्ठ ने भी; किन्तु उदारचेता भरत ने किसी की एक भी न सुनी, उन्होंने अपने वंश-परम्परा का अनुसरण करते हुए श्रीराम को ही राजा माना और उन्हें मना कर लाने के लिये बन को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच श्रीराम से सविनय प्रार्थना को कि वह राज्य ग्रहण करें और उनके बदले वह (भरत) चौदह वर्ष वनवास करेंगे। श्रीराम ने जब दृढता से उनके प्रस्ताव को अस्वीकार किया तब भरत उनके चरणपादुका को ही उनका प्रतिनिधिस्वरूप लेते आये। श्रीराम के अयोध्या लौटने तक भरत ने नन्दिग्राम में तापस जीवन बिताते हुए श्रीराम की पादुका की ही आज्ञा से राज्य चलाया।

लक्ष्मण स्वभावतः श्रीराम के अनुगामी थे, कभी भी उनका साथ नहीं छोड़ा। वनगमन के पूर्व उन्होंने कौसल्या के विरह देख क्रोधाभिभूत हो यहाँ तक कह डाला था कि—

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥ अ० २१-१९ ॥
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥ अ० ५८-३१ ॥

लक्ष्मण की हितैषिता से प्रभावित हो राम ने कहा था—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ! ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥ अ० १५-२१ ॥

प्यारे लक्ष्मण ! तू मेरे मन के भाव को तत्काल समझ लेने वाले कृतज्ञ एवं धर्मज्ञ हो, तुझ जैसे पुत्र के कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं हैं, तेरे रूप में वे अब भी जीवित ही हैं ।

मित्र-सुग्रीव और विभीषण में अन्तर—

सुग्रीव और विभीषण दोनों सद्गुणसम्पन्न, नीतिज्ञ, बुद्धिमान और विश्वासी थे । अन्तर केवल यही था कि सुग्रीव पूर्वोपकृत थे और विभीषण परोपकृत, अन्यथा 'को बड़ छोट कहत अपराधू' की ही उक्ति लागू होती है ।

ऐतिहासिक परिवेश—

इस आर्षमहाकाव्य में ऐतिहासिक घटनाओं का भी महत्वपूर्ण विवेचन है । यद्यपि आधुनिक तथा तत्कालीन प्राचीन वर्णन-पद्धति में बहुत अन्तर पाया जाता है । रामायण अतिप्राचीन महाकाव्य ग्रन्थ है, जिसके द्वारा हमें उस काल के अनेक राजवंशों, उनके शासन पद्धतियों एक दूसरे के साथ सम्बन्धों, भिन्न भिन्न प्रकार के तन्त्रों एवं नीतियों का ज्ञान प्राप्त होता है, जिसका सीधा सम्बन्ध इतिहास से है । आज के इतिहास से उसका पूर्णरूपेण मेल तो नहीं खाता, किन्तु तत्कालीन ऐतिहासिक शर्त तो पूरा हो ही जाता हैं, यथा:—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

भौगोलिक ज्ञान—

भूगोल सम्बन्धी ज्ञान-भण्डार की उपलब्धियाँ भी इस आर्षग्रन्थ में प्रचुर हैं । सीतान्वेषण हेतु जाते हुए वानरयूथपतियों को सुग्रीव ने भिन्न भिन्न देशों नदियों, पहाड़ों, समुद्रों, वनस्पतियों, निवासियों तथा जलवायु आदि का ज्ञान दिया था, वह निश्चय ही भूगोल से सम्बन्धित था । उन स्थानों में से अनेकों की सत्यता प्रकट हो चुकी है और कतिपय का अब भी पता लगाया जा रहा है ।

शासन प्रणाली—

तत्कालीन शासन साधारणतः राजतन्त्र था, किन्तु उसे निरङ्कुश नहीं कहा जा सकता । बड़े बड़े ज्ञानि विद्वान मन्त्री (सभा:८) एवं रक्षिनियुक्त किये जाते

थे, जो राजा को राज-सञ्चालन में सत्परामर्श देते थे। इसके साथ ही किसी महत्व पूर्ण समस्या के सामाधान काल में प्रजावर्ग को सम्मति ली जाती थी। प्रजावर्ग के मनोभाव का सम्मान विशेषरूप से किया जाता था। राजा, राजपुत्र, अमात्य, सेनापति आदि को व्यूहरचना का विशिष्टज्ञान रहता था। उस समय भिन्न भिन्न प्रकार के आयुधों का निर्माण हो चुका था, जिनमें आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्रादि भी थे। युद्धकाल में युद्धसम्बन्धी नियमों का परिपालन होता था।

सारांश —

आर्षमहाकाव्य रामायण में सर्वतोमुखी ज्ञान-भण्डार का संचय है। धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक अथवा कलासम्बन्धी कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं है, जिस का इसमें सविस्तर विवेचन न हुआ हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि अवश्य ही सर्वज्ञता को प्राप्त हो गये थे। इसी से तो उन अमर महात्मा की कीर्ति भी अमर है। शायद इस सभ्य संसार की कोई भी भाषा नहीं है, जिसमें इस सद्ग्रन्थ का अनुवाद नहीं पाया जाता हो और जहाँ के विचारक इस पर गम्भीरता से विचार न करते रहे हों, आज से नहीं, अनन्त काल से।

संक्षिप्त वाल्मीकि–रामायण संकलन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस आर्षमहाकाव्य में सातकाण्ड, पाँचसौ सर्ग और चौबीस सहस्र २४०००श्लोक हैं। इन श्लोकों में से प्रत्येक सूक्तिस्वरूप धार्मिक हैं और प्रत्येक का भिन्न भिन्न महत्व है। उनमें किसी विशेष श्लोक को महत्वपूर्ण अङ्कित कर चयन करना किसी विशेषज्ञ के लिये भी एक प्रगाढ़ समस्या हैं, फिर मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए संकलनात्म कार्य में हाथ डालना तो अवश्य ही हास्यास्पद है। किन्तु अपनी अल्पज्ञता को जानते हुए भी अपनी दुरभिकाङ्क्षा को संवरण नहीं कर सका। अपने लिये दुःसाध्य कार्यमें भी जुटजाने का दुःसाहस कर ही डाला।

कथाभाग की धारा का अवरोध न हो, इसका यत्न भरशक किया गया है और इसी कारण संकलन की थोड़ी कायावृद्धि हो गई हैं। यह कैसा उतरा है, इसको जानने के लिये मैंने पाण्डुलिपि को अपने ग्रामीण साहित्यदर्पण और कादम्बरी के प्रसिद्ध टीकाकार श्री पण्डित कृष्णमोहन ठाकुर एम० ए० (सं० हि०) व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य, मीमांसा शास्त्री, अध्यक्ष श्री रणवीर-संस्कृत-महाविद्यालय, (का० हि० वि० वि०) कमच्छा, वाराणसी के पास भेज दिया था, ताकि वह इसे अवलोकन कर अपना विचार लिख भेजें। उन्होंने इसे अच्छी तरह देख कर लिख भेजा—"मुझे सङ्कलनात्मक कृति को देख कर अतीव प्रसन्नता हुई। चयन श्लाघ्य है, इसे "संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायण" कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी आदि आदि।"

उनके यहाँ ही आये हुए एक वृद्ध विद्वान जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण

एवं उस पर मार्मिक प्रवचन अनेक बार कर चुके थे और कर रहे हैं, उन्हें इसे देखकर बहुत हर्ष हुआ, श्री ठाकुर जी ने उनसे आग्रह किया कि आप कृपया इसे साङ्गोपाङ्ग देख कर अपना विचार दें, क्योंकि आप इसके विशेषज्ञ समझे जाते हैं। उन महात्मा का परिचय:—पण्डित प्रकाण्ड **श्री आद्याचरण पाण्डेय कार्ष्णिक** व्या०-सा०-आयुर्वेदाचार्य, न्या०-सां० शास्त्री, साहित्य-रत्न; भू० पू० उपकुल पति नैमिषारण्य अध्यात्म विद्यापीठ (सीतापुर-उ०प्र०) है। पूज्यास्पद श्रीपाण्डेयजी ने इसे देख कर बड़ी सराहना की है। उनकी तो ऐसी धारणा है कि यदि विद्वज्जन इसे शिक्षण-संस्थान तक पहुँचाने का प्रयास करें तो देश का बड़ा हित होगा। अस्तु, मैं उन दोनों मूर्धन्य विद्वानों का आभारी हूँ, जिनने अपना बहुमूल्य समय इस संकलन के अवलोकन में व्यतीत किया, उन महात्माओं के प्रोत्साहन से प्रेरित हो कर ही मैं इसका प्रकाशन हो करने के लिए उद्यत हो गया।

कथानकों के सन्दर्भ का सरलता से ज्ञान हो जाय, इससे अतिसंक्षिप्त 'हिन्दो' में अभिप्राय दे दिया गया हैं। यदि यह सङ्कलन रामायण प्रेमियों को रुचिकर हुआ तो मैं अगले संस्करण में अनुवाद एवं विशद आलोचना के साथ प्रकाशन करने का साहस करूंगा। मुझसे जो विवेचनीय अंश छूट गया है, मेरे अनन्य स्नेही विद्वान् श्री कृष्णमोहन ठाकुर जी ने उसे पूरा कर परिशिष्ट में दे दिया है। आशा है जिज्ञासुओं का उससे बहुत कुछ समाधान अवश्य मिलेगा। श्री ठाकुर जीने अपने कामों में बहुत व्यस्त रहते हुए भी इसका सम्पादन किया है, यदि इनका सहयोग नहीं मिला होता तो इसका प्रकाशन असम्भव था। इस ग्रन्थ में दोनों का समानाधिकार है।

संकलनात्मक कृति की सफलता वा विफलता का मूल्याङ्कन तो विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं, मै इसके सम्बन्ध में क्या कह सकता हूँ। हाँ, इतना अवश्य आश्वासन दे सकता हूँ कि जो त्रुटियाँ इस प्रकाशन में रह गई हैं उनको सुधार अगले प्रकाशन में अवश्य हो जायगा; केवल मुझे सूचना मिल जानी चाहिये।

अपनी निजी कृति तो यह है नहीं जिसमें अच्छे या बुरे होने का प्रश्न उठे जो कुछ इसमें है वह निर्विवाद उत्तमोत्तम हैं. अद्वितीय और अनुपम है। बात रही मात्र चयन के विषय में, सो तो मैंने पहले ही स्वीकार किया है कि मेरी अपनी अल्पज्ञता एवं अकुशलता के कारण इस की चयनविधि में त्रुटियाँ रही होगी और उसका सारा दोष मेरा होगा।

अन्त में मैं 'मिथिला ग्रन्थमाला काशी' के प्रधान सम्पादक पण्डित 'प्रवर श्री रामचन्द्र झा जी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने इसके मुद्रण में अनेक महत्वप्रद सुझावों से इसके कलेवर को जनता के सामने उपस्थित होने योग्य बना दिया, और अपना शुभाशीर्वादवचन भी परिचय के साथ दिया है।

रामनवमी, सं० २०३०

—भागवतप्रसाद सिंह

सम्पादकः
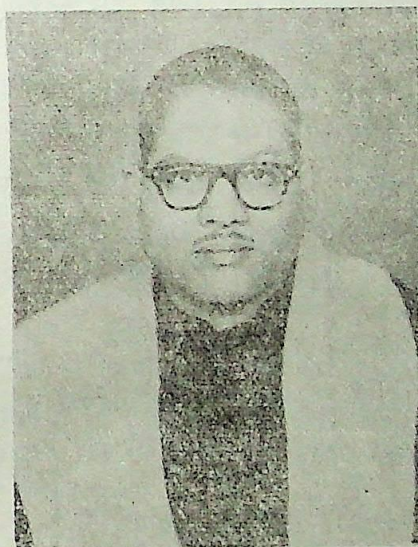
श्रीकृष्णमोहनाचार्यः ठक्कुरोपाह्वमैथिलः ।
काश्यां विराजते श्रीमद्विद्वद्गणप्रतिष्ठितः ॥

वाल्मीकि-रामायण की वेदमूलकता

सभी वेदों का सारभूत गायत्री मन्त्र है। उसकी बड़ी महिमा शास्त्रों ने गायी है। महर्षि वाल्मीकिजी ने अपने रामायण को २४००० हजार श्लोकों में आबद्ध किया है। "तपः स्वाध्याय निरत' से लेकर 'नामेव रात्रि सीताऽपि ''' तक एक एक सहस्र पर एक एक गायत्री के अक्षर से काव्य का आरम्भ होता है। गान (स्तुति) करने वाले के त्राण करनेवाली होने के कारण ही गायत्री कही जाती है। इस रामायण का भी लव-कुश द्वारा ऋषि ने गान कराया है, इसके श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने पर त्रिविध तापों से प्राणियों का त्राण होता है। रामावतार के समय ही ब्रह्मा जी वाल्मीकि रूपमें प्रचेता ऋषि के यहाँ प्रादुर्भूत हुए और वेद, रामायण के रूप में परिणत हो गया। जैसा कि कहा गया है—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥
तस्माद् रामायण देवि! वेद एव न संशयः।"
(अगस्त्य-संहिता)

वाल्मीकि का ही पर्यायवाची "वम्र" शब्द है। इसी 'वम्र' शब्द के आधार पर हम आर्य-संस्कृति और आर्य-साहित्य के उद्गम वेद तक पहुँचते हैं। कुछ ऋग्वेद के ऋचाओं का उद्धरण यहाँ किया जाता है, जिससे रामायण का बीज इस वेद में है यह ज्ञात हो सकेगा—

(१)

**"कं नश्चित्र मिषण्यसि, चिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै।
कस्य तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद् वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत्॥"**

(२)

**"स हि द्युता विद्युतावेति साम पृथु योनिमसुरत्वाससाद।
स सनीलेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः॥"**

(३)

**सवाजं यातापदुष्पदायन् स्वर्षाता परिषदत् सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदोघ्नञ्छिश्नदेवाँ अभिवर्पसाभूत्॥**

ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ५ वर्ग १४ मण्डल १० सूक्त ९९ मन्त्र १-२-३

इन मन्त्रों के विनियोग का अर्थ यथाक्रम निम्नोक्त हैं—

'कं नश्चित्र मिषण्यसि' इस मन्त्र के विनियोग में लिखा है कि—क नश्चित्र-मिति द्वादशर्चं सूक्तं विखनसः पुत्रस्य वम्रस्यार्षम्"। अर्थात्—उपर्युक्त मन्त्र से १२ ऋचाओं के 'विशेषेण वेदार्थं खनति' इति विखना (ब्रह्मा) के मानसिक पुत्र वम्र हैं। 'वम्र' शब्द को व्युत्पत्ति और अर्थ वेद भाष्य से निर्णय करते हुए लिखा है कि—'वम्रीभिः नुवित्तं (परिवारितम्) गुहास्विति वल्मीकवयाः 'सम्भरण-मन्त्रलिङ्गात्' वल्मीककारिणो जन्तुविशेषा उच्यन्ते, ताभिः वल्मीकगर्भतामापादितो मुनिर्वाल्मीकिः। स एव च 'वम्र' इत्युच्यते। तथा च वल्मीकशब्दात् अपत्य-प्रत्ययः। एवं 'वम्री' शब्दादपि गोत्रप्रत्ययस्तस्य लुक्, वाल्मीकिः, वम्र इति निष्पन्नौ।

भाव यह है कि गुफाओं में या ऐसे ही स्थलों में अपनी चारों तरफ वम्री (वामी) बनाकर रहनेवाले जीवविशेष को वम्री कहते हैं, जिसको लोक भाषा में 'दीमक' भी कहा जाता है। उन्हीं जीवों के साथ वल्मीक के भीतर रहने वाले मुनि का योगरूढ़ नाम है'—'वम्र या वाल्मीकि'। 'तत्प्रभवेऽपि बहुलमुपलब्धेः' इस सिद्धान्त से तथा 'गोणी पुत्रः कलशी सुतः' इस उदाहरण से वाल्मीकि या वम्र वामी (वम्री) के पुत्र न होते हुए भी इनसे अपत्य अर्थ में प्रत्यय हुए हैं।

उपर्युक्त प्रथम मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

'वम्र' ऋषि परमात्मा से पूछ रहे हैं कि हे गुरो ! आप चिकित्वान = स्तुति करने योग्य पुरुष को जानते हैं तो 'कं चित्रम्' कौन ऐसा है ? जिसमें आश्चर्य-जनक लोकोत्तरशायी गुण भरे हैं ? क्या उसी का 'वावृधध्यै" पराक्रमादि वर्णन के द्वारा स्तुति करने के हेतु 'नः इषण्यसि' ? हमें प्रेरित कर रहे हैं ? जब हम उसकी आज्ञा से 'चित्रं हि, पृथुगृमानं वाश्रमुः वर्णनीय एवं उसके निरतिशय ऐश्वर्य का वर्णन करूंगा., तत्वतो 'तस्य' उस पुरुष के 'शवसः' बल परा-क्रमादि 'व्युष्टौ' व्युष्ट होंगे—संसार में प्रकाशमान होंगे। ऐसी दशा में 'तस्य' उसे देने के लिये क्या है ? अर्थात्—उसकी स्तुति से क्या लाभ होगा ? इसी प्रश्न का उत्तर चौथे पाद में लिखा है कि वत्स ! 'तक्षद् वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत्'—वह प्रसन्न होकर तुम्हारी बुद्धि को प्रसन्न कर देगा। कैसे ? अपने तेज रूपी वज्र से अज्ञा-नान्धकार रूपी वृत्रासुर को मारकर वह तुम्हारी बुद्धि को प्रकाश पहुँचायगा। अतः कहा 'अपिन्वत्'—स्तुति द्वारा उसे तुम तृप्त करो।

महर्षि की इच्छा हुई कि मुझे कुछ संकेत मिले जिससे अग्रिम कर्तव्य मार्ग प्रशस्त हो जाय ? अतः संकेत देनेवाली ऋचा का प्रत्यक्ष हो रहा है, द्वितीय मन्त्र से—

'स हि' = वे ही नूतन जलद काल कमनीय राघवेन्द्र, 'द्युता' = अपनी निराकार अनन्त कान्ति को विद्युता'—जलददामिनी सीता जैसी साकार बनाकर 'साम'—शांतिपूर्वक अर्थात् प्रातः राज्याभिषेक होगा, ऐसी आज्ञा मिली, उसके पूर्व ही रात्रि में वनवास मिला, इतने पर भी साम=द्रोहरहित होकर 'वेति'= वनवास के हेतु अर्थात् वन में चले गए। वन में पहुँचने पर 'अस्य'=इस राघवेन्द्र के 'पृथु योनिं'=पृथिवी से प्रादुर्भूत होनेवाली पत्नी सीता को "असुरत्वा"=असुर धर्म से अर्थात् चोरी से 'असुरः'=रावणः, "आ ससाद" = आकर सीता को उठा ले गया। तब 'सः' वही मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने "सनीडेभिः"=अपने समान लोकवासी अर्थात् मर्त्यलोकनिवासी हनुमान् आदि पार्षदों के साथ उस पर आक्रमण किया, और 'अरम' = इस सीतापहारी रावण से की हुई नागपाश बन्धनात्मिकादि 'मायाः'=आसुरी माया को 'प्रसहमान"=सहन करते हुए उस माया का विनाश भी किया। क्योंकि "ऋते" = सत्यात्मा राम के विषय में वह "माया'=आसुरी शक्ति 'न' सफल नहीं हो सकी। यद्यपि वह माया "सप्तथस्य भ्रातुः" = की थी, अर्थात् वह रावण, विष्णु से कश्यप, मरीचि, पुलस्त्य, विश्रवा, आदि से रावण सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ है। इसकी माया प्रबल है, तथापि 'ऋते' सत्यात्मा राम में 'न =उसकी माया निष्फल ही सिद्ध हुई ॥ २ ॥

इन दो ऋचाओं से जब महर्षि को पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ, तब तीसरी ऋचा का भी प्रत्यक्ष हुआ—स वाजं इत्यादि

'स'=वे मायारहित श्री रामभद्र 'अनर्वा' होकर अर्थात् अश्ववाहन से रहित होकर (पैदल ही) "वाजं"=संग्राम में याता अभूत्"=रावण की रण भूमि लङ्का में पधारे। हाय ! प्रभु के सुकोमल चरण कण्टक विद्ध हुए होंगे ! क्योंकि पैदल ही रण-भूमि में पधारे हैं। रामरसिक महर्षि के अन्तस्तल में इस भावना के उठते ही समाधि विचलित हो उठी, अभी आगेवाली पदावली से प्रत्यक्ष हुआ कि "अपदुष्पदायन्"=अपगत दुःस्थितं पदस्थानम्' इत्यादि। अर्थात् जिस मार्ग में कण्टक, कीचड़, जल आदि क्लेशदायक वस्तु नहीं हैं, उसी मार्ग (सेतु) से राघवेन्द्र लंका गये हैं, और राम 'स्वर्णात्' हैं अर्थात् लोकों के विभाजक विष्णु हैं, अतः उनके विषय में चिन्ता मत करो। "शतदुरस्य"=सौ दरवाजे वाली लंका के राजा रावण के पास पहुँच कर उसका वध किया। पुनः महर्षि को अन्तस्तल में यह भावना उठी कि अरे ? रावण तो ब्रह्मकुल में उत्पन्न हुआ है, तब उसका वध कैसे ? इसके समाधान में यह आया कि रावणादि महर्षि कुल में उत्पन्न होते हुए भी बध करने योग्य है, क्योंकि वे सब 'शिश्नदेवा' अर्थात् कामुक हैं। अतः उन कामुकों का वध करके श्रीराम ने रावण के "वेदः"

(वि) विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
वत्स ! राम ! धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ३ ॥

(तु) तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्य स विशांपतेः ।
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत ॥ ४ ॥

(व) वनवासं हि सङ्ख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्त्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ ५ ॥

(र) राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥

(नि) निरीक्ष्य सुमुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥

(य) यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महायशः ॥ ८ ॥

(भ) भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ! ।
मृगरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥

(ग) गच्छ शीघ्रमितो राम ! सुग्रीवं तं महाबलम् ।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ! ॥१०॥

(दे) देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ ११ ॥

(व) वन्द्यास्ते तु तपः सिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ।
प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥१२॥

(स) स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ॥ १३ ॥

(ध) धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ १४ ॥

(म) मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

(हि) हितं महार्थं मृदुहेतुसंहितं व्यतीतकालायति सम्प्रति क्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः, प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥

(ध) धर्मात्मा रक्षसां श्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥ १७ ॥

(यो) यो वज्रपाताशनिसन्निपातात् न चुक्षुभे चापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्त्तः चचाल चापं च मुमोह वीरः

(य) यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ १९ ॥

(न) न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम्।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २० ॥

(प्र) प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ २१ ॥

(च) चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २२ ॥

(द) दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम्।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर! ॥ २३ ॥

(या) यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालामुपाविशत्।
(त्) तामेव रात्रिं सीताऽपि प्रसूता दारकद्वयम् ॥२४॥

इदं रामायणं कृत्स्नं गायत्रीबीजसंयुतम्।
सकृत्-पठनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

हमारी निधि वेद है। उसके अतिगम्भीर अर्थ के धारण करने में आविर्भूत प्रकाश साक्षात् कृतधर्मा महर्षि की 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' ही समर्थ है। अनधिकारियों को गडेड़ियों के गीतसा मालूम पड़ता है, उनके आगे यह गान भैंस के बीन बजाने के समान है। अतः उनके लिए श्रवण भी निषिद्ध माना गया है। वेद सर्वसाधारण के उपयोगी वस्तु नहीं है। वेद का ही सर्वलोकहितकारी संस्करण वाल्मीकीय रामायण है। इस प्रकार इस रामायण की वेदमूलकता अकाट्य प्रमाण सिद्ध है; इसमें सन्देह और शंका का कोई अवसर ही नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि

'यो वै वेदान् प्रहिणोति तस्मै' इस श्रुति के प्रमाण से सम्पूर्ण वेद ब्रह्मा के पास पूर्व से ही सुरक्षित है। वैदिक ऋचाओं के साक्षाद् द्रष्टा ऋषियों को जब वे ऋचाएं प्रत्यक्ष हुईं तब वे उनके सत्यासत्य का परीक्षण करने हेतु ब्रह्मा के पास जाकर उन ऋचाओं को सुनाते थे। ब्रह्मा उनका परीक्षण करके ऋषियों को 'मन्त्रद्रष्टा' की उपाधि से अलंकृत करते थे, तदनुसार महर्षि वाल्मीकि ने भी प्रत्यक्ष हुई वेद की ऋचाओं को उन्हें सुनाया। उन्हें ब्रह्मा ने 'वज्र' की उपाधि

उनके द्रव्यों की चोरी की। पर शंख मुनि ने उसे विष्णु भगवान् की महिमा बतायी और पापकर्मों से बचने के लिए उपदेश दिया। जब उसके मन में श्रद्धा जगी, तब उसे बुलाकर मुनि ने 'राम' मन्त्र की दीक्षा दी।

'वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्रागरुणोदयात्।
कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाखिलान्॥
व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रेक्ष्य परीक्ष्य च।
रामेति द्वयक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम्॥

(वैशाख माहात्म्य ११। ५१–५३)

इस माहात्म्य में यह भी कहा गया है कि राममन्त्र जप के प्रभाव से उस व्याध ने ही दूसरे जन्म में वाल्मीक नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न हुआ। उसने वैशाख मास में पालनीय धर्मों का आचरण कर ही ऋषिकुल में उत्पन्न होकर रामायण काव्य रचा था। यहाँ पर वाल्मीकि के पिता का नाम 'कृणु' उल्लेख हुआ है 'कृणुनामा मुनिः' (३१।६४) वाल्मीकि (वामी) से आवृत होने के कारण कृणु का नाम वाल्मीक हुआ और इनके पुत्र का नाम वाल्मीकि (रामायणकार) हुआ। वैशाख मास में तप परायण होने के कारण कुछ विद्वानों का मत है कि इसी मास में इनका उत्सव मनाना चाहिये।

'प्रकाश क्षेत्र माहात्म्य' अध्याय ३७८ में कहा गया है कि रामायण कार वाल्मीकि का नाम था–वैशाख। यह अत्यन्त रौद्रकर्मी (क्रूर कर्म करने वाले) थे। इन्होंने घर-गृहस्थी चलाने के लिए गरीब होने के कारण 'दस्यु' वृत्ति (डाकुओं का आचरण) अपनाया था। बाद में सप्तर्षियों के बहुत समझाने पर इनका ज्ञानोदय हुआ और ये नारदजी की दीक्षा से 'राम' मन्त्र के जप से सिद्ध होकर रामायण के रचयिता आदिकवि बने।

'अवन्ती क्षेत्र माहात्म्य' (अ० २४) में भी वाल्मीकि जी का प्रसंग 'अग्निशर्मा' नाम से आया है। उनकी कथा वहां यही दी गयी है कि वे सप्तर्षियों के उपदेश से तप में प्रवृत्त हुए। तप में इतने तल्लीन हुए कि उनके शरीर में वामी लग गयी। उससे निकलने के बाद उस अग्निशर्मा का ही नाम वाल्मीकि हो गया।

वृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड अ० ५) में भी वाल्मीकि का चरित्र है। जहां तमसा नदी के साथ-साथ 'मा निषाद' पद्य का उल्लेख है।

नागरखण्ड (अ० १) में भी वाल्मीकि चरित्र मिलता है। यहाँ वाल्मीकि का मूलनाम लोहजङ्घ दिया गया है। अन्य कथायें प्रकाशक्षेत्रीय समान ही हैं।

इस प्रकार इनके स्तम्भ[1], व्याध[2], अग्निशर्मा[3] रत्नाकर[4] वल्मी[5], वाल्मीकि[6]

ऋक्ष[७], प्राचेतस[८], भार्गव[९], वाल्मीक[१०] कृणु[११], लोहजङ्घ[१२] नाम शास्त्रों द्वारा सिद्ध होते हैं।

महर्षि वाल्मीकि ही तुलसी

प्रश्न—वाल्मीकीय रामायण में 'कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ?	**उत्तर**—वा० रा० में इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनै श्रुतः
प्रश्न—रामचरित मानस में राम कवन प्रभु पूछहुँ ?	**उत्तर**—रा० च० मा० में एक बार त्रेता जुग माहीं

उपर्युक्त वैदिक मन्त्रों में 'कं' नश्चित्रम् से प्रश्न किया गया है। आगे दोनों रामायण में क वर्ग से ही दोनों प्रश्न हुए हैं। और उत्तर 'इ' एवं 'ए' स्वर से दिया गया है। चमत्कारचिन्तामणिकार ने स्वरों और वर्गों के स्वामी का निर्देश करते हुए लिखा है 'कि 'अवर्गेशस्तु सूर्यः स्यात्, 'क' वर्गेशस्तु लोहितः। कवर्ग मंगल और स्वर के सूर्य स्वामी हैं। मंगल भूमि पुत्र हैं, सीता भी भूमिजा हैं। सत्ययुग, त्रेता, कलियुग इन तीनों युगों में वाल्मीकि की परमाराध्या जगदम्बिका सीता ही हैं, यह वाल्मीकि जी ने 'सीतायाश्चरितं महत्' कहकर स्पष्ट घोषित किया है। उत्तर स्वर से दिये गए हैं इस सीता चरित्र जैसे सुगोप्य चिन्तामणि को पवित्र रामचरित्र में लपेट कर रखने के लिए कहा गया है। रामचरितमानस के प्रथम तीन श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं। अनुष्टुप् छन्द महर्षि बाल्मीकि जी की ही 'वैयक्तिक सम्पत्ति है', इसे स्वीकार करना ही होगा। इससे प्रतीत होता है कि रामचरितमानस के रचयिता अनुष्टुप् छन्द के पूर्वाभ्यासी वाल्मीकि जी ही हैं।

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितम्।'

यह ७ वाँ श्लोक रामचरित मानस मे कहा गया है—

यहां भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। कर्तृपद पद्य में कहीं भी नहीं है। 'मया' पद के अध्याहार करने से ही अर्थ होगा कि मया तुलसीदासेन पूर्वजन्मनि वाल्मीकिनाम्ना प्रसिद्धेन रामायणे निगदितम् कथितम्। इस रामायण में नाना पुराणादि सम्मत बातें ही नहीं कही गयी हैं, किन्तु क्वचिदन्यतोऽपि। अर्थात् पहले रामायण रचनाकाल में मैं इतिहास लेखक ही था, यथा घटित घटनाओं को ही लिखने में बाध्य था, इस समय इस मानस में पहले के रामायण से कई स्थलों में अपनी प्रेमाभक्ति के कारण परिवर्तन कर दे रहा हूँ। अतः इस प्रत्यक्ष प्रमाण से महर्षि वाल्मीकि ही महात्मा तुलसीदास हुए हैं, ऐसा सिद्ध हो रहा है। यह बात उनके निम्न कथन से भी परिलक्षित होता है—

इस श्लोक में २४ वां युग लिखा है, किंतु उसके अग्रिम श्लोक निम्नोक्त है, जिस में त्रेतायुग का नाम स्पष्ट आया है—

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य निधनाख्यायमोयिवान्॥
[वा० पु० अ० पा० ७७–४८]

उक्त त्रेता वर्तमान वैवस्वतमन्वन्तर का १४ वां है, जो विक्रम संवत् पूर्व १ करोड़ ९९ लाख ४० हज़ार २० वर्ष का होता है।

डा० भण्डारकर आचार्य पाणिनि के बाद 'रामायण' का रचनाकाल मानते हैं।

श्री ए० बी० कीथ ई० सन् के पूर्व अर्ध शताब्दी मानते हैं।

प्रो० जैकोबी ई० सन् के पूर्व छठी शताब्दी मानते हैं।

बहिरंग प्रमाण—महाभारत में रामायण से कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाभारत के वनपर्व में राम की कथा का वर्णन है। उसमें वाल्मीकि का एक महान् ऋषि के रूप में वर्णन किया गया है।

बौद्ध साहित्य पाली जातकों में दशरथ जातक आदि में रामकथा उपलब्ध होती है। रामायण का एक श्लोक (६–१२८) पाली रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार बहिरंग प्रमाणों से रामायण का समय ईसा से २०० ई० पूर्व ५०० ई० पू० के मध्य रखा जा सकता है।

अन्तः साक्ष्य—मूलरामायण में अयोध्या नामक राजधानी का उल्लेख है[१]। बुद्ध के समय से जैन और बौद्ध ग्रन्थों में इस अयोध्या का 'साकेत' नाम प्रसिद्ध हो गया था। पतञ्जलि ने भी "अरुणद् यवनः साकेतम्" ऐसा कहा है। 'लव' ने श्रावस्ती ही अपनी राजधानी बनाई। अतः प्रमाणित होता है कि रामायण की रचना बुद्ध से पूर्व में हो चुकी है।

रामायण में मिथिला एवं विशाला दो नगरियों का वर्णन है। पर बुद्ध के समय दोनों मिलकर वैशाली नगरी का नाम हो गया इससे इसकी रचना बुद्ध से बहुत पहले हुई।

बुद्ध पूर्व ही भारत का उत्तरी भाग आर्य में कहलाता था। कोशल, अंग, कान्यकुब्ज,मगध, मिथिला आदि अनेक छोटे-छोटे राज्यों में देश विभक्त था। बुद्ध

---

१. रामायण में उस स्थान पर राम के जाने का वर्णन है जहां आज पटना नगर बसा है, किन्तु वहां पाटलिपुत्र का नाम नहीं आया है। अतः पाटलिपुत्र के बसने से पूर्व इसकी रचना हुई है।

पूर्व भारत में ही यह राजनीतिक अवस्था पायी जाती है। इस दृष्टि से ५०० ई० पू० ही आधुनिक विवेचक के मत से रामायण की रचना हुई।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मूलस्रोत जिस रामायण से ज्ञात होता है, उसका समय निर्धारण पक्षपातरहित होकर इस संस्कृति में दीक्षित विद्वानों की ही सम्मति से ही न्यायोचित समझना चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त रामायण के अन्तरंग एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर महर्षिवर्य वाल्मीकि राम के समकालीन थे तथा उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना राम के राज्यकाल में ही कर ली थी इसमें सन्देह का लेश भी नहीं है, तथापि पाश्चात्य दीक्षा दीक्षित आधुनिक अन्वेषकों ने 'महाभारत' के द्रोणपर्व एवं शांति पर्व तथा अन्य निर्देशों से अनुमान लगाया है कि वाल्मीकि रामायण से पूर्व भी रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित थे, जिनके आधार पर वाल्मीकि ने अपने रामायण की रचना की। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति है कि 'यह किसी एक की रचना नहीं है, रामचरित सम्बन्धी अनेक वीर गान 'सूतों' द्वारा गाये जाते रहे होंगे, कालान्तर में उन्हीं के आधार पर रामायण का आधुनिक रूप निर्मित हुआ। प्रो० जैकोबी का विचार है कि भाटों की अनेक पीढ़ियों ने असली भाग को नष्ट करते हुए रामायण में बहुत कुछ बढ़ा दिया है। किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य विवेकी विद्वान मेकडॉनेल ने तो उपलब्ध सम्पूर्ण रामायण को वाल्मीकि कृत ही मानते हैं। उनके अनुसार इसकी रचना पूर्वी भारत में ही हुई थी—

'The Rāmāyana, again, is, in the main, The work of a single poet, homogeneous in plan and excution Composed in the west of India.[1]

प्रो० वेबर (Weber) महाभारत और ग्रीस देशके कवि होमर के पश्चात् रामायण का रचनाकाल मानते हैं।[2]

इस ग्रन्थ के अध्ययन से ही कनिंघम की 'ऐन्शेन्ट डिक्शनरी' 'डे' महोदय का 'जागरिफकल डिक्सनरी' तथा 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल का एक महत्त्वपूर्ण पूर्ण लेख जन्म ग्रहण कर सका।

महर्षि वाल्मीकि का यह रामायण काव्य मानवजीवन के व्यवहारोपदेश का आचार्य है। सदाचारादिपालन हेतु यह अद्भुत सरस धर्मशास्त्र है। भारतीय

---

1. A Histrory of sanskrit Literctur, A. A. Macdcnell p.281
2. देखिये Weber History of Indian Litercturc.

(५) गौतमः—

दूतो दाशरथेः सलीलमुदधिं तीर्त्वा हनूमान् महान्
दृष्ट्वाऽशोकवने स्थितां जनकजां दत्वाङ्गुलेर्मुद्रिकाम् ।
अक्षादीनसुरान्निहत्य महतीं लङ्कां च दग्ध्वा पुनः
श्रीरामं च समेत्य देव ! जननी दृष्टा मयेत्यब्रवीत् ॥ ५ ॥

[सुन्दर कांण्डम्]

(६) जमदग्निः—

रामो बद्धपयोनिधिः कपिवरैर्वीरैर्नलाद्यैर्वृतो
लङ्कां प्राप्य सकुम्भकर्णतनुजं हत्वा रणे रावणम् ।
तस्यां न्यस्य विभीषणं पुनरसौ सीतापतिः पुष्पका-
रूढः सन् पुरमागतः स भरतः सिंहासनस्थो बभौ ।

[लङ्काकाण्डम्]

(७) वसिष्ठः—

श्रीरामो हयमेधमुख्यमखकृत् सम्यक् प्रजाः पालयन्
कृत्वा राज्यमथानुजैश्च सुचिरं भूरि स्वधर्मान्वितौ ।
पुत्रौ भ्रातृसुतान्वितौ कुशलवौ संस्थाप्य भूमण्डले
सोऽयोध्यापुरवासिभिश्च सरयूस्नातः प्रपेदे दिवम् ॥ ७ ॥

[उत्तर-काण्डम्]

फलश्रुतिः—

श्रीरामस्य कथासुधातिमधुरान् श्लोकानिमानुत्तमान्
ये शृण्वन्ति पठन्ति च प्रतिदिनं तेऽघौघविध्वंसिनः ।
श्रीमन्तो बहुपुत्रपौत्रसहिता भुक्त्वेह भोगाँश्चिरं
भोगान्ते च सदार्चितं सुरगणैर्विष्णोर्लभन्ते पदम् ॥

इति सप्तर्षिरामायणम् । भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः ।

(श्री श्रीपतिस्वामिप्रदत्त एवं श्री पं० योगदत्त झा महिषी, सहरसा, विहार के सौजन्य से प्राप्त—सम्पादक)

कथासार

महर्षि बाल्मीकि-कृत-रामायण में क्रमवद्ध सात काण्ड हैः—बाल, अयोध्या अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका तथा उत्तर और ये नाम सापेक्ष हैं। प्रस्तुत सकलन-संक्षिप्त बाल्मीकीय रामायण में भी मौलिक कथाभाग को यथासम्भव अव्याहत रखने का प्रयास किया है, जिसमें कथासार निम्न प्रकार सन्निविष्ट हैः—

बालकाण्ड (पृ० ३–२८)

बाल्मीकि नारद संवाद, बाल्मीकि के आश्रम में ब्रह्मदेव का पदार्पण, ऋष्य-शृङ्ग का अयोध्यागमन, अश्वमेध तथा पुत्रेष्टि यज्ञों की तैयारी, अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ, देवताओं की विष्णु से रावणवधार्थ प्रार्थना एवं राजा दशरथ के पुत्रत्व ग्रहण करने को बिष्णु की स्वीकृति, पायस चरु लिये हुए अग्निका यज्ञकुण्ड से प्रकट होना, पटरानियों का गर्भाधान, श्रीरामादि चारों भाइयों का जन्म, विश्वा-मित्र का राजा दशरथ से यज्ञरक्षार्थ राम-याचना, मुनिवसिष्ठ के परामर्श से राजा की स्वीकृति, रास्ते में विश्वामित्र से श्रीराम लक्ष्मण को विद्याप्राप्ति, विश्वामित्र द्वारा विविध अस्त्रों की प्राप्ति, सिद्धाश्रम में सबों का प्रवेश, मुनिका यज्ञारम्भ तथा कुमारों द्वारा उसकी रक्षा, ताडका एवं सुबाहु प्रभृति राक्षसों का बध तथा यज्ञ की पूर्णाहुति, विश्वामित्र जी के साथ मिथिला जाना, मार्ग में कुश-नाम की कन्याओं का कथाप्रसंग, सगर पुत्रों की कथा, गङ्गावतरण वृत्तान्त, गङ्गा द्वारा सगरपुत्रों का उद्धार, अमृतादि की उत्पत्ति, इन्द्रद्वारा दितिगर्भ की हत्या, विशाला नगरी में प्रवेश, इन्द्र तथा अहल्या को महर्षि गौतम का शाप अहल्या का उद्धार, राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र जी का राजा जनक से मिलना शतानन्दजी का जीवन-वृतान्त वर्णन, ब्रह्मतेज का प्रताप, विश्वामित्रजी को ब्रह्मर्षित्व प्राप्त, राजा जनक की धनुषप्राप्ति का वृतान्त, रामके हाथों शिवश-रासन भङ्ग, महाराजा जनकका महाराज दशरथ को बुलवाना, महाराजा दशरथ का सदलबल जनकपुर पहुंचना और उनका सोल्लास स्वागत, राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाइयों का क्रमसे सीता-ऊर्मिला, मण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति चारों बहनों से विवाह सम्पन्न, अयोध्या लौटते समय मार्ग में परशुरामजी का कोप, श्रीराम का परशुराम से विष्णु धनुष लेकर प्रत्यञ्चा चढ़ाना परशुराम का गर्व चूर होना, सदलबल बारात का सकुशल अयोध्या प्रवेश, भरतजी तथा शत्रुघ्न को ननिहाल जाना और श्रीराम की राजधानी में पिताजी के राज्यसञ्चालन में कुशल योगदान देना।

अयोध्याकाण्ड (पृ० २९-१३१)

राम की शासन-प्रणाली से प्रजावर्ग में प्रसन्नता, महाराज दशरथ का राम को युवराज बनाने की अभिलाषा, राजसभा का अनुमोदन, रामाभिषेक की तैयारी, राम को वसिष्ठ का उपदेश, श्रीराम के राज्याभिषेक संवाद से पुरवासियों में उल्लास एवं उत्साह, रामाभिषेक संवाद से मन्थराको संताप, कैकेयी को मन्थरा की दुर्मन्त्रणा, कैकेयी को राम के निर्वासन की घोर चिन्ता, कैकेयी का कोपभवन प्रवेश, राजा के आने पर उनसे दो वरों को मांगना, राम के लिये चौदह वर्ष वनवास और भरत के लिए यौवराज्य, महाराज दशरथ का कैकेयी को पुनः समझाने की चेष्टा करना, महाराज का करुण विलाप, कैकेयी का विषवमन, महर्षिवसिष्ठ का सुमन्त्र को दशरथ के पास भेजना, सुमन्त्र को राम को बुलाने का आदेश, श्रीरामका महाराज दशरथ के निकट पहुँचना, कैकेयी द्वारा श्रीराम को वनवास का निर्देश, श्रीराम की प्रतिज्ञा, संवाद सुन माता कौसल्या का विलाप, रामका अपनी माता तथा लक्ष्मण को समझाना, राम द्वारा भाग्य की प्रबलता का वर्णन, लक्ष्मण का घोर कोप, राम का अपनी माता कौसल्या को ढाढ़स बँधाना, पुत्र के लिये माता कौसल्या की मंगल कामना, रामका सीता के निकट जाकर समझाना, सीता का रामके साथ वनगमन के लिये आग्रह, श्रीराम का सीता को वनके दुःखों का वर्णन सुनाना, सीताका वनयात्रा में साथ चलने का श्रीराम से फिर भी आग्रह, अन्ततोगत्वा श्रीराम का सीता को साथ चलने की स्वीकृति दे देना, अनेक आनाकानी करने के पश्चात् श्रीराम का लक्ष्मण को भी साथ चलने की अनुमति देना, श्रीराम का दानमहोत्सव, श्रीराम के वनगमन के समाचार से पुरवासियों की व्याकुलता, श्रीराम का महाराज दशरथ को समझाना, कैकेयी को मन्त्री सुमन्त्र की फटकार, उसे (कैकेयी को) वृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ का उपदेश, सीता को भी मुनि परिधान पहनाते देख वसिष्ठ जी का कैकेयी पर कुपित होना, पुरवासियों का कैकेयी को धिक्कारना, राम का वनगमन हेतु पितासे आज्ञा मांगना, राम का वनगमन के लिये प्रस्थान और पुरवासियों का अनुगमन, राम के वनगमन से अयोध्या में क्षोभ, राजा दशरथ का विलाप, कौसल्या का रुदन, सुमित्रा का कौसल्या का समझाना, राम से पुरवासियों की प्रार्थना, श्रीराम का विलाप, पुरवासियों को भ्रम में डालना और आगे बढ़ जाना, पुरवासियों का घर लौट जाना, पुरवासिनी स्त्रियों का विलाप, जनपदवासियों की उद्विग्नता, श्रीराम की निषाद राज से भेंट, निषाद और लक्ष्मण का सारी रात जागरण, श्रीराम का गंगा पार करना, रामका भरद्वाज के आश्रम पर पहुँचना, श्रीराम का यमुना पार करना, श्रीराम का चित्रकूट पहुँचना, शृंगवेर पुर से सुमन्त्र को अयोध्या लौटना,

सुमन्त्र का महाराज दशरथ को श्रीराम का संदेश सुनाना, महाराज का विलाप, सुमन्त्रा कौसल्या को समझाना, कौशल्या का महाराज दशरथ के अपना दुःख सुनाना, महाराज दशरथ कौसल्या को मनाना, राजा दशरथ का कौसल्या को श्रवणकुमार के बध का वृतान्त सुनाना, महाराज दशरथ का देहत्याग, महाराज के देहावसान से रनिवास में हाहाकार, महाराज दशरथ के भौतिक शव को तेल की नाव में रखना, जाबालि द्वारा अराजकता स्थिति का वर्णन, वसिष्ठ जी का भरत के निकट दूत भेजना, ननिहाल से भरत का प्रस्थान, भरत का अयोध्या पहुँचना, सारे समाचार से भरत का सन्ताप, भरत का अपनी माता कैकेयी को धिक्कारना एवं खड़ी खोटी सुनाना, माता कौसल्या के सामने भरत की शपथ, महाराज का दाहसंस्कार, भरत शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न का मन्थरा को पीटना, भरत से मन्त्रियों का अनुरोध (राज्य ग्रहण करने का) ठुकराना, शत्रुघ्न का भरत की सभा में रामके मनाने हेतु सदलबदल वनगमन का निर्णय, भरत की वनयात्रा, भरत के समीप निषादराज का आगमन और उनसे भेंट, निषाद का भरत को राम का वृत्तान्त बताना, भरत का रामकी पर्णशय्या देखना, भरत का गंगा पारकर महर्षि भरद्वाज के आश्रमपर निवास, मुनिद्वारा भरत का अभूतपूर्व स्वागत सत्कार, भरत का मुनि से बिदा माँगना, भरत को चित्रकूट वन का रास्ता बताना, भरत का चित्रकूट पहुँचना, भरत को देखकर लक्ष्मण का कोपाग्नि भड़कना, राम का भरत के गुणों को प्रशंसा करना, भरत द्वारा चित्रकूट में श्रीराम की खोज, भरत का राम से मिलन, रामका भरत से राजनीति सहित विविध भाँति के प्रश्न, राम का भरत द्वारा पिता का मरण सुनाना, श्रीराम का मृतपिता को जलाञ्जलि देना श्रीराम का चित्रकूट में गयी हुई माताओं से मिलना, राम और भरत का संवाद राम के वचन, भरत का आग्रहपूर्ण कथन, भरत को रामका समीचीन उत्तर, महर्षि जाबालि के शास्त्र-विरुद्ध वचन, राम द्वारा उसका खण्डन और सत्य का प्रतिपादन, वशिष्ठ का राम को वश परम्परा नीति का प्रतिपादन, राम की अडिग निष्ठा, भरत को राम का उपदेश, राम का भरत को अपनी चरणपादुका देना, भरत का रामपादुका को अपने माथे पर चढ़ाना, भरत का अयोध्या जी लौटना, रास्ते में भरद्वाज से भेंट, भरत का वनसे लौटकर नन्दीग्राम में निवास करना, रामका मुनियों के द्वारा खरादि राक्षसों का अत्याचार सुनना, ऋषिपत्नी अनसूया द्वारा पतिव्रत धर्म की प्रशंसा, अनसूया से सीता का दिव्यालकार एवं अङ्गरागादि प्राप्त तथा राम का दण्डकारण्य में प्रवेश।

अरण्यकाण्ड (पृ० १३१-१९६)

श्रीराम का अनेकानेक महर्षियों से मिलन, राम का विराध से सामना, राम का बिराध पर प्रहार, राम लक्ष्मण का बिराध को गड्ढे में गाड़ना, राम का महर्षि

शरभङ्ग से मिलन तथा मुनि का देह-त्याग, राम का राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा करना, राम का महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर पहुँचना, कुछ काल वहां रह कर मुनि से विदा लेना, सीता का राम को धर्मसम्बन्धी परामर्श देना, श्रीराम का सहर्ष उसे अपनी नीति समझाना, श्रीराम का ऋष्याश्रमों को देखकर सुतीक्ष्णाश्रम में पुनः लौट आना और वहाँ अगस्त्याश्रम जाने की मुनि से अनुमति लेना, अगस्त्याश्रम का वर्णन, राम का अगस्त्याश्रम में प्रवेश और महर्षि द्वारा उनका यथायोग्य स्वागत एवं दिव्यास्त्र समर्पण, श्रीराम का पञ्चवटी गमन, गृध्रराज जटायु से भेंट, पंचवटी में पर्णकुटी का निर्माण, हेमन्त ऋतु का वर्णन, शूर्पणखा का राम के समक्ष कामज हाव-भाव का प्रदर्शन, नाक कान काट कर लक्ष्मण का शूर्पणखा को कुरूप करना, इस सम्वादसे खर का प्रकोप और राम के वध र्थ चौदह हजार दुर्धर्ष राक्षसों का भेजना, तथा उनका राम द्वारा वध, शूर्पणखा का खरको भड़काना, खर द्वारा युद्ध की तैयारी, खर की युद्ध यात्रा के समय विविध अशकुन, सीता को लक्ष्मण के संरक्षण में खोह में भेजना, खर की सेना का राम से सामना, राम द्वारा खर की सेना का विनाश, राम द्वारा दूषण आदि राक्षसों का वध, त्रिशिरा का बध, राम और खर का घोर संग्राम तथा खर का बध, रावण को खरादि के विनाश का समाचार अकम्पन के द्वारा मिलना, शूर्पणखा का भी रावण को समाचार पहुँचाना, शूर्पणखा का अपनी दशा दिखाकर रावण को भड़काना, उसका रावण को सीताहरण का परामर्श देना, रावण का मारीच के आश्रम पर जाना, राम का मारीच से सहायता मांगना, मारीच का रावण का अप्रिय किन्तु हितकारी परामर्श देना, राम को अस्त्रों की महिमा सुनाना, मारीच को प्राण-भय के कारण रावण को सहायता से मुकरना, मृत्युभय दिखा कर मारीच से सहायता स्वीकार कराना, रावण का मारीच से रत्नमय रूप धारण करने का आग्रह करना, मृगरूप धारण कर मारीच का राम के आश्रम पर पहुँचना, सीता का उस स्वर्ण मृग का देखना और मोहग्रस्त हो जाना, लक्ष्मण को शंकाओं का राम द्वारा समाधान, मारीच का श्रीराम को वंचित कर दूर ले जाना, आहत होने पर मारीच का 'हा, लक्ष्मण, हा सीते,' राम के स्वर में कहना, शब्द सुनकर सीता का विकल होना और लक्ष्मण को भाई को सहायता में जाने को कहना, वहां से नहीं डिगने पर लक्ष्मण को सीता का कठोर वचन कहना, एतदनन्तर रावण का भिक्षुक रूप में आना और सीता से सत्कृत होना, पुनः सीताको धमका कर अपहरण करना, रावण और जटायु में घोर संग्राम और जटायु को मर्मान्त आघात पहुँचना रावण का सीता को एक वर्ष की अवधि देना, श्रीराम का अपने आश्रम को लौटना, मार्ग में राम का अशकुन देखना, लक्ष्मण का अकेले आते देखकर राम की फटकार,

पर्णकुटी को सूना पाकर राम की व्याकुलता, सीता की खोज, राम का विलाप, राम का दुःख और कोप, लक्ष्मण का राम से कोप त्याग की प्रार्थना, राम का जटायु से मिलना, राम का अपने हाथों जटायु का दाह संस्कार करना, आगे बढ़ने पर राम-लक्ष्मण का कबन्ध द्वारा पकड़ा जाना, राम लक्ष्मण का कबन्ध के हाथ काटना, कबन्ध का राम को अपने शाप का वृत्तान्त बताना, कबन्ध का राम को सुग्रीव से मैत्री करने का परामर्श देना, और सीता की प्राप्ति का उपाय बताना तथा ऋष्यमूक का मार्ग भी निर्देश करना, शबरी से राम की भेंट और उस नारी का देह त्याग तथा राम का पम्पासर पहुँचना।

किष्किन्धाकाण्ड (पृ० १९७–२२६)

श्रीराम द्वारा पम्पासर के निकटस्थ वनप्रदेश एवं स्वयं उस सरोवर का सौन्दर्य वर्णन, उस समय सीता के अभाव से उनका शोकाभिभूत होना, लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना मिलना और स्वस्थ होना, ऋष्यमूक के शिखरस्थ सुग्रीवादि वानरों की दृष्टि श्रीराम पर पड़ना और भयविह्वल होना, सुग्रीव को मन्त्रणा और हनुमान् के वस्तुस्थिति जानने हेतु भेजना, हनुमान् का राम के निकट पहुँचना और पाण्डित्य पूर्ण अभिभाषण करना, फिर रामलक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाकर हनुमान् का दोनों में मित्रता स्थापित करना, सुग्रीव द्वारा सीता का वस्त्राभूषण दिखाना और उन्हें पहचान कर राम का शोकाकुल होना सुग्रीव से राम को आश्वसित होना, सुग्रीव के कष्ट निवारणार्थ राम का बालि के वध की प्रतिज्ञा करना, सुग्रीव का बालि के साथ हुए वैर का वृत्तान्त बताना, सुग्रीव का राम को बालि का बल बताना, राम का सुग्रीव को विश्वास दिलाना, बालिके द्वार पर जाकर सुग्रीव का गर्जन, तारा का बालिको हित की बात बताना और युद्ध विरत करने का प्रयास, बालिका तारा की सलाह को न मानना और मैदान में डाटना, राम द्वारा बालि वध, बालिका राम को फटकारना, राम द्वारा अपने कार्य का समर्थन, बालिके पास तारा का आना और विलाप करना, तारा को हनुमान् का आश्वासन, बालिका राजकीय दाह-संस्कार, सुग्रीव का राज्याभिषेक राम का प्रवर्षण पर्वतपर चातुर्मास निवास, वर्षा का आगमन और राम द्वारा उसका वर्णन, हनुमान् का सुग्रीव को प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाना, शरदनन्तर श्रीराम के दुःख के कारण लक्ष्मण का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव को तारा द्वारा लक्ष्मण को शान्त करना, लक्ष्मण का सुग्रीव को परुषवचन कहना, तारा द्वारा लक्ष्मण को आश्वासन, सुग्रीव का लक्ष्मण से अनुरोध, सुग्रीव का वानरी सेना बुलवाना, सुग्रीव का राम के पास जाना, उसी सेना का आगमन, प्रमुख वानरी सेना टोली को प्रत्येक दिशा में भेजना, श्रीराम का हनुमान् को विशेष सन्देश देना, हनुमान्

आदि के द्वारा विविध वनों में सीता की खोज, हनुमान् आदि का ऋक्ष बिल में प्रवेश, स्वयंप्रभा द्वारा वानरों का आतिथ्य, उसीके द्वारा उनका बिल से निष्कासन, निर्धारित समय बीत जाने के कारण अङ्गद का दुःखी होना, हनुमान् की गुट को फोड़ना, वानरों का उपवास, वानरों से सम्पाति के प्रश्न, वानरों का सम्पाति को जटायु के मरण का समाचार सुनना, सम्पाति का सूर्य के पास पहुँचने की कहानी सुनाकर मुनि द्वारा सम्पाति के भविष्य कथन, सम्पाति के पुनः पंख निकलना, समुद्र लंघन विषयक मन्त्रणा, वानरों का अपना अपना बल बताना, जाम्बवान् का हनुमान् का समुद्र लघन हेतु प्रोत्साहित करना और हनुमान् का समुद्र लंघन हेतु उद्यत होना।

सुन्दरकाण्ड (पृ० २७७–२५५)

हनुमान् के वायुमार्ग से जाते देख उनके विरामार्थ मैनाक को समुद्रतल से ऊपर उठना, सुरसा द्वारा हनुमान् के बुद्धिबल की परीक्षा और शुभकामना, सिंहिका का बध, हनुमान का लङ्का पहुँचना, कपिवर का रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करना, रात में लङ्का प्रवेश करते ही लङ्किनी का अवरोध और उस पर हनुमान् की विजयप्राप्ति, उसके पश्चात् प्रत्येक स्थान में जाकर सीता की खोज करना, रावण के घर में सीता का अन्वेषण पुष्पकविमान को देखना, इसी क्रम में रावण के भरे पूरे रनिवास को भी देखना, हनुमान् का मन्दोदरी को देखना, रावण की मधुशाला में सीता की खोज, सीता को नहीं पाने से हनुमान् का विषाद और मानसिक क्लेश, अन्त में अशोकवाटिका में सीता की खोज, हनुमान् को सीता की प्राप्ति, उनकी दशा देखकर कपिवर का पछतावा, अशोकवाटिका में रावणका सीता से प्रेम प्रार्थना, सीता का रावण को तृणवत् समझना, रावण का सीता को दो मास की अवधि देना, सीता को राक्षसियों का फुसलाना तथा धमकाना, सीता का सन्ताप, सीता द्वारा प्राण त्याग का निश्चय, त्रिजटा का स्वप्न सुनाना, अन्य साधन के भाव में केशपाश से ही सीता का फंसरी लगाने का निश्चय, इतने में सीता को शुभ-शकुन दृष्टिगोचर होना, हनुमान् का कर्तव्य निर्धारण, हनुमान् का सीता को रामचरित्र श्रवण करना, सीता का स्वप्नादितर्क, हनुमान् का पेड़ से उतर कर सीता को प्रणाम करना, दोनों में संवाद, सीता को हनुमान् के प्रति रावण सम्बन्धी शङ्काओं का का निवृत्त होना, हनुमान् का सीता के मन में विश्वास उत्पन्न करना, हनुमान् द्वारा सीता को राम की अंगूठी देना, हनुमान् द्वारा सीता को साथ लाने में अनौचित्य, सीता का हनुमान् को जयन्त का वृत्तान्त बताना, सीता का हनुमान् को चूडामणि देना, सीता का हनुमान् को लौटाने की अनुमति देना, हनुमान् द्वारा प्रमद वन का विनाश, हनुमान् द्वारा रावण के किंकरी सेना का संहार तथा जाम्बुमाली, अमात्य पुत्र, पञ्चसेनापति

कथा, अक्षयकुमारादि का सेनासहित संहार, अन्त में हनुमान् पर मेघनाद का आक्रमण और ब्रह्मास्त्र द्वारा उनको बाँध कर रावण के दरबार में लाना, रावण का प्रताप देख हनुमान् को आश्चर्य, सेनापति प्रहस्त के प्रश्न हनुमान् से, रावण को दूतबध से विरत करना, पूँछ में आग लगाने की आज्ञा देना, पर हनुमान् के लिये अग्नि का शीतल होना, हनुमान् द्वारा लंका दहन, उन्हें सीता दहन का भ्रम होना, भ्रम दूर करने के हेतु हनुमान् को सीता से मिलने जाना और वापस लौटने की आज्ञा माँगना, वहां से हनुमान् की उड़ान और समुद्र पार आकर साथियों से मिलना तथा सारा वृत्तान्त कह सुनाना, आगे की कामों की चिन्ता तथा अङ्गद जाम्बवान् संवाद. वहाँ से चलकर मधुवन आना और अंगद की आज्ञा से मधुपान करना, दधिमुख के रोकने पर उसकी दुर्दशा करना, दधिमुख के द्वारा हनुमानादि के आगमन के समाचार से सुग्रीव को प्रसन्नता, हनुमान् आदि का सुग्रीव के पास पहुँचना, हनुमान् का सीता सम्बन्धी राम को शुभ समाचार सुनाना तथा सीता की चूडामणि देना, सीता के विषय में राम के प्रश्न, हनुमान् का सीता का सन्देश और सीता को आश्वासन देने की बात बताना।

लङ्काकाण्ड (पृष्ठ २५३ से ३५७ तक)

श्रीराम द्वारा हनुमान् की भूरि भूरि प्रशंसा, सुग्रीव द्वारा श्रीराम को प्रोत्साहन, हनुमान् द्वारा लंका की किलेबन्दी का वर्णन, श्रीराम का उत्साह तथा उद्योग, श्रीराम की मन्त्रणा, रावण की सभा में उसके सचिवों के वक्तव्य, प्रहस्त आदि के कथन और बिभीषण की आलोचना एवं हितकारक सलाह, रावण की मन्त्रणा का द्वितीय अधिवेशन, कुम्भकर्ण के विचार, महापार्श्व के विचार की रावण द्वारा सराहना, मेघनाद और विभीषण का विवाद, और विभीषण की फटकार, रावण से अपमानित हो विभीषण का राम की शरण में जाना, सुग्रीवादि की तर्कना के बावजूद श्रीराम का विभीषण को अपनाने का निश्चय, विभीषण के परामर्शानुसार समुद्र के किनारे राम का कुशास्तरण पर बैठ समुद्र से रास्ता मांगना, रावण द्वारा सुग्रीव को फोड़ने का उद्योग, समुद्र का क्षोभ नल द्वारा समुद्र पर सेतुबन्ध, सेना का समुद्र पार करना और इकठ्ठा होना, रावण का रामकी सेना में शुकसारण को भेद लेने के लिये भेजना, रावण का मर्कट सेना का बल ज्ञात करना, सारण का प्रमुख बानरों का बल-वर्णन करना, रावण का शार्दूल आदि गुप्तचरों को रामदल में भेजना, शार्दूल द्वारा रावण को राम सेना के बल की जानकारी पाना, विद्युज्जिह्व राक्षस द्वारा माया प्रयोग, सुग्रीवका रावणको नीचा दिखा पुनः रामके पास लौट जाना, राम का अंगदको दूत बनाकर रावण के पास भेजना, युद्धारम्भ, वानरों और राक्षसों के बीच द्वन्द्व युद्ध

रात्रियुद्ध, मेघनाद द्वारा वानरों को घायल होना और रामलक्ष्मण को नागपाश में बाँधना, सुग्रीवादिका शोकाकुल होना, रावण का त्रिजटा को आदेश सीता को युद्ध-भूमि में लेजाकर मृत पतिको दिखा लाने के लिये, लक्ष्मण को मूच्छित देख रामका विलाप, गरुड द्वारा राम लक्ष्मणादि को नागपाश से मोक्ष, रावण द्वारा धूम्राक्ष को रणभूमि में भेजना और हनुमान् द्वारा उसका बध, वज्रदंष्ट्र का अंगद से घोर युद्ध और उनके हाथ मरण, अकम्पन द्वारा वानरी सेना का कदन और हनुमान् द्वारा उसका बध, सेनापति प्रहस्त द्वारा प्रचंण्ड संग्राम पर वानर सेनापति नील द्वारा उसका निधन, रावण को स्वयं युद्धभूमि में जाना और परास्त होकर लौटना और प्रलाप करना, राक्षसों का कुम्भकर्ण को जागना उसे रावण के पास लाना. कुम्भकर्ण से रावण की प्रार्थना और कुम्भकर्ण की फटकार. फिर कुम्भकर्ण का युद्ध के लिये उद्यत होना और रावण को आश्वस्त करना, घोर युद्ध मचाने के पश्चात् राम द्वारा उसका वध, उसके बध से रावणको मर्मान्तिक मनस्ताप, नरान्तक-देवान्तक-अतिकाय आदिपुत्रों के मारे जाने से रावण को पुत्र शोक, मेघनाद का माया युद्ध, राम सेना का घोर कदन एवं आहत होना, हनुमान् द्वारा हिमालय से और औषधिपर्वत लाना और सबों का नीरुज होना, राम द्वारा मकराक्ष का वध, मेघनाद और मायामयी सीता का वध, यह देखकर हनुमान् का युद्ध रोकना, श्रीराम को संवाद देना, रामको शोकाकुल होना, विभीषण द्वारा सच्ची वस्तुस्थिति का ज्ञान, वानरीसेना को मोहमें डाल मेघनाद का निकुम्भिला पहुँचना—पूर्णाहुति के लिये, विभीषण के परमार्शानुसार प्रमुख योद्धाओं सहित लक्ष्मण का निकुम्भिला पहुँचना और पूर्णाहुति सम्पन्न होने के पूर्व मेघनाद पर धावा बोल देना, घोर संग्राम के पश्चात् लक्ष्मण के दिव्यबाण से मेघनाद का वध. आहत लक्ष्मण को हनुमान् विभीषण के सहारे रामके निकट पहुँचना और शल्यचिकित्सा से नीरुज मेघनाद वध से राम सेना में हर्षोल्लास, पुत्रबध से रावण को अपार शोक, सीता वध के लिये रावण का उद्यत होना, पर महापार्श्व द्वारा इस विचार को त्याग देनेका परामर्श, रावण को स्वयं युद्ध के लिये समर भूमि में जाना और गन्धर्वास्त्र का प्रयोग करना पर राम द्वारा विफल होना, रावण का कोप, एक एक कर ससैन्य विरुपाक्ष महोदर तथा महापार्श्व का समरांगण जाना और सदाके लिये सो जाना, रावण का लक्ष्मण पर शक्ति प्रयोग, औषधि द्वारा लक्ष्मण का विशल्य होना, राम का रावण के शूल को नष्ट करना, सारथि द्वारा रावण को युद्धभूमि से हटाना और इसके लिये सारथी को डाँटना, राम रावण का द्वैरथ घोर युद्ध, मातली के स्मरण दिलाने पर राम का रावण पर ऐन्द्रास्त्र प्रयोग कर बधकर डालना, रावण के राजमहल में शोक समुद्र का उमड़ना रावण का राजकीय विधि से दाह संस्कार, लङ्का में विभीषण का औपचारिक अभिषेक, हनुमान् का सीता को

रामविजय का शुभ समाचार सुनाना, सीता का रामदर्शन पाना, राम द्वारा सीता तिरस्कार, सीता का अग्नि प्रवेश, ब्रह्मा आदि देवताओं का वहाँ आना और राम की स्तुति करना, सीता को लेकर अग्निदेव का वहाँ पहुँचना और उसकी विशुद्धता की साक्षी देना, देवताओं के कथन पर श्रीराम का सीता को स्वीकार करना, दिवंगत राजा दशरथ का भी उन देवताओं के साथ वहाँ आना और राम लक्ष्मण सीता का आशीर्वाद देना, राम को इन्द्र का वरदान, राम के सम्मुख विभीषण द्वारा पुष्पक-विमान प्रस्तुत करना और उस पर सवार हो अयोध्या को प्रस्थान करना, लङ्का से अयोध्या लौटते समय मार्गवर्णन, भरद्वाज के आश्रम पहुँचने पर मुनि द्वारा उनका यथोचित स्वागत, हनुमान् का सभी के आगमन का समाचार, नन्दिग्राम जाकर भरत को सुनाना, हनुमान् भरत संवाद, राम और भरत का मिलाप, राम की शोभा यात्रा और उनका यथाविधि राज्याभिषेक।

उत्तरकाण्ड (पृ० ३१८, ३९८)

राम मिलन के लिये अगस्त्यादि ऋषियों का अयोध्या पहुँचना, समुचित अभिवादनानन्तर श्रीराम का प्रश्न और महर्षि अगस्त्य का यथायोग उत्तर, कुबेर का लोकपाल पद और लङ्का प्राप्ति, माली राक्षस का वध और सुमालि आदि का निग्रह, रावण आदि की उत्पत्ति, रावण आदि की तपस्या और ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्ति रावण की लङ्का प्राप्ति, रावण आदि का विवाह, रावण द्वारा कुवेर के दूत का वध, यक्षों और राक्षसों क तुमुल युद्ध और रावण का कुबेर से पुष्पक विमान छीन लेना, रावण का 'रावण' नाम पाना, रावण को वेदवती शाप, राजा मरुत्त पर विजय, अनरण्य पर आक्रमण और रावण द्वारा उनका वध, मरते समय उनका रावण को शाप, यम रावण का युद्ध और रावण की विजय, रावण द्वारा वरुण पर विजय, खर और शूर्पणखा का दण्डकारण्य निवास, रावण को नलकूबर का शाप, इन्द्र के साथ युद्ध में सावित्र के हाथों सुमाली (रावण के नाना) का वध, मेघनाद का इन्द्र को बन्दी बनाना, इन्द्र के पराजय का कारण, रावण का सहस्रार्जुन पर आक्रमण और नर्मदा स्नान, सहस्रार्जुन द्वारा रावण का पकड़ा जाना और बन्दी बनना, फिर पुलस्त्य ऋषि की मध्यस्थता से छुटकारा पाना, वालि पर रावण की चढ़ाई और उसका बन्दी बनना, बाद में वालि से मैत्री कर लेना, हनुमान् की उत्पत्ति का वृत्तान्त, हनुमान् का इन्द्रवज्र से आहत होना और इससे वायु का कोप, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं द्वारा हनुमान् को वर प्राप्ति, पुरवासियों द्वारा राम का अभिनन्दन और अभिषेक में आये हुए जनकादि राजाओं की विदाई, श्रीराम का हनुमान् आदि वानरों को दान-मान आदि से प्रसन्न करना, हनुमान् की प्रार्थना, राम का पुनः

पुष्पक विमान को वापस लौटाना, राम सीता का विहार, राम का भद्र से सीता सम्बन्धी अपनी बदनामी का समाचार सुनना, राम का लक्ष्मण आदि भाइयों को बुलवाना, लक्ष्मण को वनमें सीता को छोड़ आने की आज्ञा देना, लक्ष्मण का सीता के साथ गगातट पर पहुँचना और गंगा पार कर सीता को राम का आदेश सुना देना, लक्ष्मण द्वारा सीता का त्याग, सीता का वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश, सुमन्त्र का राम को सीता के वियोग का रहस्य बताना, राम की चिन्ता और लक्ष्मण द्वारा आश्वासन, राजा नृग का शापप्राप्त होने का वृत्तान्त, राजा-निमि और वसिष्ठ का परस्पर एक दूसरे को शाप देना वशिष्ठ की मैत्रावरुणित्व प्राप्ति, राजा निमिको निमिषत्व प्राप्ति, शुक्राचार्य का राजा ययाति को शाप देना और ययाति को उसे सह लेना, राजा पूरु का राज्याभिषेक, च्यवनादि ऋषियों का राम दरबार में आगमन, राम से च्यवनादि की लवणासुर से रक्षा करने की प्रार्थना लवणासुर के वधार्थ राम द्वारा शत्रुघ्न से प्रार्थना, राम का शत्रुघ्न को लवणासुर के वध का उपाय बताना, शत्रुघ्न का प्रस्थान, शत्रुघ्न का वाल्मीकि आश्रम में पड़ाव डालना और उसी रात लवकुश का जन्म, यथानिर्देश शत्रुघ्न का लवणासुरके भवन को घेर लेना उसके आने पर उससे शत्रुघ्न का विवाद और लवण का वध, शत्रुघ्न का मधुपुरी वसना, वाल्मीकि द्वारा शत्रुघ्न की प्रशंसा, बारह वर्ष बाद राम शत्रुघ्न मिलन, राम के द्वार पर ब्राह्मण का विलाप और राम का उसके वेटे को जीवन दान देना, निजका मांसाहारी स्वर्गीय प्राणी की कथा अगस्त्य जी द्वारा वर्णन, राम का अगस्त्य से दिव्याभूषण पाना, राजदण्ड की कथा का वर्णन, राम का अयोध्या लौटना, रामका राजसूय यज्ञ की इच्छा, वृत्रासुर की तपस्या और इन्द्र द्वारा उसका वध का प्रसँग, इन्द्र का ब्रह्महत्या से अश्वमेधयज्ञ द्वारा उद्धार, राजा इल की स्त्रीत्व से छुटकारा, अश्वमेध ही द्वारा, रामके अश्वमेध यज्ञकी तैयारी, अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा छूटना, वाल्मीकि का यज्ञ भूमि में कुश-लव द्वारा रामायण गान, रामका वाल्मीकि के ढिग दूत भेजना, वाल्मीकि का रामको सीता की शुद्धि विषय में विश्वास दिलाना, सीता का रसातल प्रवेश, राम के कोप की शान्ति कौसल्या आदि माताओं का स्वर्गारोहण भरत की गन्धर्व-विजय यात्रा, विजय प्राप्त कर गन्धर्व देश में भरतात्मज तक्ष और पुष्कल का राज्यभिषेक, लक्ष्मण तनय अंगद और चित्रकेतुका अभिषेक, राम के पास काल का आगमन, काल का राम को ब्रह्मा का आदश सुनाना, उसी समय दुर्वासा ऋषि का आगमन, राम द्वारा लक्ष्मण का त्याग, कुश-लव का राज्याभिषेक, हनुमान्-विभीषण आदि को राम की आज्ञा, राम को महाप्रस्थान, अनुयायियों सहित रामका स्वर्गारोहण तथा रामायण श्रवण फल।

जीवन-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ के संस्कर्ता बाबू श्री भागवत प्रसाद सिंह का जन्म भूमिहार ब्राह्मण कुलके एक किसान परिवार में फसली सन् १३०७ कार्तिक शुक्ल द्वितीया मंगलवार को हुआ। इनके पिता का नाम बाबू दरबारी सिंह, और माता का नाम रामवती देवी था। इनके पितामह जीतन सिंह और प्रपितामह हरदयाल सिंह जी परम साधु स्वभाव के महात्मा थे। वे सदैव सन्तोषधन से सन्तुष्ट रहा करते थे। श्री सिंह जी का जन्मस्थान ग्राम बरौनी पो० बरौनी डचौढ़ी, जि० बेगूसराय, (विहार) है। भागवत बाबू बाल्यकाल से ही जनसमक्ष बड़े कुशाग्र बुद्धि उदीयमान प्रतीत होने लगे। आपने सन् १९१८ ई० की मिडिल परीक्षा में भागलपुर डिवीजन में सर्वोत्परि लब्धांक पाया। प्राकृतिक अध्ययन में तो संपूर्ण विहार में प्रथम आये। उस समय लोक शिक्षाविभाग ने आपको स्वर्णपदक प्रदान किया। सन् १९२१ ई० के आरंभ में अपने ३० उत्तमोत्तम सह पाठियों के साथ राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी के साथ असहयोग आन्दोलन में भाग ले लिये। इसलिये शिक्षा में कई वर्षों तक व्यवधान हो गया। सन् १९२३ ई० में इन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। सन् १९२७ ई० से ५४ ई० तक अर्थात् लगातार २६ वर्षों तक सहायक शिक्षक और २ वर्ष प्रधानाध्यापक पद पर बड़ी सफलता से कार्य किया। सन् १९५४ ई० में अध्यापन कार्य में बहुत बन्धन जान त्यागपत्र दे दिये। सन् १९५५ ई०में विहार सरकार ने सब जमींदारों से जमींदारी ले ली। इनकी भी छोटी सी जमीन्दारी थी, उसी में वह चली गयी। सन् १९५६ ई० में इनके पिता जी का स्वगवास हो गया। सन् १९५८ई०में गंगाजी ने लगभग २५ बीघे जमीन अपने गर्भमें कर लिया। बड़े साधारण व्यक्ति के समान रहते हुए ये अपने संकटोंको झेलते हुए कभी भी अपने कर्तव्य-पथसे विचलित नहीं हुए। श्री सिंह जी में सबसे अधिक विशेषता यह है कि इन्होंने किसी एक विषय का आदि से अन्त तक नहीं पढ़ा, किन्तु हिन्दी, संस्कृत, उरदू, फारसी, अंग्रेजी भाषायें, गणित, इतिहास, भूगोलादि शाखाओं के साथ-साथ व्यावहारिक आवश्यक सभी कामों का अनुभव अद्भुत रखे हैं। ये निरन्तर स्वतन्त्ररूपसे विद्याध्ययन ही करते रहना पसन्द करते हैं। पातञ्जलयोगसूत्रको कण्ठ कर उसके अनुसार अपना जीवन तथा साथियों का भी वैसा ही जीवन बिताने पर जोर दिया करते हैं। ये 'सादा जीवन, उच्च विचार' और "ओते पैर पसारिये जेती लम्बी ठौर" इस सूक्ति को व्यावहारिक

रूप में अमल किया करते हैं। इनके संपर्क में जो विद्वान् समक्ष में आते हैं, उन्हें इनके मुख से 'अध्यात्मरामायण' 'महाभारत' श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता' 'योगसूत्र' 'वाल्मीकिरामायण' एवं उपनिषदों के साथ-साथ अंग्रेजी के अच्छे-अच्छे मुहावरों के साथ तुलनात्मक विचारधाराको सुन कर बहुत ही आश्चर्य चकित होना पड़ता है। श्री सिंहजी अपने जीवन के बारे में सदैव परिचय दिया करते हैं कि—

'Jack in all Arts But Master of None."

इन्होंने अपने सफल परिश्रम से 'संक्षिप्त वाल्मीकिरामायण' का संकलन कर जनता का महान उपकार किया है। इनके एकमात्र सुपुत्र श्रीबाबू देवकीनन्दन सिंह शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर कार्य कर रहे हैं। ये भी पिता के तुल्य विद्याव्यसन में हो अपना अधिक समय का सदुपयोग किया करते हैं।

श्रीसिंह जीने महाभारत का संक्षिप्त रूप का संकलन किया है। यदि इनका संक्षिप्त वाल्मीकीयरामायणसे लोगोंको लाभ हुआ तो इनको इतनी लगनशीलता है कि जनता को लाभ पहुँचाने के लिए ये 'संक्षिप्त महाभारत' को भो प्रकाशित करनेमें उत्साहित अवश्य होंगे। बरौनी गाँव में गृहस्थाश्रम में रहकर इतने अध्यवसायी ज्ञानपिपासु दूसरा कोई देखने में नही आ रहा है। भगवान् ऐसे पुरुष को शतायु अवश्य करें।

वाल्मीकीय रामायण की सूक्तियाँ

(१) धर्म

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥ (अरण्य काण्ड)

धर्म से ही धन, सुख तथा सब कुछ प्राप्त होता है, इस संसार में धर्म ही सार वस्तु है।

(२) अधर्म

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्याऽपि रक्षिता ॥ (सुन्दर काण्ड)

हा! यह रावण, कहीं ऐसा पापाचारी न होता, तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवताओं का भी रक्षक (राजा) हो सकता था।

(३) सत्य

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥ (अयो० काण्ड)

सत्य ही संसार में ईश्वर है, धर्म भी सत्य के ही आश्रित है, सत्य ही समस्त सम्पत्तियों का मूल है, सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।

(४) कर्म-फल

यदाचरति कल्याणि! शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भद्रे! कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥ (अयो० काण्ड)

महाराज दशरथ कौशल्या जी से कहते हैं कि हे कल्याणि! मनुष्य जैसा भी अच्छा बुरा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्त्ता को अपने किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेवकः ॥ (अयोध्या काण्ड)

जो मनुष्य किसी काम के परिणाम पर विचार किये बिना ही आँख मूँद कर उसे कर लेता है, बाद में वह फलप्राप्ति के समय पलाश वृक्ष की सेवा करने वाले की तरह पश्चात्ताप करता है, उसका काम सफल नहीं होता है।

(५) सफल जीवन

सुजीवं नित्यशस्तस्य यः परैरुपजीव्यते।
राम! तस्य तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥ (अयोध्या काण्ड)

जिसके आश्रय में अनेक व्यक्ति जीते हैं, उसीका जीवन सार्थक है। जो दूसरे के सहारे जीता हैं, उस असमथ परावलम्बित का जीना न जीने के समान है।

(६) सुख

'न सुखाल्लभते सुखम्' 'दुर्लभं हि सदा सुखम्'। (अ०एवंअ०काण्ड)

सुख से सुख को वृद्धि नहीं होती, उसके लिए कष्ट उठाना पड़ता है। "किसी का भी सदा सुखी बना रहना दुर्लभ है।

सुदुःखं शयितः पूर्वं प्राप्येद सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकालं न जानोते विश्वामित्रो यथा मुनिः॥ (किष्किन्धा काण्ड)

किसी को जब बहुत दिनों तक अत्यधिक दुःख भोगने के बाद महान् सुख मिलता है, तो उसे विश्वामित्र मुनि की तरह समय का ज्ञान नहीं रहता। अर्थात् सुख का अधिक समय भी थोड़ा ही जान पड़ता है।

(७) मैत्री

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्। (किष्किन्धा काण्ड)

उपकार करना मित्रता का लक्षण है और अपकार करना शत्रुता का।

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम्॥ (किष्किन्धा काण्ड)

मित्रता करना सहज है, लेकिन उसको निभाना कठिन है।

स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते।
स वन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते॥ (युद्धकाण्ड)

सुहृद् वही है जो विपत्ति-ग्रस्त दीन-हीन मित्र का साथ दे और सच्चा बंधु वही है जो अपने कुमार्गगामी बन्धु को भी सहायता करे।

'दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यपश्यतः।' (सुन्दरकाण्ड)

सभी का ऐसा स्वभाव होता है कि सामने रहने पर प्रीति बनी रहती है, किन्तु परोक्ष में उतना सौहार्द नहीं रह पाता।

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥ (युद्धकाण्ड)

शत्रु और क्रुद्ध महाविषधर सर्प के साथ भले ही रहना पड़े, किन्तु ऐसे मनुष्य के साथ कभी रहने का अवसर प्राप्त न हो, जो ऊपर से मित्र कहलाता हो, पर भीतर भीतर शत्रु का हित साधन करता हो।

(८) अपना और पराया

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः॥ (युद्धकाण्ड)

पराया मनुष्य भले ही गुणवान् हो तथा स्वजन सर्वथा गुणहीन ही क्यों न हो लेकिन गुणी परिजन से स्वजन ही अच्छा होता है। अपना तो अपना है और पराया तो पराया ही रहता है।

(९) उत्साह

उत्साहो बलवानार्य[1] नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ (किष्किन्धा-काण्ड)

लक्ष्मण श्रीरामजी से कहते हैं—आर्य ! उत्साह बड़ा बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुषके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः॥ (सुन्दर-काण्ड)

उत्साही मनुष्य सदा सब कार्यों में प्रवृत्त रहता है। उत्साह ही जीवन के प्रत्येक कार्य को सफल बनाता।

(१०) शोक

यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्धयति॥ (किष्किधाकाण्ड)

जो मनुष्य अपने पराक्रम दिखाने के अवसर पर विषाद (शोक)-ग्रस्त होता है, उसका अपना आत्मतेज नष्ट हो जाता है और पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥ (युद्धकाण्ड)

उत्साहहीन, दीन और शोकाकुल मनुष्य के सभी काम बिगड़ जाते हैं, वह घोर विपत्ति में फँस जाता है।

'ये शोकमनुवर्त्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्'। (किष्किन्धाकाण्ड)

शोकग्रस्त मनुष्यों को कभी सुख नहीं मिलता।

---

(१) 'आर्य' की परिभाषा निम्नोक्त रूप में जानना चाहिये—

कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य इति स्मृतः॥ (वशिष्ठस्मृति)

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥ (महाभारत)

(११) क्रोध

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥
वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ (सुन्दरकाण्ड)

क्रोध के वशवर्ती लोग क्या नहीं कर डालते । क्रोध के आवेश में लोग अपने पूज्यों—माता, पिता एवं आचार्यों को भी मार डालते हैं और क्रोध से अभिभूतलोग सज्जनों को भी कुवाक्य कह बैठते हैं ।

क्रोध की दशा में मनुष्यों को कहने और न कहने योग्य बातों का विवेक नहीं रहता । वह मनुष्य कुछ भी कर सकता है और कुछ भी बक सकता है । उसके लिए कुछ भी अकार्य और अवाच्य नहीं है ।

(१२) लोकनीति

नचातिप्रणयः कार्यो कर्त्तव्योऽप्रणयश्च ते ।
उभयं हि महान् दोषस्तस्मादन्तरदृग्भव ॥ (किष्किन्धा-काण्ड)

मृत्युपूर्व वालीने अपने पुत्र अंगद को यह अन्तिम उपदेश दिया था कि तुम किसीसे अधिक प्रेम या अधिक दैन्य न करना, क्योंकि दोनों ही अत्यन्त अनिष्ट-कारक होते हैं, सदा मध्यम मार्ग का ही अवलम्बन करना ।

(१३) स्नेहाधिक्य हानिकारक

'अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्त्तिरार्द्राऽपि दह्यते । (किष्किन्धा-काण्ड)

वाली ने आगे कहा—पुत्र ! अत्यन्त स्नेहयुक्त होने से दीपक की बत्ती भी जल जाती हैं । यही दशा मनुष्य की भी है । स्नेहयुक्त = तैलयुक्त, प्रेमयुक्त ।

(१४) दण्डनीति

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ (सुन्दर-काण्ड)

यदि गुरु भी प्रमादवश कर्त्तव्य का विचार त्याग दे और कुमार्गगामी हो जाय तो उसे भी शासित करना आवश्यक है ।

(१५) निर्दोषी व्यक्ति अदण्डय

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ! ।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ (अयोध्याकाण्ड)

मिथ्या अपराधों के लिये दण्ड नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि निर्दोष व्यक्तियों के नेत्रों से जो अश्रु गिरते हैं, वे स्वेच्छाचारी शासक का सर्वनाश कर डालते हैं।

(१६) राजधर्म

पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षसा सदा।
राज्यभार-नियुक्तानामेष धर्मः सनातनः॥ (बालकाण्ड)

जिसके कन्धों पर शासन का भार हो, उसे व्यक्तिगत पाप और दोष का विचार त्यागकर जिस प्रकार भी हो सके सदा प्रजा का हित करना चाहिए यही सनातन राजधर्म है।

(१७) पापफल-भोग

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति॥ (युद्धकाण्ड)

काल के पाश में बंधा हुआ मनुष्य स्वयं पाप करता है, किन्तु उस एक अधम के अपराध से सारा कुल नष्ट हो जाता है।

(१८) गुण-प्रभाव

प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता।
असामर्थ्यं फलन्त्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः॥ (युद्धकाण्ड)

शान्ति, क्षमा, सरलता, प्रियभाषण—ये सज्जनों के गुण हैं। गुणहीन दुर्जन पर इन गुणों से शिष्ट व्यवहार का सत्प्रभाव नहीं पड़ता, उलटे सज्जनों की असमर्थता ही प्रकट होती है।

(१९) सृष्टिस्थिति

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ (अयोध्या-काण्ड)

समस्त संग्रहों का अन्त—विनाश है, बहुत उत्थान का अन्त पतन है, संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।

ग्रन्थसम्मतयः

(१)

(श्री १०८ स्वामी करपात्री जी महाराज,

संस्थापक : धर्मसंघ, वाराणसी)

भारतीय-संस्कृतेः सभ्यतायाश्च मौलिकं रूपं महर्षिणा वाल्मीकिना स्वकीयरामायणे समुपस्थापितमिति सर्वविदितम् । तस्मात् सङ्कलितमिदं संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणं हिन्दीभाषया सम्यक् प्रसङ्गनिर्देशयुतमतीव लोकोपयोगि, विशेषतश्चाध्ययनशीलानामन्तेवसतां विषमेऽनेहसि ।

—करपात्र स्वामी

(२)

(श्री प० शोभाकान्त-जयदेवझा, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य, तर्कवेदान्ततीर्थ, दरभङ्गास्थ-मिथिला-संस्कृत-शोधसंस्थान-सञ्चालक)

कस्तावत् सचेता विपश्चिद् आदिकविं महर्षिवाल्मीकिं न श्रद्दधते, किं तदीयं महाकाव्यं वाल्मीकीयरामायणं न सादरमधीते मनुते च । आदिकवेर्वाल्मीकेरुपजीवका एव सन्ति परवर्तिनः समेऽपि महाकवय इति जानन्त्येवाधुनिकसमीक्षकाः ।

अधुना विद्वान्सोऽपि विशदकलेवरं ग्रन्थं समग्रमध्येतुं नैव प्रयतन्ते, समयाभावादतो जाता मान्यानां विशदकलेवराणां संक्षिप्तीकरण-प्रक्रिया; यथा संक्षिप्ता बभूव महाकविबाणस्य कथा कादम्बरी, अथ च संक्षिप्तमभूत्तदीयं हर्षचरितम् । एवमेव वाल्मीकीयरामायणमपि संक्षिप्तीकृतं श्रीमता भक्तप्रवरेण विदुषा भागवतसिंह-महाशयेन ।

अनेन संक्षिप्तीकृते वाल्मीकीयरामायणे सर्वमपि प्रसङ्गेन यथामति हिन्दीभाषया प्रदर्शितमिति तत्पाठकानामर्थानुसन्धाने जायते परमं सौलभ्यम् ।

आशासे लाघवगौरवप्रक्रियाशालिनः सुधियोऽपि प्रस्तुतं संक्षिप्तं वाल्मीकीयरामायणं सादरं सस्नेहञ्च स्वीकृत्य संक्षेपकं भक्तप्रवरभागवतसिंह-महाशयं प्रसादयिष्यन्ति । मित्रवर-ठक्कुरोपनामक-श्रीकृष्णमोहनविद्वद्भिः सम्पादितं शोधपूर्णभूमिकादिसंयुतमिदमतीवोपयोगिसञ्जातमिति मणिकाञ्चन-संयोगः ।

अहमपि प्रस्तुतग्रन्थस्य विश्वविद्यालयपरीक्षापाठ्यतया चिरायुष्ट्वं प्रार्थयन् विरमामीति ।

—शोभाकान्त झा जयदेव झा

(श्रीविष्णुकान्त झा, 'विद्यावाचस्पति', 'पद्मश्री', ज्यौतिषाचार्य, ज्यौतिषरत्न, ज्यौतिषपञ्चानन, दैवज्ञशिरोमणि, साहित्यालङ्कार, विद्वन्मानसहंस, कविपुङ्गव)

जगति विदितकीर्त्तिः पूज्यवाल्मीकिनामा
प्रथमकविवरेण्यो वन्दनीयः सुधीभिः ।
य इह सुर-गवी-भृत्-पद्य-साधु-प्रणेता
स जयति महिताभो दिव्यधामा मुनीन्द्रः ॥ १ ॥

सुर-गण-मुनि-वृन्दैरर्च्चितस्योत्तमस्य
निखिल-भुवन-भर्त्तुर्ब्रह्मणो 'राम'नाम्नः ।
सकल-शुभकथा-सद्वर्णनं देववाण्यां
व्यरचयदिह वृत्तैर्मान्य-'वाल्मीकि'रादौ ॥ २ ॥

शुचिकर-रचना या पापहा काव्यरूपा
भगवति सुररामे भक्तिसंवृद्धिदा सा ।
भुवि परममहिष्ठाऽपूर्व'रामायणाख्या'
जयति जयति नित्यं मान्य 'वाल्मीकि'पूर्वा ॥ ३ ॥

तस्यादिकाव्यस्य सुविश्रुतस्य, 'वाल्मीकि-रामायण' संज्ञकस्य ।
सद्राष्ट्रभाषात्मक - साररूपं दृष्ट्वा मनो मे मुदमेति पूर्णम् ॥ ४ ॥

सिंहोपाधियुतः श्रीमान् श्रीभागवतसंज्ञकः ।
साधारणजनानां हि स्वल्पसंस्कृतज्ञानिनाम् ॥ ५ ॥

बोधाय कृतवान् हिन्दीं संक्षिप्य सारबोधिनीम् ।
ठक्कुरोपाधिसंयुक्त - 'कृष्णमोहन' शर्मणा ॥ ६ ॥

सम्पादितमिदं हृद्यं भूमिकादिसुसंयुतम् ।
दृष्ट्वा प्रसीदेत् सर्वेषां मनो नूनं न संशयः ॥ ७ ॥

रामनामकथा दिव्याऽशेषपापप्रणाशिनी ।
पवित्रकर्त्री गङ्गेव चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ८ ॥

सम्पूज्य-वाल्मीकिपदान्वितस्य 'रामायणाख्यस्य' कृतेऽद्य भक्त्या ।
पद्यप्रसूनाञ्जलिमर्पयेऽहं श्रीविष्णुकान्तो विदुषां शुभैषीः ॥ ९ ॥

—विष्णुकान्त झा (पटना)

(४)

(आचार्य श्रीप्रियव्रतशर्मा, काशी विश्वविद्यालयीय-

द्रव्य-गुण-विभागाध्यक्ष, वाराणसी)

श्रीमता भागवतसिंहेन सम्पादितं संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणमवलोक्य मोमुद्यते मे चेतः। वाल्मीकिरादिकविः तद्रचितं रामायणञ्च परिणतः शोकः अद्यापि सकललोकमशोकं करोति। कुशलवाभ्यां गीतमेतत् पावनमाख्यानं चिरात् सचेतसां चेतश्चमत्करोति, पुनाति च सर्वतोभावेन भूमण्डलवासिनां मनांसि। अयं विषादस्य विषयो यदेतादृशस्य लोकोत्तरकाव्यस्येतिहासस्य च संस्कृतभाषाया अनभिज्ञतया लोके प्रचारो न दृश्यतेऽधुना। इदानीं नैकविधसंकटाकुले भारतदेशे श्रीवाल्मीकिरामायणस्याधीतिबोधाचरणप्रचारणैरुपासनमावश्यकमनुभूयते राष्ट्रहितैषिभिर्विद्वद्वर्यैः। अनेन संक्षिप्त-संस्करणेन राष्ट्रभाषासङ्गतिसंवलितेन रामचरितस्य लोके प्रसारो भविष्यति सर्वश्चोपकृतो भवेदित्याशास्महे। सम्पादक - भूमिकालेखक-श्रीठक्कुर - महोदयाय च तल्लीनकायवाङ्मनसे शुभवादान् वितीर्य शं कामयामहे भगवतः शंकरात्।

—प्रियव्रत शर्मा

(५)

(श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'जी, पद्मविभूषण-ज्ञानपीठपुरस्कृत-राष्ट्रकवि)

वाल्मीकीय-रामायण का सक्षिप्त संस्करण देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि प्रसङ्गों का उल्लेख हिन्दी में किया गया है और मूल श्लोक संस्कृत में दिये गये हैं। जो लोग इतना संस्कृत जानते हैं कि प्रसङ्ग को समझ कर श्लोक के भावों को भी समझ लें, उनके लिये यह अधिक उपयोगी ग्रन्थ है। कथा की दृष्टि से भी श्री भागवतप्रसाद सिंहजी ने रामायण का सार एकत्र कर दिया है। कुछ विशिष्ट संवाद भी हैं और सुन्दर कवित्वपूर्ण श्लोक भी। मुझे यह ग्रन्थ बहुत अच्छा लगा है। इस विषय के परीक्षार्थी के लिये भी यह बहुत लाभदायक सिद्ध अवश्य होगा।

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

(६)

(डॉ० रामशरण शर्मा, इतिहास-विभागाध्यक्ष : पटना विश्वविद्यालय तथा अध्यक्ष, भारतीय-इतिहास-अनुसन्धान-परिषद, नयी दिल्ली)

श्री भागवत प्रसाद सिह जी की पुस्तक, 'संक्षिप्त-वाल्मीकिरामायणम्' देखने का मुझे सुअवसर मिला। लेखक ने बड़े परिश्रम और लगन से रामायण के कथानक श्लोक का चयन शृंखलाबद्ध प्रस्तुत किया है। इससे रामायण की मूलकथा से पाठकों को केवल परिचय ही नहीं होगा बल्कि उन्हें भारतीय संस्कृति के प्रमुख सिद्धान्तों की शिक्षा भी मिलेगी। जो लोग संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर रामायण को समझना चाहते हैं, उनके लिये प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा। श्री सिंहजी को ग्रन्थ-मुद्रण करा कर प्रकाशित करानेके लिये बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इसका प्रचार एवं प्रसार अवश्य होगा।

—डा० रामशरण शर्मा

(पण्डित प्रवर-श्रीआद्याचरण पाण्डेय, व्याकरण-साहित्य-आयुर्वेदाचार्य, न्याय एवं सङ्गीतशास्त्री, उपकुलपति : श्रीमदध्यात्मपीठ-ब्रह्मचर्याश्रम नैमिषारण्य, सीतापुर)

मैंने स्वनामधन्य श्री बाबू भागवत सिंहजी के सङ्कलनात्मक 'संक्षिप्त-वाल्मीकीय-रामायण' ग्रन्थ को अविकल रूप से पढ़ा। इसमें तत्त्वग्राही लेखक ने वाल्मीकीय रामायण के मार्मिक उपदेशप्रद जिन श्लोकों का सङ्कलन किया है, वे सदा वाल्मीकीय रामायण के भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करते रहेंगे। सभी जगह श्लोकों के आरम्भ में संक्षिप्तप्रसङ्ग हिन्दी भाषा में दे देनेसे साधारण रूप से संस्कृत जाननेवालों को इससे बड़ी सहायता मिलेगी। वाल्मीकीय रामायण के पढ़ने या सुनने पर मुख्य चरित्रों की जिज्ञासा होती हुई भी उन्हें ऐसे महासागर ग्रन्थ से निकाल लेना बहुत सरल कार्य नहीं है। विद्वान संग्रहकर्त्ता का यह स्तुत्य प्रयास एक अभाव का पूरक होगा। साथ ही लघुकाय वाला यह संग्रह वाल्मीकीय रामायण का प्रचारक एवं प्रसारक होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

काशी के लब्धप्रतिष्ठ मान्य विद्वान् ठक्कुरोपनामक श्री प० कृष्णमोहन शास्त्री जी ने जो इसमें विद्वत्तापूर्ण भूमिका आदि का संयोग कर दिया है इससे ग्रन्थ की उपयोगिता और अधिक बढ़ गयी है। महर्षि वाल्मीकिजी के सम्बन्ध में इतना शोधपूर्ण विवेचन प्रायः कहीं एक जगह देखने में नहीं आता है, यह इसकी बड़ी विशेषता है, इसके जिज्ञासुओं को इससे बहुत लाभ होगा।

यदि गुणग्राही जन इस संकलन को शिक्षा संस्थानों तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे तो इस देश के बालकों एवं युवकों में भारतीय धर्म एवं संस्कृति का संस्कार उत्पन्न होगा और महात्मा गान्धीजी का रामराज्य का सपना सत्य एवं साकार होगा। मैं भगवान् श्री विश्वनाथ से यह प्रार्थना करता हूँ कि भावुक लेखक की यह दिव्य अवतारणा सफल हो।

—आद्याचरण पाण्डेय

卐

संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणम्

मङ्गलाचरणम्

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ १ ॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥ २ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ३ ॥

रामायणं महाकाव्यं वेदतत्त्वार्थसंयुतम्।
यस्य प्रत्यक्षरं पुण्य-जनकं चित्तशान्तिदम् ॥ १ ॥
सनातनं काव्यबीजं मनःसन्तापहारकम्।
वाल्मीकिनाऽऽदिकविना निर्मितं यज्जगद्धितम् ॥ २ ॥
साररूपं च रामाख्यं प्रतिगृह्य यथाक्रमम्।
श्रीभागवतसिंहेन तद्विस्तरमहार्णवात् ॥ ३ ॥
स्वधाष्टर्येन महत्कार्ये साहसोद्यतमानसा।
स्वल्पायासेन भक्तानां बोधाय गुम्फितं मया ॥ ४ ॥
यदत्र स्खलनं जातं तत् क्षमध्वं च पाठकाः।
कर्मणैतेन श्रीरामः प्रीयतां श्रेयसे मम ॥ ५ ॥
"ऋषीणां भारती भाति सरला गहनान्तरा।
धीरास्तत्-तत्त्वमिच्छन्ति मुह्यन्ति प्राकृता जनाः" ॥ ६ ॥
इमां सूक्तिमनुस्मृत्य यथामति प्रकाश्यते।
प्रसङ्गार्थोऽतिसंक्षिप्तो ज्ञानाय राष्ट्रभाषया ॥ ७ ॥

★

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

अथ बालकाण्डम्

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम ॥ सर्ग १, श्लो० १ ॥

सुबह का सुहावना समय था, महर्षि वाल्मीकि तमसातीरस्थित अपने आश्रम में बैठे थे। इतने में वहाँ देवर्षि भगवान् नारद का पदार्पण हुआ। महर्षि ने अर्घ्यपाद्यादि से देवर्षि की यथायोग्य अर्चना की। तदनन्तर महर्षि ने उनसे प्रश्न किया—

'को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ १, २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ १, ३ ॥

इस पर देवर्षि ने महर्षि को बताया कि आपके कथित सभी गुणों से सम्पन्न एक मात्र दशरथनन्दन श्रीराम ही हैं। देवर्षि ने संक्षेप में श्रीराम की सारी जीवन-घटना का वर्णन सुना दिया और महर्षि द्वारा पूजित होकर वहाँ से प्रस्थान किया।

उसके पश्चात् महर्षि अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज के साथ स्नान के लिये तमसा-तट पर पहुँचे। उसी समय उन्होंने देखा कि एक व्याध ने एक काम मोहित क्रौञ्चपक्षी को बाण से आहत कर दिया है। वह छटपटा रहा था और उसकी मादा चारों ओर क्रन्दन कर रही थी। महर्षि का हृदय सहज करुणा से द्रवित हो उठा और आप ही आप उनके मुँह से निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ २,१५ ॥

चिन्तयन् स महाप्राज्ञः चकार मतिमान् मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥ २, १७ ॥

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम।
प्रतिजग्राह संहृष्टस्तस्य तुष्टोऽभवद् गुरुः ॥ २, १९ ॥

इतना कहते ही उन्होंने जब विचार किया तब उनके मन में चिन्ता हुई,

'आः इस पक्षी के शोक में मैंने यह क्या कह डाला ?' सर्वप्रथम कविता (श्लोक) के रूप में इसी पद का आप से आप आविर्भाव हो गया।

उन्होंने अपने शिष्य को सम्बोधित कर कहा—

पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ २, १८ ॥

स्नान करने के बाद महर्षि अपने आश्रम में लौट आये और विभिन्न विषयों पर चर्चा करने लगे, किन्तु उनकी मनःस्थिति शोकाकुल ही थी।

इतने में तेजःपूर्ण पितामह ब्रह्मा का वहाँ पदार्पण हुआ। महर्षि ने उठकर कृताञ्जलि हो उनका अभिवादन किया। ब्रह्मा ने आसन ग्रहण करने के बाद महर्षि को भी यथास्थान बैठने को कहा और उन्हें आदेश देने लगे—

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम् ॥ २, २३ ॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन् मुनिपुङ्गवम् ॥ २, ३० ॥
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥ २, ३१ ॥
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ॥ २, ३२ ॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद् वृत्तं तस्य धीमतः ॥ २, ३३ ॥
रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥ २, ३४ ॥
तच्चाऽप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥ २, ३५ ॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥ २, ३६ ॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।
यावद् रामायणकथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥ २, ३७ ॥
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि ॥ २, ३८ ॥

इसके पश्चात् महर्षि से पूजित हो पितामह ब्रह्मा ने अपने लोक को प्रस्थान किया। इधर महर्षि ध्यान द्वारा देखने लगे—

ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् यत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥ ३, ६॥

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स समाहितः।
अभिरामस्य रामस्य तत् सर्वं कर्तुमुद्यतः॥ ३, ७॥

चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।

यथासमय रामायण निर्माणकार्य सम्पन्न हुआ। महर्षि ने तन्त्रीलय समन्वित पूर्णरूपेण इसे कुमार लव-कुश को अध्ययन कराया। ऋषिमण्डली में उसका गायन भी हुआ और ऋषियों ने यथाकाल कुमारों को पुरस्कृत भी किया।

ऋषिका यथानिर्दिष्ट सर्वगुणसम्पन्न महाकाव्य का निर्माण पूरा हुआ, पर विचार में आया कि इसे प्रयोग कौन करेगा? उसी समय उनके समक्ष लव-कुश का प्रवेश हुआ—

कृत्वापि तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम्।
चिन्तयामास को न्वेतत् प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः॥ ४, ३॥

तस्य चिंतयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
अगृह्णीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ॥ ४, ४॥

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ, स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ॥ ४, ५॥

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥ ४, ६॥

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः॥ ४, ७॥

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलयसमन्वितम॥ ४, ८॥

रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम्॥ ४, ९॥

तौ तु गांधर्वतत्त्वज्ञौ मूर्च्छनास्थानकोविदौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नावश्विनाविव रूपिणौ॥ ४, १०॥

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ॥ ४, ११॥

तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् ।
वाचो विधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥ ४, १२ ॥

ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे ।
यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुस्तौ समाहितौ ॥ ४, १३ ॥

प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु यथाभावमगायताम् ॥ ४, १८ ॥
सहितौ मधुरं रक्तं सम्पन्नं स्वरसम्पदा ॥ ४, १९ ॥

रामायण की कथा का आरम्भ— राजा दशरथ संतानहीन थे, इसलिये उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ किया। वशिष्ठजी ने यज्ञ की रचना के लिये सुमन्त्र को आदेश दिया—

ततः सुमन्त्रमाहूय वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३, १९ ॥
निमन्त्रयस्व नृपतीन् पृथिव्यां ये च धार्मिकाः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥ १३, २० ॥

समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् ।
मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनम् ॥ १३, २१ ॥

उस यज्ञ में अपने अपने भाग लेने के लिये सभी देवता उपस्थित हुए थे। सबों ने एक गोष्ठी की। सभी देवता एवं महर्षिगण रावण के अत्याचार से विक्षुब्ध थे। भगवान् विष्णु भी गोष्ठी में सम्मिलित हुए थे। ब्रह्मासहित देवताओं ने उनसे प्रार्थना की—

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥ १५, १९ ॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।

तस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥ १५, २० ॥
विष्णो ! पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।

तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥ १५, २१ ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥ १५, २१ ॥

त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥ १५, २५ ॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ॥ १५, २५ ॥

भगवान् विष्णु का आश्वासन—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥ १५, २८ ॥

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ १५, २९ ॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम् ॥

विष्णु ने देवताओं से रावणवध का उपाय पूछा—

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ॥ १६, १ ॥
जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥

उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ १६, २ ॥

इस पर देवताओं ने कहा—

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम्।
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ १६, ३ ॥

स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः।
येन तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥ १६, ४ ॥

संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ १६, ५ ॥

अवज्ञाताः पुरा तेन वरदानेन मानवाः।
एवं पितामहात् तस्माद् वरदानेन गर्वितः ॥ १६, ६ ॥

उत्सादयति लोकाँस्त्रीन् स्त्रियश्चाप्युपकर्षति।
तस्मात् तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ १६, ७ ॥

यह सुन विष्णु ने अवतार धारण का कार्यक्रम निश्चित किया और देवताओंसे पूजित हो वह अन्तर्धान हो गये—

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ १६, ८ ॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन् काले महाद्युतिः।
अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥ १६, ९ ॥

स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्।
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ १६, १० ॥

दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ से प्रसन्न हुए अग्निदेव से प्राप्त पायस को रानियों में विभक्त किया गया और कौसल्यादि रानियां का गर्भाधान हुआ—

ततस्तु ताः प्राश्य तदुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा ॥ १६, ३१ ॥

ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्ररूढगर्भाः प्रतिलब्धमानसाः।
बभूव हृष्टस्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥ १६, ३२॥

राम सब भाइयों में बड़े थे—

ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम्।
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा ॥ १८, २१ ॥
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ॥ १८, २४ ॥

थोड़े ही दिनों के बाद सभी कुमार विविध शिक्षा-दीक्षा में प्रवीण हो गये—

बभूव भूयो भूतानां स्वयम्भूरिव सम्मतः।
सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः॥
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥ १८, २५ ॥

गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु सम्मतः।
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः॥ १८, २७ ॥

इसी बीच ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी ने आकर ताड़कादि राक्षसों को मारकर अपने यज्ञरक्षार्थ राजा से श्रीराम को माँगा—

स्वपुत्रं राजशार्दूल ! रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥ १९, ८ ॥

वसिष्ठ के कहने पर राजा ने राम को दे दिया और वे मुनी के साथ चल पड़े—

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात्॥ २२, ६ ॥

रास्ते में विश्वामित्र ने श्री राम को वला और अतिवला विद्या दी एवं सारे दिव्यास्त्र समर्पण किये। जब ताड़का पर आक्रमण की वारी आई, तब श्री विश्वामित्रजी ने राम को प्रोत्साहित किया और विचार के दृढीकरणाहे प्रमाण दिये :—

न ह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान्।
निहन्तुं त्रिषु लोकेषु त्वामृते रघुनन्दन ॥ २५, १६ ॥

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥ २५, १७ ॥

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥ २५, १८ ॥

राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥ २५, १९ ॥

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत् ॥ २५, २० ॥

विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता ॥ २५, २१ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः।
अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः ॥

तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप ॥ २५, २२ ॥

इस पर मुनि को राम ने उत्तर दिया—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥ २६, ५ ॥

फिर राम ने ताड़का एवं सुबाहु प्रभृति राक्षसों को मार कर मुनि का यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् ऋषिमण्डली के साथ मिथिलाधिपति जनक के यज्ञ देखने के लिये उन्हों ने प्रस्थान किया। रात में शोणभद्र के तट पर निवास किया। वार्तालाप के क्रम में कुशनाभ की कन्याओं का प्रसंग आया। विश्वामित्र ने कुशनाभ के अपनी बेटियों की क्षमाशीलता पर प्रसन्न होकर उनसे कहा :—

क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यः कर्तव्यं सुमहत् कृतम।
ऐक्यमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम ॥ ३३, ६ ॥

अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा।
दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः ॥
यादृशी वः क्षमा पुत्र्यः सर्वासामविशेषतः ॥ ३३, ७ ॥

क्षमा की महत्ता—

क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः।
क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत् ॥ ३३, ८ ॥

गंगापार करते समय सगरपुत्रों के विषय में प्रसग छिड़ने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान् की महत्ता का वर्णन —

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः ।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान् प्रभुः ॥ ४०, २ ॥

कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम् ।
तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः ॥ ४०, ३ ॥

पृथिव्याश्चापि निर्भेदो दृष्ट एव सनातनः ।
सगरस्य च पुत्राणां विनाशो दीर्घदर्शिनाम् ॥ ४०, ४ ॥

ब्रह्मर्षि ने अमृत प्राप्ति के लिये देवताओं और दैत्यों द्वारा मिलकर समुद्र मन्थन का प्रसंग सुनाया ।

समुद्र मन्थन से प्रथमतः हलाहल (विष) की उत्पत्ति हुई, जिससे सबों के नाश की शंका उत्पन्न हो गई—

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥ ४५, १८ ॥

अथ वर्षसहस्रेण योक्त्रसर्पशिरांसि च ।
वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥ ४५, १९ ॥

उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम् ।
तेन दग्धं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४५, २० ॥

अथ देवा महादेवं शंकरं शरणार्थिनः ।
जग्मुः पशुपतिं रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः ॥ ४५, २१ ॥

वहीं भगवान् विष्णु का प्रकट होना—

एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः ।
प्रादुरासीत् ततोऽत्रैव शङ्खचक्रधरो हरिः ॥ ४५, २२ ॥

विष्णु के कहने पर भगवान् शंकर ने हलाहल का पान किया —

उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः ।
दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम् ॥ ४५, २३ ॥

तत् त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत् ।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो ॥ ४५, २४ ॥

विषपान कर शंभु ने वहाँ से प्रस्थान किया —

इत्युक्त्वा च सुरश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ।
देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्यं तु शार्ङ्गिणः ॥ ४५, २५ ॥

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम् ।
देवान् विसृज्य देवेशो जगाम भगवान् हरः ॥ ४५, २६ ॥

देव-दानव दोनों ने फिर मन्थनक्रिया आरंभ की, किन्तु मथानी ही पाताल में चली गई । इसपर देवताओं ने विष्णु की प्रार्थना की—

ततो देवासुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन ।
प्रविवेशाथ पातालं मन्थानः पर्वतोत्तमः ॥ ४५, २७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां विशेषेण दिवौकसाम् ॥ ४५, २८ ॥

पालयास्मान् महाबाहो ! गिरिमुद्धर्तुमर्हसि ।

इस पर भगवान् विष्णु ने कच्छप रूपधारण कर पर्वत को पीठ पर उठा लिया । इसके बाद धन्वन्तरि और अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ—

इति श्रुत्वा हृषीकेशः कमठं रूपमास्थितः ॥ ४५, २९ ॥
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः ।
पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥ ४५, ३० ॥

देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः ।
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ॥ ४५, ३१ ॥

उदतिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः ।
पूर्वं धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ॥ ४५, ३२ ॥

अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्मात् वरस्त्रियः ।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ ! तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥ ४५, ३३ ॥

षष्टिकोटयोऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम् ।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ॥ ४५, ३४ ॥

न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाः स्मृताः ॥ ४५, ३५ ॥

वरुण-कन्या वारुणी का प्रादुर्भाव—

वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन ।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ॥ ४५, ३६ ॥

सुराग्रहण के कारण देवता सुर हुए और उसको न ग्रहण के कारण दानव असुर कहलाये—

दितेः पुत्रा न तां राम ! जगृहुर्वरुणात्मजाम् ।
अदितेस्तु सुता वीर ! जगृहुस्तामनिन्दिताम् ॥ ४५, ३७ ॥

असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः ।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात् सुराः ॥ ४५, ३८ ॥

उच्चैःश्रवा घोड़े का, कौस्तुभमणि एवं अमृत का उद्भव—

उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ।
उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ ! तथैवामृतमुत्तमम् ॥ ४५, ३९ ॥

अमृत के लिये ही देवताओं और असुरों में घोर संग्राम हुआ—

अथ तस्य कृते राम ! महानासीत् कुलक्षयः ।
अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥ ४५, ४० ॥

दिति के गर्भ में इन्द्रहन् का आविर्भाव हुआ । इन्द्र ने उसे गर्भ ही में सात टुकड़े कर दिये, तब से वे वातस्कन्ध कहलाये उनके नाम इस प्रकार हैं—आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह एवं परावह—

वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक ! ।
मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥ ४७, ४ ॥

विशाला में पहुँच कर मुनि ने उसका परिचय दिया—

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र ! पुत्रः परमधार्मिकः ।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः ॥ ४७, ११ ॥
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरीकृता ।

इन्द्र ने अहल्या के शीलहरण के लिये गौतम का रूप धारण किया और उससे कहा—

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते ॥ ४७, १२ ॥
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ ४८, १८ ॥

अहल्या ने पहचान कर भी इन्द्र के साथ सहगमन किया—

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥ ४८, १९ ॥

इन्द्र से सहवास कर अहल्या ने अपने को कृतार्थ माना—

अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ ! गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥

आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात् ॥ ४८, २० ॥

बाद तत्काल गौतम को देखकर इन्द्र विषण्ण हो गया। तब गौतम इन्द्र को देख रोषाभिभूत हो गये और उसे शाप दिया—"विफल हो जा।"

दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत् ॥ ४८, २५ ॥

अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः।
दुर्वृत्त वृत्तसम्पन्नो रोषाद् वचनमब्रवीत् ॥ ४८, २६ ॥

ममरूप समास्थाय कृतवानसि दुर्मते।
अकर्तव्यमिदं यस्माद् विफलस्त्वं भविष्यसि ॥ ४८, २७ ॥

गौतम के शाप से इन्द्र के अण्डकोश गिर गये—

गौतमेनैवमुक्तस्य सरोषेण महात्मना।
पेततुर्वृषणौ भूमौ सहास्रक्षस्य तत्क्षणात् ॥ ४८, २८ ॥

अपनी पत्नी अहल्या को भी गौतमने यहीं अदृश्य होकर रहनेका शाप दिया—

तथा शप्त्वा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान्।
'इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि ॥ ४८, २९ ॥

वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि ॥ ४८, ३० ॥

गौतम ने राम दर्शन से अहल्या के शापमुक्ति की अवधि निश्चित कर दी—

यदा त्वेतद् वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥ ४८, ३१ ॥
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता।
मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ॥ ४८, ३२ ॥

इन्द्र का देवताओं से यथावस्थित स्वरूप बनाने का अनुरोध—

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान्।
अब्रवीत् त्रस्तनयनः सिद्धगन्धर्वचारणान् ॥ ४९, १ ॥

'कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः।
क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम् ॥ ४९, २ ॥
अफलोऽस्मि कृतस्तेन क्रोधात् सा च निराकृता ॥
शापमोक्षेण महता तपोऽस्यापहृतं मया ॥ ४९, ३ ॥

तन्मां सुरवराः सर्वे सर्षिसंघाः सचारणाः।
सुरकार्यकरं यूयं सफलं कर्तुमर्हथ ॥ ४९, ४ ॥

इन्द्र की बात सुनकर देवताओं ने पितृदेव के पास जाकर शल्य चिकित्सा के लिये कहा—

शतक्रतोर्वचः श्रुत्वा देवाः साग्निपुरोगमाः ।
पितृदेवानुपेत्याहुः सर्वे सह मरुद्गणैः ॥ ४९, ५ ॥

उत्कृष्ट शल्यचिकित्सा का प्रमाण देते हुए पितरों ने इन्द्र को फिर से सफल बना दिया—

अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः ।
मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत ॥ ४९, ६ ॥

अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः ।
उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ॥ ४९, ७ ॥

विश्वामित्र के साथ गोतम के आश्रम में पहुँच कर श्रीराम ने अहल्या का उद्धार किया—

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥ ४९, १२ ॥

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् ।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥ ४९, १३ ॥

प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ४९, १४ ॥

सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव ।
मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ॥ ४९, १५ ॥

सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह ।
त्रयाणामपि लोकानां यावद् रामस्य दर्शनम् ॥ ४९, १६ ॥

शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता ।
राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ॥ ४९ १७ ॥

इसके पश्चात् सबके सब मिथिलाधीश के यज्ञवाट में पहुँचे, और श्रीरामने मुनि से टिकने का स्थान पूछा—

ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसंकुलाः ।
देशो विधीयतां ब्रह्मन् ! यत्र वत्स्यामहे वयम् ॥ ५०, ४ ॥

श्री विश्वामित्र जी ने उपयुक्त स्थान बताया—

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः ।
निवासमकरोद् देशे विविक्तसलिलान्विते ॥ ५०, ५ ॥

विश्वामित्र जी के आगमन सुन राजा जनक स्वागत सामान ले शतानन्द जी के साथ उपस्थित हुए—

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा नृपवरस्तदा ।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः ॥ ५०, ६ ॥

ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् ।
प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥
विश्वामित्राय धर्मेण ददौ धर्मपुरस्कृतम् ॥ ५०, ७ ॥

महाराज जनक ने प्रणिपात हो ब्रह्मर्षि से कहा—

अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव ! ॥ ५०, १४ ॥
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह ।

स्वागतानन्तर दोनों कुमारों के विषय में राजाकी जानने की जिज्ञासा हुई—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गजतुल्यगतीवीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥ ५०, १७ ॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ ५०, १८ ॥

यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥ ५०, १९ ॥

विश्वामित्र जी ने राजा की सुन्दर जिज्ञासा का समाधान पूर्ववृत्तान्त के साथ किया—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः ।
न्यवेदयदमेयात्मा पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥ ५०, २२ ॥

सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां बधं तथा ।
तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥ ५०, २३ ॥

अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम् ।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥ ५०, २४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमतः ।
हृष्टरोमा महातेजाः शतानन्दो महातपाः ॥ ५१, १ ॥

विश्वामित्रजी की बात सुनकर शतानन्द जी को अपार विस्मय हुआ । उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया । उन्होंने अपनी माता के द्वारा श्रीराम के सत्कार के सम्बन्ध में उतावले स्वर में ऋषि कौशिक से पूछा—

गौतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तपसा द्योतितप्रभः ।
रामसंदर्शनादेव परं विस्मयमागतः ॥ ५१, २ ॥

'अपि रामे महातेजा मम माता यशस्विनी ।
वन्यैरुपाहरत् पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ॥ ५१, ५ ॥

विश्वामित्र जी ने उन्हें आश्वस्त किया--

नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ यत् कर्तव्यं कृतं मया ।
संगता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका ॥ ५१, ११ ॥

फिर शतानन्द जी ने जिनका गोप्ता स्वयं महाप्रभावशाली विश्वामित्रजी हैं, श्रीराम के भाग्य को सराहा । इसके बाद उन्होंने विश्वामित्र जी की कर्मनिष्ठा का दिग्ददर्शन कराया और उनसे कहा कि विश्वामित्र जी के राजत्व कालमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से छेड़खानी हो गई । इन्होंने वसिष्ठजी की गाय, शवला को जबर्दस्ती छीन लिया । शवलाने उन्हें ब्रह्मशक्ति का प्रयोग करने को कहा । उन्होंने ऐसा ही किया । विश्वामित्र जी की हार हुई । इन्होंने पूर्णतया अनुभव किया कि ब्रह्मवल सभी-वलों से उत्कृष्ट होता है, और इसीलिये उन्होंने ब्रह्मर्षित्व की प्राप्ति के लिये एँड़ी चोटी एक कर दी । अनेक बाधाओं से लड़ते हुए भी अपने अभीष्ट को प्राप्त कर ही लिया उन्होने ।

शबला ने वसिष्ठ जी से कहा—

न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तराः ।
ब्रह्मन् ! ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्राच्च बलवत्तरम् ॥ ५५, १४ ॥

भगवान् शिव को प्रसन्न कर विश्वामित्र जी ने बर मागा—

यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ॥ ५५, १६ ॥

वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मास्त्र (आणविक यन्त्र) का प्रयोग ।

ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत् सुदारुणम् ॥ ५६, १७ ॥
रोमकूपेषु सर्वेषु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
मरीच्य इव निष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥ ५६, १८ ॥

परास्त होने पर विश्वामित्र जी ने क्षात्रबल को धिक्कारा--

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥ ५६, २३ ॥

त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने के लिये यज्ञानुष्ठान में वासिष्ठों का कथन भी सुना दिया, इस प्रकार शतानन्द जी ने मुनि की सभी कथा कह डाली—

वासिष्ठं यच्छ्रुतं सर्वं क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ।
यथाह वचनं सर्वं श्रृणु त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ५९, १३ ॥

क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ।
कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षयः ॥ ५९, १४ ॥

ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चाण्डलभोजनम् ।
कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः ॥ ५९, १५ ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा जनक ने मुनि का दर्शन किया और पूछा—

भगवन् स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि तवानघ ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम् ॥ ६६, ३ ॥

इस पर मुनि ने राजा से कहा—"राजन् ! ये कुमार धनुष देखना चाहते हैं, इन्हें दिखा दिया जाय"—

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति ॥ ६६, ५ ॥

एतद् दर्शय भद्रं ते कृतकामौ नृपात्मजौ ।
दर्शनादस्य धनुषो यथेष्टं प्रतियास्यतः ॥ ६६, ६ ॥

इस पर राजा जनक ने कहा कि धनुष दिखाऊंगा, यदि राम उसे उठा लें तो सीता से उनका ब्याह कर दूँगा—

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत ॥ ६६, २५ ॥

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥ ६६, २६ ॥

राजा ने सचिवों को धनुष मंगवाने का आदेश दिया—

ततः स राजा जनकः सचिवान् व्यादिदेश ह ।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम् ॥ ६७, २ ॥

मन्त्रियों ने धनुष को मंगवा कर राजा से कहा—

तामादाय सुमञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः ।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ६७, ५ ॥
इदं धनुर्वरं राजन् पूजितं सर्वराजभिः ।

राजा ने मुनि से कहा कि इन राजकुमारों को उसे दिखा दें—

नैतत् सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ६७, ९ ॥
क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे ।
आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा ॥ ६७, १० ॥
तदेतद् धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुङ्गव ।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥ ६७, ११ ॥

विश्वामित्र जी ने श्रीराम को धनुष की ओर देखने कहा—

वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ६७, १२ ॥

महर्षि की आज्ञा से श्रीराम ने धनुष के निकट जाकर कहा कि, इसे छूता हूँ और उठाने तथा प्रत्यञ्चा चढ़ाने का भी यत्न करूँगा—

महर्षेर्वचनाद् रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः ।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥ ६७, १३ ॥
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना ।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥ ६७, १४ ॥

श्रीराम ने मुनि के आदेशानुसार इष्ट स्थान पर पहुँच उस धनुष को खेल खेल में उठा लिया और प्रत्यञ्चा चढ़ा उसे खींचा। वह मध्य भाग से घोर गर्जना के साथ टूट गया—

बाढमित्यब्रवीद् राजा मुनिश्च समभाषत ।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥ ६७, १५ ॥
पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥ ६७, १६ ॥
आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः ।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥ ६७, १७ ॥

वहाँ राजा जनक, विश्वामित्र और दोनों राजकुमारों को छोड़ कर सब लोग उस शब्द से अचेत से हो गये—

निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥ ६७, १९ ॥

राजा जनक श्री राम के अनुपम पराक्रम से चकित थे। मुनि की अनुमति से उन्होंने इस शुभ समाचार को सुनाने तथा बुलाने के लिये महाराज दशरथ के पास अपने मन्त्रियों को भेजा—

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥ ६७, २१ ॥

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥ ६७, २२ ॥

भवतोऽनुमते ब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥ ६७, २४ ॥

राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः ॥ ६७, २५ ॥

मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ कथयन्तु नृपाय वै।
प्रीतियुक्तं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः ॥ ६७, २६ ॥

मिथिलाधीश के मन्त्रीगण ने अयोध्या पहुँचकर राजा दशरथ के दरवार में प्रवेश किया—

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन् पुरीम् ॥ ६८, १ ॥

ते राजवचनाद् गत्वा राजवेश्म प्रवेशिताः।
ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ ६८, २ ॥

मन्त्रियों ने राजा को हाथ जोड़ कर विनीत भाव से उन्हें पुत्र विवाह में शीघ्र आने का निवेदन किया—

मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः।
मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंयुक्तया गिरा ॥ ६८, ४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम्।
जनकस्त्वां महाराज पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ६८, ५ ॥

पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥ ६८, ६ ॥
पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा।
राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥ ६८, ७ ॥

सेयं मम सुता राजन् विश्वामित्रपुरस्कृतैः।
यदृच्छयागतै राजन् निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ६८, ८ ॥

तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना।
रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥ ६८, ९ ॥

सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः ।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥ ६८, ११ ॥

दूतों की बात सुन राजा को अतीव प्रसन्नता हुई । उन्होंने सभी आप्तजनों को समाचार सुनाया—

दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः ।
वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत् । ६८, १४ ॥
दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना ।
सम्प्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥ ६८, १६ ॥
यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः ।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत् कार्यस्य पर्ययः ॥ ६८, १७ ॥

मन्त्रियों ने कहा, "ठीक है" और राजा ने प्रातः यात्रा का आदेश दिया—

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
सुप्रीतश्चाब्रवीद् राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥ ६८, १८ ॥

रात बीत जाने पर भोर में राजाने सुमन्त्र को सारे चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चलने को कहा । वसिष्ठ आदि ऋषिगण बारात में आगे चले—

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः ।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ६९, १ ॥
अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् ।
व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ ६९, २ ॥
चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः ।
ममाज्ञा समकालं च यानं युग्ममनुत्तमम् ॥ ६९, ३ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः ।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा ॥ ६९, ४ ॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ।
यथा कालात्ययो न स्याद् दूता हि त्वरयन्ति माम् ॥ ६९, ५ ॥

बारात पहुँचने में चार दिन लग गये । पहुँचने पर जनकजी ने उनकी पूजा की—

वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी ।
राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ ६९, ६ ॥
गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् ।
राजा च जनकः श्रीमाञ्छ्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥ ६९, ७ ॥

राजा जनक वृद्ध राजा दशरथ को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया —

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ६९, ९ ॥
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् ।
दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ६९, १० ॥
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः ।
दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् ॥६९, ११ ॥
राघवैः सह सम्बन्धाद् वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ।
श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि ॥ ६९, १२ ॥

राजा दशरथ ने उत्तर दिया—

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा ।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम् ॥ ६९, १४ ॥

राजा जनक ने अपने भाई कुशध्वज को यज्ञ रक्षार्थ बुलवाया—

भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः ।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥ ७०, २ ॥
वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम् ।
सांकाश्यां पुष्पसंकाशां विमानमिव पुष्पकम् ॥ ७०, ३ ॥
तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः ।

राजा की आज्ञा से कुशध्वज आ गये—

आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ॥ ७०, ४ ॥

राजा दशरथ जनक के भवन में आये—

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तथा ।
सबन्धुरगमत् तत्र जनको यत्र वर्तते ॥ ७०, १४ ॥

उसके बाद जनक ने रामको सीता और लक्ष्मण को उर्मिला देने का वचन दिया —

सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै ।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥ ७१, २१ ॥
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः ।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव ॥ ७१, २२ ॥
यथा ह्यद्य महाबाहो तृतीयदिवसे प्रभो ।

फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन् वैवाहिकं कुरु।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥ ७१, २४॥

जनक के निश्चयात्मक कथनानन्तर वसिष्ठ एवं विश्वामित्र ने कुशध्वज की दो पुत्रियों को भरत तथा शत्रुघ्न के लिये मांगा। (वक्ता विश्वामित्र जी थे)

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ ७२, १॥
वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम।
भ्राता यवीयान् धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः॥ ७२, ४॥
अस्य धर्मात्मनो राजन् रूपेणाप्रतिमं भुवि।
सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे॥ ७२, ५॥
भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः।
वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः॥ ७२, ६॥
पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः।
लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः॥ ७२, ७॥

राजा जनक का सहर्ष स्वीकृति—

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ॥ ७२, ९॥
"कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम्॥ ७२, १०॥
एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ॥ ७२, ११॥
एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन् गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ७२, १२॥
उत्तरे दिवसे ब्रह्मन् फल्गुनीभ्यां मनीषिणः।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः॥ ७२, १३॥

राजा जनक के कथनानन्तर राजा दशरथ ने कहा—

युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः॥ ७२, १८॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम्।
श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत्॥ ७२, १९॥

जनवासे पर राजा दशरथ द्वारा गोदानादि क्रिया—

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा ।
लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ।। ७२, २५ ।।

वैवाहिक कार्यं सम्पादनार्थ द्वार पर आकर दशरथने जनक को सूचना भेजी और इसपर राजा जनक ने उत्तर दिया—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्ष्यते ।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ।। ७३, १४ ।।

कृतकौतुक-सर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः ।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्तावह्निरिवार्चिषः ।। ७३, १५ ।।

सद्योऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः ।
अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ।। ७३, १६ ।।

इस पर राजा दशरथ का समाजसहित भीतर प्रवेश—

तद् वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा ।
प्रवेशयामास सुतान् सर्वानृषिगणानपि ।। ७३, १७ ।।

मण्डप पर कुमारिकाएं सर्वाभरण भूषित हो आ गईं । पहले सीता का पाणिग्रहण श्री राम के साथ हुआ--

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ।। ७३, २५ ।।

अब्रवीज्जनको राजा कौशल्यानन्दवर्धनम् ।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।। ७३, २६ ।।

प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।। ७३, २७ ।।

लक्ष्मण का ऊर्मिला के साथ विवाह हुआ—

अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः ।
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ।। ७३, ३० ।।

प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत् कालस्य पर्ययः ।

भरत का पाणिग्रहण माण्डवी के साथ हुआ—

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ।। ७३, ३१ ।।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन ।

अन्त में शत्रुघ्न का पाणिग्रहण श्रुतिकीर्ति के साथ हुआ—

शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः ॥ ७३, ३२ ॥
श्रुतिकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ।
सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ॥ ७३, ३३ ॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्थाः मा भूत् कालस्य पर्ययः ॥ ७३, ३४ ॥

विवाहानन्तर जनवासे पर सबों का प्रस्थान—

ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते ।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥ ७३, ३९ ॥
अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः ।
राजाऽप्यनुययौ पश्यन् सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥ ७३, ४० ॥

विवाह के दूसरे दिन भोर में विश्वामित्र जी का वहाँ से प्रस्थान—

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः ।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥ ७४, १ ॥

राजा दशरथ का भी अपने पुरी के लिये प्रस्थान—

विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम ।
आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥ ७४, २ ॥

राजा जनक द्वारा अभूतपूर्व विदाई का दान—

अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु ।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥ ७४, ३ ॥
कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान् कोट्यम्बराणि च ।
हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम् ॥ ७४, ४ ॥

मार्ग में अशकुनचिह्न को देख कर राजा का वसिष्ठ जी से पूछना और वसिष्ठ जी का समाधान करना—

गच्छन्तं तु नरव्याघ्रं सर्षिसङ्घं सराघवम् ।
घोरास्तु पक्षिणो वाचो व्याहरन्ति समन्ततः ॥ ७४, ८ ॥
भौमाश्चैव मृगाः सर्वे गच्छन्ति स्म प्रदक्षिणम ।
तान् दृष्ट्वा राजशार्दूलो वशिष्ठं पर्यपृच्छत ॥ ७४, ९ ॥
असौम्याः पक्षिणो घोरा मृगाश्चापि प्रदक्षिणाः ।
किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विषीदति ॥ ७४, १० ॥

उपस्थितं भयं घोरं दिव्यं पक्षिमुखाच्च्युतम् ।
मृगाः प्रशमयन्त्येते सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥ ७४, १२ ॥

परशुराम जी का पदार्पण—

ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ।
भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ॥ ७४, १७ ॥
स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गुणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥ ७४, १९ ॥

पूजा ग्रहणानन्तर परशुराम जी ने कहा कि, हे राम ! आप हमारे धनुष को पहले उठा लें तो मैं आपसे लड़ूँगा—

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् ।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥ ७४, २४ ॥
राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् ।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥ ७५, १ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा ।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥ ७५, २ ॥
तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ ७५, ३ ॥
तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव ॥ ७५, ४ ॥

राजा दशरथ का परशुराम जी से निवेदन—

मम सर्वविनाशाय सम्प्राप्तस्त्वं महामुने ।
न चैकस्मिन् हते रामे सर्वे जीवामहे वयम् ॥ ७५, ९ ॥

उनकी बातों की उपेक्षा कर मुनि राम से ही बोलते रहे—

अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ ७५, १० ॥
तदेव वैष्णवं राम ! पितृपैतामहं महत् ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥ ७५, २७ ॥
योजयस्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजय ।
यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः ॥ ७५, २८ ॥

इसपर दशरथात्मज श्रीराम ने परशुराम से अपने पराक्रम देखने कहा—

कृतवानसि यत् कर्म श्रुतवानस्मि भार्गव ।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः ॥ ७६, २ ॥

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ ७६, ३ ॥

ऐसा कह श्रीराम ने परशुराम के हाथों से वैष्णव धनुष, बाण सहित ले लिया। धनुष पर बाण चढ़ाकर उनसे बोले—"बताइये आपकी अव्याहत गति नष्ट कर दूं, अथवा तपोबल से अर्जित पुण्यलोक ?"

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् ।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ७६, ४ ॥
आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह ।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ ७६, ५ ॥
"ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥ ७६, ६ ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमार्जितान् ।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥ ७६, ७ ॥

परशुराम ने अपना पुण्यलोक ही नष्ट करने को कहा, और उन्होंने यह भी कहा कि आपसे हारखाने के लिये मुझे कोई लज्जा नहीं हैं, आप तो स्वयं विष्णु हैं।

लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया ।
जहि तान्छरमुख्येन मा भूत् कालस्य पर्ययः ॥ ७६, १६ ॥
"अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परं तप ॥ ७६, १७ ॥
एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ७६, १८ ॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति ।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः" ॥ ७६, १९ ॥

परशुराम के आग्रह पर उनके देखते उनका पुण्यलोक नष्ट कर दिया गया और वे राम की प्रदक्षिणा कर महेन्द्र पर्वत पर चले गये—

स हतान् दृश्य रामेण स्वाँल्लोकाँस्तपसार्जितान् ।
जामदग्न्यो जगामाशु महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥ ७६, २२ ॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥ ७६, २४ ॥

मुनि के चले जाने पर श्रीराम ने सविनय अपने पूज्य पितासे प्रस्थान करने को कहा—

अभिवाद्य ततो रामो वशिष्ठप्रमुखानृषीन् ।
पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ।। ७७, २ ।।

"जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी ।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता" ।। ७७, ३ ।।

अयोध्यापुरी पहुँच कर यथाक्रम लोग मङ्गलायोजन में जुट गये और तत्पश्चात् उन्होंने विविध हर्षोल्लास मनाया—

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम् ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय राघवम् ।। ७७, ४ ।।

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् ।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ।। ७७, ६ ।।

सम्पूर्णां प्राविशद् राजा जनोघैः समलंकृताम् ।
पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ।। ७७, ८ ।।

पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः ।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ।। ७७, ९ ।।

ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः ।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा ।। ७७, १० ।।

वधू प्रतिगृहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः ।
ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ।। ७७, ११ ।।

कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः ।
मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः ।। ७७, १२ ।।

देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् ।
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ।। ७७, १३ ।।

रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः ।। ७७, १४ ।।

कुछ दिनों के बाद वृद्ध राजा ने भरत को बुलाकर कहा कि, "तुम्हारे युधाजित् मामा तुम्हें ननिहाल ले जाने के लिए आये हुए हैं—

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ।
भरत कैकयीपुत्रमब्रवीद् रघुनन्दनः ।। ७७, १५ ।।

"अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक।
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव" ॥ ७७, १६ ॥

भरत ने पिता एवं भाई श्रीराम से अनुमति लेकर शत्रुघ्न के साथ ननिहाल को प्रस्थान किया—

आपृच्छय पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
मातृंश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ ७७, १८ ॥

उसके पश्चात् श्रीरामने पिता की आज्ञा से राज्य का सारा कार्य सुव्यवस्थित ढङ्ग से सञ्चालन कर सभी प्रजाओं के हृदय को जीत लिया, इससे पिता एवं प्रजाओं को अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई—

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा ॥ ७७, २० ॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च ॥ ७७, २१ ॥

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥ ७७, २३ ॥

इत्यार्षे संक्षिप्तवाल्मीकिरामायणे बालकाण्डम्।

अथ अयोध्याकाण्डम्

श्रीराम के गुण—

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥ १, १८॥

राजा दशरथ की आकांक्षा; लोकतन्त्रता की भावना (राज सभा में विचार)

अनेन श्रेयसा सद्यः संयोक्ष्येऽहमिमां महीम्।
गतक्लेशो भविष्यामि सुते तस्मिन् निवेश्य वै॥ २, १४॥

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥ २, १५॥

यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद् विचिन्त्यताम्।
अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया। २, १६॥

राजा के उपरोक्त विचार सुन सभासदों एवं प्रजावर्ग को अतीव प्रसन्नता हुई। सबों ने सहर्ष अनुमोदन किया। श्रीराम के यौवराज्य की पूर्ण रूप से तैयारी होने लगी। किन्तु इस समाचार से मन्थरा नाम की कैकेयी की प्रिय दासी को बड़ा मनः खेद हुआ। उसने यह समाचार अपनी स्वामिनी कैकेयी को सुनाया। इस शुभ समाचार से उसे अतीव प्रसन्नता हुई और उसने दासी को पुरस्कृत किया—

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम्॥ ७, ३३॥

"इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥ ७, ३४॥

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥ ७, ३५॥

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥ ७, ३६॥

इस पर मन्थरा ने (भावी अनिष्ट का संकेत देती हुई) कैकेयी से कहा—

श्रूयते हि द्रुमः कश्चिच्छेत्तव्यो वनजीवनैः।
संनिकर्षादिषीकाभिर्मोचितः परमाद् भयात्॥ ८, ३०॥

यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रणष्टो भरतो भविष्यति।
अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवास्य विवासकारणम् ॥८,३९॥

अनिष्ट आने के पूर्व ही उसके निवारण का यत्न बताया उसने—

गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शय ॥ ९, ५४ ॥

फिर तो कैकेयी मन्थरा की माया से मोहित ही हो गई। उसके परामर्शानुसार कोप भवन में जाकर अपने भूषण-वसनों का त्याग कर दिया। राजा आये, उसकी दशा देखी। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह उसकी प्रसन्नता के लिये हर काम करेंगे। उसने प्रतिज्ञा करने के बाद राजा से भरत के लिये राज्य और राम के १४ वर्षों का वनवास मांगा। राजा ने कभी भी कैकेयी से इस प्रकार छले जाने की आशंका नहीं की थी, वे मूच्छित से हो गये। उस अवस्था में कैकेयी ने अनेक उदाहरणों द्वारा सत्य न छोड़ने के लिए राजा से कहा—

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः।
सत्यमाश्रित्य च मया त्वं धर्मं प्रतिचोदितः ॥ १४, ३ ॥
संश्रुत्य शैब्यः श्येनाय स्वां तनुं जगतीपतिः।
प्रदाय पक्षिणे राजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ १४, ४ ॥
तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे।
याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ ॥ १४, ५ ॥
सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्यमन्वितः।
सत्यानुरोधात् समये वेलां स्वां नातिवर्तते ॥ १४, ६ ॥
सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम् ॥ १४, ७ ॥
सत्यं समनुवर्तस्व यदि धर्मे धृता मतिः।
स वरः सफलो मेऽस्तु वरदो ह्यसि सत्तम ॥ १४, ८ ॥
धर्मस्यैवाभिकामार्थं मम चैवाभिचोदनात्।
प्रव्राजय सुतं रामं त्रिःखलु त्वां ब्रवीम्यहम् ॥ १४, ९ ॥
समयं च ममार्येमं यदि त्वं न करिष्यसि।
अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ १४, १० ॥

अनेक अनुनय-विनय करने पर भी जब राजा दशरथ असफल रहे, तब उन्होंने कठोर वाक्यों में (पुत्र सहित कैकेयी के त्याग) आदेश दिया—

विकलाभ्यां च नेत्राभ्यामपश्यन्निव भूमिपः ।
कृच्छ्राद् धैर्येण संस्तभ्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ १४,१३ ॥
"यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः ।
संत्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया" ॥

पुत्र सहित कैकेयी को अपने श्राद्धकार्य में भाग लेने को मना ही किया—

"रामाभिषेकसम्भारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम्" ॥ १४, १६ ॥
"सपुत्रया त्वया नैव कर्तव्या सलिलक्रिया" ॥ १४, १ ॥

बाहर इस वृतान्त को तो कोई जानता ही न था; अतः प्रभात में राजा के समक्ष आकर सुमन्त्र ने उन्हें उद्बोधित किया (परम्परा रीत्यनुसार)—

यथा नन्दति तेजस्वी सागरे भास्करोदये ।
प्रीतः प्रीतेन मनसा तथा नन्दय नस्ततः ॥
इन्द्रमस्यां तु वेलायामभितुष्टाव मातलिः । १४, ४७ ॥
सोऽजयत् दानवान् सर्वांस्तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ४८ ॥

वेदाः सहाङ्गा विद्याश्च यथा ह्यात्मभुवं प्रभुम् ।
ब्रह्माणं बोधयन्त्यद्य तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ४९ ॥

आदित्यः सह चन्द्रेण यथा भूतधरां शुभाम् ।
बोधयत्यद्य पृथिवीं तथा त्वां बोधयाम्यहम् ॥ १४, ५० ॥

उत्तिष्ठ सुमहाराज कृतकौतुकमङ्गलः ।
विराजमानो वपुषा मेरोरिव दिवाकरः ॥ १४, ५१ ॥

सोमसूर्यौ च काकुत्स्थ शिववैश्रवणावपि ।
वरुणश्चाग्निरिन्द्रश्च विजयं प्रदिशन्तु ते ॥ १४, ५२ ॥

गता भगवती रात्रिः कृतं कृत्यमिदं तव ।
बुध्यस्व नृपशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ १४, ५३ ॥

सुमन्त्र ने फिर आकर राजा को संवाद दिया—

स्वयं वसिष्ठो भगवान् ब्राह्मणैः सह तिष्ठति ।
क्षिप्रमाज्ञाप्यतां राजन् राघवस्याभिषेचनम् ॥ १४,५५ ॥

व्याकुल राजा ने सूत से कहा—

ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति ।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः ॥ १४, ५८ ॥

"वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि ॥ १४, ५९ ॥

जब राजा ने स्पष्टतः कुछ नहीं कहा, तब अनजान सुमन्त्र को कैकेयी ने श्रीरामको राजा के पास लाने कहा--

यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः ।
तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥ १४, ६१ ॥

"सुमंत्र ! राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः ।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥ १४, ६२ ॥

तद्गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम् ।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा" ॥ १४, ६३ ॥

सुमन्त्र ने रानी से कहा 'देवि' ! राजा की आज्ञा के बिना कैसे जाऊं' ? तब राजा ने भी कहा—राम को लाओ'—

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि ।
तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ १४, ६४ ॥
"सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्" ।
स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च ॥ १४, ६५ ॥

सुमन्त्र ने राजशासन से तुरत प्रस्थान किया--

निर्जगाम च स प्रीत्या त्वरितो राजशासनात्
सुमन्त्रश्चिन्तयामास त्वरितं चोदीतस्तया ॥ १४, ६६ ॥

राम के भवन पर पहुँच सुमन्त्र ने श्रीराम को सूचना दी—

ते समीक्ष्य समायान्तं रामप्रियचिकीर्षवः ।
सहसोत्पतिताः सर्वे ह्यासनेभ्यः ससम्भ्रमाः ॥ १६, ४ ॥

तानुवाच विनीतात्मा सूतपुत्रः प्रदक्षिणः ।
क्षिप्रमाख्यात रामाय सुमन्त्रो द्वारि तिष्ठति" ॥ १६, ५ ॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को अन्दर बुलवा लिया, जहाँ मन्त्री ने सम्वाद सुनाया--

प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः ।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥ १६, ७ ॥

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा ।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ १६, ११, ॥
"कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
महिष्यापि हि कैकेय्या गम्यतां तत्र मा चिरम्" ॥ १६, १२ ॥

श्री राम ने यह शुभ समाचार सीता को सुनाया—

एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः।
ततः सम्मानयामास सीतामिदमुवाच ह।। १६, १४ ॥
देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे।
मन्त्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचनसंहितम् ॥ १६, १५ ॥

सीता का मङ्गलवचन––

पतिसम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा।
आद्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ॥ १६, २१ ॥
राज्यं द्विजातिभिर्जुष्टं राजसूयाभिषेचनम्।
कर्तुमर्हति ते राजा वासवस्येव लोककृत् ॥ १६, २२ ॥
दीक्षितं व्रतसम्पन्नं वराजिनधरं शुचिम्।
कुरङ्गशृङ्गपाणिं च पश्यन्ती त्वां भजाम्यहम् ॥ ४६, २३ ॥
पूर्वां दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः।
वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ॥ १२, २४ ॥

मार्ग में नारियों का अभिनन्दन —

नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन।
पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमुपस्थितम् ॥ १६, ३९ ॥

राम का पिता के निकट प्रवेश —

तस्मिन् प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे।
प्रतीक्षते तस्य पुनः स्म निर्गमं यथोदये चन्द्रमसः सरित्पतिः ॥१६,२२॥

दुःखी पिता को देखकर प्रणाम किया रामने, तत्पश्चात् माता कैकेयी को भी—

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे।
कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥ १८, १ ॥
स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥ १८, २ ॥

राजा ने सिर्फ 'राम' कहा और न तो वे बोल सके और न देख ही—

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥ १८, ३ ॥

श्री राम को भी चिन्ता हुई कि, क्यों पिताजी आज न तो मुझसे बोलते हैं और न अभिनन्दन ही करते हैं"—

चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः ।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥ १८, ८ ॥

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति ।
तस्य मामद्य सम्प्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ॥ १८, ९ ॥

पिता की अप्रसन्नता के कारण निरूपणार्थ श्रीराम का भिन्न २ अनुमान जानकारी प्राप्त कराने के लिए कैकेयी से श्रीराम का आग्रह—

कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता ।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥ १८, ११ ॥

शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते ।
संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ १८, १३ ॥

कच्चिन्न किंचिद् भरते कुमारे प्रियदर्शने ।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातॄणां वा ममाशुभम् ॥ १८, १४ ॥

अतोषयन् महाराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः ।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥ १८, १५ ॥

यतो मूलं नरः पश्येन् प्रादुर्भावमिहात्मनः ।
कथं तस्मिन् न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥ १८, १६ ॥

कैकेयी ने कहा, "यदि तुम राजा की कही बातों को मानने के लिये तैयार होओ तो मैं सारी बातें कहूँगी"।

यदि तत् वक्ष्यसे राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ॥ १८, २५ ॥

यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति ॥ १८, २६ ॥

श्रीराम ने माँ कैकेयी से कहा "पिताजी के लिये सब कुछ कर सकता हूं। तुम उनका अभिप्राय कह सुनाओ, मैं उसका पालन करूंगा।"

एतत् तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ ॥ १८, २७ ॥

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुमामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥ १८, २८ ॥

भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥ १८, २९ ॥

तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ १८, ३० ॥

कैकेयी ने राम से निधड़क कठोर शब्दों में सारी बातें कह सुनाईं—

तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम्।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ १८, ३१ ॥

पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ॥ १८, ३२ ॥

तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥ १८, ३३ ॥

यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ १८, ३४ ॥

संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम्।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ॥ १८ ३५ ॥

भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम्।
त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ॥ १८, ३६ ॥

सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ॥ १८, ३७ ॥

कैकेयी के ऐसे कठोर वचन को सुनकर भी श्रीराम को कोई विकार नहीं हुआ—

इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम्।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा च पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥१८,४१॥

श्रीराम ने कहा—"अच्छा मैं जटाचीर धारण कर बन जाऊँगा, किन्तु ऐसा राजा ने नहीं कहा ?"

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ १९, २ ॥

अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ १९, ६ ॥

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥ १९, ७ ॥

न न्यूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् ।
यद्‌ राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती ॥ १९, २४ ॥

"माता और सीता को कह कर आज ही वनगमन करूँगा" ऐसा रामने कहा—

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् ।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्‌वनम् ॥ १९, ३५ ॥

माता से मिलने के लिये राम का प्रस्थान—

वाचा मधुरया रामः सर्वं सम्मानयञ्जनम् ।
मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः ॥ १९, ३८ ॥

तं गुणैः समतां प्राप्तो भ्राता विपुलविक्रमः ।
सौमित्रिरनुवव्राज धारयन् दुःखमात्मजम् ॥ १९, ३९ ॥

निर्विकार भाव से राम का माता के भवन में प्रवेश—

प्रविश्य वेश्मातिभृशं मुदायुतं समीक्ष्य तां चार्थविपत्तिमागतम् ।
न चैव रामोऽत्र जगाम विक्रियां सुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशंकया॥१९,४०॥

कौसल्या ने श्रीराम को देख कर उन्हें छाती में लगा लिया और माथा सूंघा तथा बैठने को कहा। रामने मां से कहा—

'अब इस आसन से क्या ? राजा ने मुझे १४ वर्षों का बनवास और भरत को यौवराज्य दिया है। मैं तो जङ्गल जा रहा हूं—

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥ २०, २० ॥

स मातरमुपक्रान्तमुपसंगृह्य राघवः ।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥ २०, २१ ॥

देवि नूनं न जानीषे महद्‌ भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥ २०, २७ ॥

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे ।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥ २०, २८ ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥ २०, २९ ॥

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥ २०, ३० ॥

यह दुःसमाचार सुनकर कौसल्या मूर्छित हो गई और होश आने पर विलाप करने लगी—

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥ २०, ३२ ॥

सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता ।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपश्रृण्वति लक्ष्मणे ॥ २०, ३५ ॥
'यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥ २०, ३६ ॥

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः ।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥ २०, ३७ ॥
न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे ।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामस्थितं मया ॥ २०, ३८ ॥

सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥ २०, ३९ ॥

अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥ २०, ४० ॥

त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता ।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव हि ॥ २०, ४१ ॥

अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता ।
परिवारेण कैकेय्याः समावाप्यथवावरा ॥ २०, ४२, ॥

यो हि मां सेवते कश्चिदपि वाप्यनुवर्तते ।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥ २०, ४३ ॥

नित्यक्रोधतया तस्याः कथं न खरवादि तत् ।
कैकेय्या वदनं द्रष्टुं पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता ॥ २०, ४३ ॥

कौसल्या को अपने सुकर्मों को कोसना और साथ वन ले जाने की आकांक्षा प्रकट करना—

उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः ।
दुःखसंवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥ २०, ३९ ॥

स्थिरं तु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते।
प्रावृषीव महानद्याः स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥ २०, ४९ ॥

ममैव नूनं मरणं न विद्यते नचावकाशोऽस्ति यमक्षये मम।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥२०,५०॥

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः सुदुर्बला वत्समिवाभिकाङ्क्षया ॥२०,५४॥

कौसल्या के विलाप से द्रवित हो लक्ष्मण का समयोपयोगी बातें कहना, अन्यथा कामी राजा दशरथ को वध कर डालना अथवा बन्दी कर लेने का परामर्श—

तथा तु विलपन्तीं तां कौशल्यां राममातरम्।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ २, १ ॥

"न रोचते ममाप्येतदार्ये यत् राघवो वनम्।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रिया वाक्यवशंगतः ॥ २१, २ ॥

विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ॥ २१, ३ ॥

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसङ्गः वध्यतां बध्यतामपि ॥ २१, १२ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ २१, १३ ॥

त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम्।
कास्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन ॥ २१, १५ ॥

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ २१, १६ ॥

दशरथ एवं कैकेयी के प्रति लक्ष्मण का भीषण आरोप व्यक्त करना—

दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥ २१, १७ ॥

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम्।
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥ २१, १९ ॥

कौसल्या ने लक्ष्मण की बातें सुनकर राम से तदनुसार काम करने को कहा और यह भी कहा कि यदि तुम मुझे छोड़कर वन जाओगे तो मैं अनशन द्वारा प्राण त्याग करूँगी और इसका पाप तुम्हें लगेगा—

भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यत्रानन्तरं तत्त्व कुरुष्व यदि रोचते ॥ २१, २१ ॥
नचाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्।
विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥ २१, २२ ॥
धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चरितुमिच्छसि।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥ २१ २३ ॥
यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
त्वं साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ २१, २५ ॥
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहाशिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ २१, २७ ॥
ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम्।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात् समुद्रः सरितां पतिम् ॥ २१, २८ ॥

श्रीराम ने पिता की आज्ञापालन में दृढ़ता दिखाई। पिता की आज्ञा को सर्वोपरि बताया—

विलपन्तीं तथा दीनां कौशल्यां जननीं ततः।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ २१, २९ ॥
'नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ २१, ३० ॥
ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा।
गौर्हता जानताधर्मं कण्डुना च विपश्चिता ॥ २१, ३१ ॥
अस्माकं तु कुले पूर्वं सगरस्याज्ञया पितुः।
खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तः सुमहान् वधः ॥ २१ ३२ ॥
जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम्।
कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारणात् ॥ २१, ३३ ॥
न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम्।
एतैरपि कृतं देवि ये मया परिकीर्तिताः ॥ २१, ३५ ॥
नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्त्तये।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥ २१. ३६ ॥
तदेतत् तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा।
पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ॥ २१. ३७ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण को सम्बोधित कर कहा कि, तुझे मेरे लिये प्रगाढ़ स्नेह और भक्ति है, किन्तु सत्यपालनार्थ मैं अपने संकल्प पर दृढ़ हूँ, तुम्हें भी मेरा ही अनुसरण करना चाहिये—

तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ २१, ३८ ॥

"तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ २१, ३९ ॥

मम मातुर्महद्दुःखमतुलं शुभलक्षण ।
अभिप्रायं न विज्ञाय सत्यस्य च शमस्य च ॥ २१, ४० ॥

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ॥ २१, ४१ ॥

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥ २१, ४२ ॥

तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥ २१, ४४ ॥

फिर माता कौसल्या से राम ने अनुमति माँगी—

अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम् ।
शापितासि मम प्राणैः कुरुस्वस्त्ययनानि मे ॥ २१, ४६ ॥

त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया ।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः ॥ २१, ४९ ॥

अम्ब सम्भृत्य सम्भारान् दुःखं हृदि निगृह्य च ।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम् ॥ २१, ५० ॥

माता ने कहा, 'माता की हैसियत से कहती हूँ कि तुम वन मत जाओ—

यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च ।
न त्वानुजानामि न मां विहाय सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥२१,५२॥

फिर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा —

अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव जानामि भक्तिं च पराक्रमं च ।
मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य मात्रा सहाभ्यर्दसि मा सुदुःखम् ॥२१,५६॥

पुनः श्रीराम का माता को तर्कपूर्वक समझाना—

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता स पुत्रा ॥ २१,५७ ॥

यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत ।
द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता॥२१,५८॥

न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञामिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः॥२१,६०॥

तस्मिन् पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतः स्वे पथि वर्तमाने ।
देवी मया सार्धमितोऽभिगच्छेत् कथंस्विदन्या विधवेव नारी ॥ १,६२॥

यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकालेन तु देवि जीविते वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥२१,६३॥

प्रसादयन्नरवरवृषभः स मातरं पराक्रमाज्जिगमिषुरेव दण्डकान् ।
अथानुजं भृशमनुशास्य दर्शनं चकार तां हृदि जननीं प्रदक्षिणाम्॥६४॥

कैकेयी के विषय में तथा दैव की प्रबलता के विषय में लक्ष्मण से संलाप—

जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् ।
भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥ २२, १७ ॥
सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः ।
उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद् दैवात् समर्थये ॥ २२, १८ ॥
सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।
यस्य किंचित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत् ॥
ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः ।
उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान् भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ॥ २२, २३ ॥
असंकल्पितमेवेह यदकस्मात् प्रवर्तते ।
निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ २२, २४ ॥
एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ॥ २२, २५ ॥

न लक्ष्मणास्मिन् मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या ।
दैवाभिपन्ना न पिता कथंचिज्जानासि दैवं हि तथा प्रभावम् ॥२२,३०॥

लक्ष्मण की दैव के विरुद्ध प्रचण्ड घोषणा, और भाग्य की शक्ति को ललकारना—

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव ।

ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दैन्यहर्षयोः ॥ २३, १ ॥

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम् ।
तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥ २२, १५ ॥

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
धीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥ २३, १६, ॥

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥ २३, १७ ॥

द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च ।
दैवमानुषयोरद्य व्यक्ताव्यक्तिर्भविष्यति ॥ २३, १८ ॥

यैर्विवासस्तवारण्ये मिथो राजन् समर्थितः ।
अरण्ये ते विवत्स्यन्ति चतुर्दश समास्तथा ॥ २३, २२ ॥

अहं तदाशां धक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव ।
अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥ २३, २३ ॥

मद्बलेन विरुद्धाय न स्याद् दैवबलं तथा ।
प्रभविष्यति दुःखाय यथोग्रं पौरुषं मम ॥ २३ २४ ॥

ऊर्ध्वं वर्षसहस्रान्ते प्रजापाल्यमनन्तरम् ।
आर्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ॥ २३, २५ ॥

राम के प्रति लक्ष्मण का प्रतिवेदन—

मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव ।
अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥ २३, २९ ॥

न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिरा बन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ २३, ३० ॥

अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति ।
राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ २३, ३७ ॥

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत् प्राणयशः सुहृज्जनैः ।
यथा तवेयं वसुधा वशा भवेत् तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः ॥२३,४०॥

राम ने प्यार से लक्ष्मण को शान्त किया—

विसृज्य वाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत् स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः ।
उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥२३,४१॥

राम से माता कौसल्या का पुनः आग्रह –

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।
अहं त्वामनुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ॥ २४, ९ ॥

श्रीराम ने माँ को नीतिपूर्वक सैद्धान्तिक नारीधर्म का निष्कर्ष समझाया—

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥ २४, ११ ॥

भर्तुः किल परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥ २४, १२ ॥

मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ २४, १६ ॥

तां तथा रुदतीं रामो रुदन् वचनमब्रवीत् ।
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥ २४, ० ॥

भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥ २४, २१ ॥

दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ।
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ॥ २४, २४ ॥

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ।
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥ २४, २५ ॥

भर्तुः शुश्रूषयानारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥ २४, २६ ॥

शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ॥ २४, २७ ॥

श्रीराम के दृढ़ निश्चय को जानकर माता ने उसे वनगमन की अनुमति दे दी—

एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ॥ २४, ३१ ॥

गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २४, ३२ ॥

गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ।
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ॥ २४, ३३ ॥

माँ ने श्रीराम का स्वस्त्ययनकार्य सम्पन्न किया —

तथा हि रामं वनवासनिश्चितं ददर्श देवी परमेण चेतसा।
उवाच रामं शुभलक्षणं वचो बभूव च स्वस्त्ययनाभिकाङ्क्षिणी ॥२४,३८॥

स्वस्त्ययनानन्तर श्रीराम आगे अपने भवन की ओर बढ़े—

अभिवाद्य तु कौसल्यां रामः सम्प्रस्थितो वनम्।
कृतस्वस्त्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्त्मनि स्थितः॥ २६, १॥
प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम्।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः॥ २६, ५॥

सीता ने अपने प्रियतम को खिन्न बदन देखा —

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम्।
अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम्॥ २६, ६॥

सीता को खिन्न देख कर श्रीराम बोलने लगे—

तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः॥ २६, ७॥

सीता ने श्रीराम से शोक का कारण पूछा—

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम्।
आह दुःखाभिसंतप्ता किमिदानीमिदं प्रभो॥ २६, ८॥

सीता की राम के प्रति प्रश्न—

अद्य बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्येण राघव।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः॥ २६, ९॥
अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते॥ २६, १८॥

राम के द्वारा सारी घटनाओं का वर्णन—

इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः।
सीते तत्र भवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम्॥ २६, १९॥
राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै।
कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ॥ २६, २१॥
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते।
प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः॥ २६, २२॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥ २६, २३ ॥

सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ।
भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन ॥ २६, २४ ॥

सीताजी को भरत के समक्ष अपने विषय में मौन रहने का आदेश एवं अन्यान्य उपदेश (श्रीराम का)—

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥ २६,२५ ॥

अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनी ॥ २६, २८ ॥

माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्षिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥ २६, ३१ ॥

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः ॥ २६, ३३ ॥

विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन ।
स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥ २६, ३४ ॥

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित् तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम॥२६,३८॥

सीता ने स्नेह से सनी बातें क्रोधकी मुद्रा में श्रीराम से कही, और अपने वनगमन के समर्थन में अकाट्य तर्क दिये—

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ २७, १ ॥
'किमिदं' भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम् ।
त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम ॥ २७, २ ॥
वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्रविदुषां नृप ।
अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यं त्वयेरितम् ॥ २७, ३ ॥
आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥ २७, ४ ॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ २७, ५ ॥

न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥ २७, ६ ॥

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥ २७, ९ ॥

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥ २७, १० ॥

अहं वनं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम् ॥ २७, ११ ॥

एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ।
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मतः ॥ २७, २० ॥

स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ।
त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ २७, २१ ॥

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चितम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥२७,२३॥

सीता के अनेक अनुनय विनय पर भी श्रीराम उसे वन ले जाने पर राजी नहीं हुये और वन की भीषणता को भयावह शब्दों में वर्णन किया एवं वहाँ चलने से रोका—

तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां न च स्म सीतां नृवरो निनीषति ।
उवाच चैनां बहुसंनिवर्तने वने निवासस्य च दुःखितां प्रति ॥२७, २४॥

सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले ।
वने दोषा हि बहवो वसतस्तान् निबोध मे ॥ २८, ४ ॥

हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जनामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ २८, ६ ॥

गिरिनिर्झरसम्भूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम ॥ २८, ७ ॥

सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः ।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ २८, ९ ॥

लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकुपनादिताः ।
निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥ २८, १० ॥

अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना ।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ २८, १२ ॥

उपवासश्च कर्तव्यो यथाप्राणेन मैथिलि ।
जटाभारश्च कर्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ॥ २८, १३ ॥

अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चाति नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र ततो दुःखतरं वनम् ॥ २८, १८ ॥

नदीनीलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥ २८, २० ॥

तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव ।
विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ २८, २५ ॥

जब श्रीराम वन ले जाने को बिल्कुल तैयार नहीं हुए, तब सीता ने कहा कि—पति के साथ वनकण्टकादि दुःख भी सुखद ही होंगे, यदि आप साथ न ले जायंगे तो मुझे जीवित न पायंगे—

वनं तु नेतुं न कृता मतिर्यदा बभूव रामेण तदा महात्मना ।
न तस्य सीता वचनं चकार तं ततोऽब्रवीद् राममिदं सुदुःखिता ॥२८,२६॥

ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति ।
गुणानित्येव तान् विद्धि तव स्नेहपुरस्कृता ॥ २९, २ ॥

मृगाः सिंहाः गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा ।
चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ २९, ३ ॥

अदृष्ट्वा पूर्वरूपत्वात् सर्वे ते तव राघव ।
रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥ २९, ४ ॥

त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया ।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवनम् ॥ २९, ५ ॥

नहि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोऽपि राघव ।
सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥ २९, ६ ॥

पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् ।
काममेवंविधं राम त्वया मम निदर्शितम् ॥ २९, ७ ॥

प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं मे बहुतिथं प्रभो ।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥ २९, १४ ॥

कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥ २९, १५ ॥

शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा ।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम् ॥ २९, १६ ॥

प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥ २९, १७ ॥

इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥ २९, १८ ॥

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥ २९, २० ॥

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ २९, २१ ॥

एवमुक्ता तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता ।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥ २९, २३ ॥

श्रीराम ने सीताजी को रोकने की चेष्टा की किन्तु, चिन्ता करती हुई सीता उन पर कुपित सी हो गई—

चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत् ॥ २९, २५ ॥

श्रीराम द्वारा सीताजी को बन साथ न ले जाने पर उन्हें क्रोध सा आ गया और उन्होंने प्रेम एवं अभिमान के कारण राम पर व्यंग्य आक्षेप किया—

सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३०, १ ॥

सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥ ३०, २ ॥

किं त्वा मन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ ३०, ३ ॥

अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद् यदि वक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ३०, ४ ॥

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत् परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ३०, ५ ॥

द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनम् ॥ ३०, ६ ॥

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥ ३०, ८ ॥

यस्य पथ्यं च रामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे ।
त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ ॥ ३०, ९ ॥

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि ।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात् त्वया सह ॥ ३०, १० ॥

शाद्बलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा ।
कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात् सुखतरं ततः ॥ १४ ॥

पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ ३०, १५ ॥

इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥ ३०, २१ ॥

उपरोक्त बातें कहकर सीता राम से लिपट गईं और ढाढ़मार कर जोरों से रोने लगीं—

इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु ।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥ ३०, २२ ॥

तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् ।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥ ३०, २६ ॥

"न देवि बत दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।
नहि मेऽस्ति भयं किंचित् स्वयम्भोरिव सर्वतः ॥ ३०, २७ ॥

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने ।
वासे न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥ ३०, २८ ॥

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते ।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ॥ ३०, ३३ ॥

यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि ।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते ॥ ३०, ३४ ॥

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणाः ।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता ॥ ३०, ३५ ॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च ।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किंचदपि दुर्लभम् ॥ ३०, ३६ ॥
देवगन्धर्वगोलोकान् ब्रह्मलोकांस्तथापरान् ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातृपितृपरायणाः ॥ ३०, ३७ ॥
स मां पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥ ३०, ३८ ॥
मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम् ।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥ ३०, ३९ ॥

श्रीराम ने प्रेमालिंगन कर साथ चलने की आज्ञा दे दी—

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।
देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ॥ ३०, ४३ ॥
भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च ।
रमणीयाश्च ये केचित् क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः ॥ ३०, ४४ ॥
शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च ।
देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥ ३०, ४५ ॥

पति के अभिप्राय को जान सीता दान कार्य में जुट गईं—

अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः ।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥ ३०, ४६ ॥
ततः प्रहृष्टा प्रतिपूर्णमानसा यशस्विनी भर्तुरवेक्ष्य भाषितम् ।
धनानि रत्नानि च दातुमङ्गना प्रचक्रमे धर्मभृतां मनस्विनी ॥३०,४७॥

वनगमन का निश्चय जानकर लक्ष्मण ने आकर श्रीसीताराम से प्रार्थना की कि, वह उनके साथ चलने को उद्यत हैं—

एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥ ३१, १ ॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ॥ ३१, २ ॥

"यदि गन्तुं कृताबुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥ ३१, ३ ॥

लक्ष्मण की अनन्य भक्ति—

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना" ॥ ३१, ५ ॥

श्रीराम ने निषेध किया और कारण बताया—लक्ष्मण ने पहिले ही पूछा कि मुझे तो आज्ञा मिली हुई है। फिर क्यों रोका जा रहा है ?"

एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः ।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ३१, ६ ॥
"अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥ ३१, ७ ॥
यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ३१, ८ ॥

श्रीराम का निषेध का करण बताना—

मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥ ३१, ११ ॥
अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव ।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥ ३१, १२ ॥
सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता ।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम् ॥ ३१, १३ ॥
न भरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम् ।
भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः ॥ ३१, १४ ॥
तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा ।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥ ३१, १५ ॥
एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता ।
धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ ३१, १६ ॥

माता के सुख के लिये ही लक्ष्मण को अयोध्या में रहने को कहा—

एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन ।
अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत् सुखम् ॥ ३१, १७ ॥

लक्ष्मण ने कहा, भैया ! कौसल्या के निर्वाह के लिये एक हजार ग्राम मिले हुए हैं। वह तो हम जैसे हजारों का पालन कर सकती हैं—

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥ ३१, १८ ॥
"तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्ति संशयः ॥ ३१, १९ ॥
यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम्।
प्राप्य दुर्मनसा वीर गर्वेण च विशेषतः ॥ ३१, २० ॥
तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः।
तत्पक्षानपि तान् सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किं तु सा ॥ ३१, २१ ॥
कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम् ॥ ३१, २२ ॥
कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥ ३१, २४ ॥
आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ॥ ३१, २६ ॥
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यसे।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥ ३१, २७ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण को साथ चलने की आज्ञा दे दी, पर इष्ट जनों से सम्मति ले लेने को कहा—

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम्।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥ ३१, २८ ॥

श्रीराम ने दान की इच्छा प्रकट की और लक्ष्मण को सुयज्ञादि ब्राह्मणों को शीघ्र बुलाने को कहा—

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥ ३१, ३५ ॥
वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम्।
अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान् द्विजातीन् ॥ ३१, ३७ ॥

लक्ष्मण ने अपने अग्रज की आज्ञा यथावत् पालन कर सुयज्ञ को राम के सम्मुख उपस्थित किया—

ततः शासनमाज्ञाय भ्रातुः प्रियकरं हितम् ।
गत्वा स प्रविवेशाशु सुयज्ञस्य निवेशनम् ॥ ३२, १ ॥

तं विप्रमग्न्यगारस्थं वन्दित्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
सखेऽभ्यागच्छ पश्य त्वं वेश्मदुष्करकारिणः ॥ ३२, २ ॥

ततः संध्यामुपास्थाय गत्वा सौमित्रिणा सह ।
ऋद्धं स प्राविशल्लक्ष्म्या रम्यं रामनिवेशनम् ॥ ३२, ३ ॥

जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैः शुभैः ।
सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥ ३२, ५ ॥

श्रीराम ने सुयज्ञादि ब्राह्मणों को यथेष्ट दान देकर उन सबों से कहा—

सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ।
हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय ॥ ३२, ६ ॥
रशनां चाथ सा सीता दातुमिच्छति ते सखी । ३२, ७ ॥

नागः शत्रुञ्जयो नाम मातुलोऽयं ददौ मम ।
तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुङ्गव ॥ ३२, १० ॥

इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् ।
रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥ ३२ ११ ॥

श्रीराम ने स्वयं पूजा करने के बाद अगस्त्यादि ऋषियों को पूजा करने के लिए लक्ष्मण से कहा—

अगस्त्यं कौशिकं चैव तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ।
अर्चयाहूय सौमित्रे रत्नैः सस्यमिवाम्बुभिः ॥ ३२, १३ ॥
तर्पयस्व महाबाहो गोसहस्रेण राघव ।
सुवर्णरजतैश्चैव मणिभिश्च महाधनैः ॥ ३२, १४ ॥

आश्रितों को दान—

सूतश्चित्ररथश्चार्यः सचिवः सुचिरोषितः ।
तोषयैनं महार्हैश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा ॥ ३२, १७ ॥

अम्बा यथा नो नन्देच्च कौसल्या मम दक्षिणाम् ।
तथा द्विजातींस्तान सर्वाल्लक्ष्मणार्चय सर्वशः ॥ ३२, २२ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद् धनं सह लक्ष्मणः ।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥ ३२, २८ ॥

दान देने के पश्चात् दोनों भाई सीता के साथ पिता को देखने चले—

दत्वा तु सह वैदह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ ३३, १ ॥

ततो गृहीते प्रेष्याभ्यामशोभेतां तदायुधे ।
मालादामभिरासक्ते सीतया समलंकृते ॥ ३३, २ ॥

राम को पैदल जाते देख कर नगरवासियों का आश्चर्य और वनजाने के समाचार से दुःख—

पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा ।
ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥ ३३, ५ ॥

"यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् ।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ३३, ६ ॥

निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद् विनिवासनम् ।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं जितो वृत्तेन केवलम्" ॥ ३३, ११ ॥

अनृशंसमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ ३३, १२ ॥

नगरवासियों के नगर छोड़ कर श्रीराम के साथ वन जानेकी इच्छा—

वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः ।
अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं सम्पद्यतां वनम् ॥ ३३, २२ ॥

राजभवन में पहुँचकर श्रीराम ने सुमन्त्र को अपने आगमन की सूचना महाराज को देन के लिए कहा—

स तु वेश्म पुनर्मातुः कैलासशिखरप्रभम् ।
अभिचक्राम धर्मात्मा मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ ३३, २७ ॥

विनीतवीरपुरुषं प्रविश्य तु नृपालयम् ।
ददर्शावस्थितं दीनं सुमन्त्रमविदूरतः ॥ ३३, २८ ॥

पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः ।
स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥ ३३, ३१ ॥

सुमन्त्र ने राजा को श्रीराम के आने की सूचना दी—

स रामप्रेषितः क्षिप्रं संतापकलुषेन्द्रियम् ।
प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह ॥ ३४, २ ॥

आबोध्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम् ।
राममेवानुशोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३४, ४ ॥

"अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा सर्वं चवोपजीविनाम् ॥ ३४, ६ ॥

स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् सुहृद आपृछ्य त्वां हीदानीं दिदृक्षते ॥ ३४, ७ ॥

गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपतिः ।
वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः ॥ ३४, ८ ॥

राजा ने सुमन्त्र से कहा, 'मेरी सभी पत्नियों को इकट्ठा करो, सबों के साथ ही अपने प्यारे पुत्र को देखूँगा'—

स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरोपमः ।
आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम्" ॥ ३४, ९ ॥

सुमन्त्रानय मे दारान् ये केचिदिह मामकाः ।
दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ ३४, ७ ॥

सुमन्त्र ने महल जाकर सभी राज दाराओं को राजा के पास आने को कहा—

सोऽन्तः पुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत् ।
"आर्यो ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र मा चिरम्" ॥ ३४, ११ ॥

राजशासन सुन कर साढ़े तीन सौ रानियाँ कौसल्या को घेर कर राजा के निकट पहुँच गईं—

एतमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया ।
प्रचक्रमुस्तद् भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥ ३४, १२ ॥

अर्धसप्तशताम्तत्र प्रमदास्ताम्रलोचनाः ।
कौसल्यां परिवार्याथ शनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥ ३४: १३ ॥

रानियों के आजाने पर राजाने सुमन्त्र से श्रीराम को बुलाने के लिए कहा—

आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः ।
उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥ ३४, १४ ॥

सुमन्त्र-लक्ष्मण, श्रीराम और सीता को लेकर राजा के पास पहुँचे। श्रीराम को देख कर, राजा उनसे मिलने के लिये उठकर बढ़े किन्तु बेहोश हो कर गिरपड़े। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने उठाकर उन्हें पलङ्ग पर बैठाया—

स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तथा।
जगामाभिमुखस्तूर्णं सकाशं जगतीपतेः ॥ ३४, १५ ॥
स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा चारात् कृताञ्जलिम्।
उत्पपातासनात् तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥ ३४, १६ ॥
सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशाम्पतिः।
तमसम्प्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ३४, १७ ॥
तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥ ३४, २० ॥

राजा के होश आने पर श्रीराम ने उनसे बन जाने की आज्ञा मांगी—

अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ॥ ३४, २१ ॥
"आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥ ३४, २२ ॥
लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम्।
कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥ ३४, २३ ॥
अनुजानीहि सर्वान् नः शोकमुत्सृज्य मानद।
लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिवात्मजान् ॥ ३४, २४ ॥

हार्दिक दुःख के साथ श्रीराम को राजा दशरथ द्वारा वनगमन की आज्ञा मिल गई—

रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयुतः।
कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत् ॥ ३४, ३० ॥
श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च।
गच्छ स्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥ ३४, ३१ ॥
न हि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्तव।
संनिवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दन ॥ ३४, ३२ ॥

राजा ने श्रीराम को एक रात रुकने को कहा—

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा ।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥ ३४, ३३ ॥

श्रीराम ने उसी दिन चलने में गुणों का अनुभव किया, और पिता से कहा—

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान् को मे श्वस्तान् प्रदास्यति ।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥ ३४, ४० ॥

त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च ते शपे ॥ ३४, ४८ ॥

न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो ।
स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्यये ॥ ३४, ४९ ॥

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव ।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥ ३४, ५० ॥

पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् ।
तस्माद् दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥ ३४, ५२ ॥

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला मया विसृष्टा भरताय दीयताम् ।
अहं निदेशं । भवतोऽनुपालयन् वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ।३४, ५४।

पुत्र के ऐसा कहने पर उन्होंने दुःख से अभिभूत हो उनका आलिङ्गन किया और फिर वह मूच्छित हो गिर गये—

एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः ।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव चिचेष्ट किंचित् ॥३४,५०॥

राजा के ससंज्ञ होने पर सुमन्त्र ने क्रोधपूर्ण वाग्बाणों द्वारा रानी से कहा-क्योंकि वह राजकुल के विनाश के लिये तुली हुई थी--

ततो निधूय सहसा शिरो निःश्वस्य चासकृत् ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य दन्तान् कटकटाय्य च ॥ ३५ १ ॥

लोचने कोपसंरक्ते वर्णं पूर्वोचितं जहत् ।
कोपाभिभूतः सहसा संतापमशुभं गतः ॥ ३५, २ ॥

मनः समीक्षमाणश्च सूतो दशरथस्य च ।
कम्पयन्निव कैकेय्या हृदयं वाक्शरैः शितैः ॥ ३५, ३ ॥
वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुभैः ।
कैकेय्याः सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥ ३५, ४ ॥

"यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम्।
भर्ता सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ ३५, ५ ॥

न ह्यकार्यतमं किंचित्तव देवीह विद्यते।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥ ३५, ६ ॥

मावमंस्था दशरथं भर्तारं वरदं पतिम्।
भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥ ३५, ८ ॥

न च ते विषये कश्चिद् ब्राह्मणो वस्तुमर्हति।
तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥ ३५, ११ ॥

आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम्।
आचरन्त्या न विवृता सद्यो भवति मेदिनी ॥ ३५, १४ ॥

आभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च।
नहि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ॥ ३५, १७ ॥

सत्यश्चात्र प्रवादोऽयं लौकिकः प्रतिभाति मा।
"पितॄन् समनुजायन्ते नरा मातरमङ्गना" ॥ ३५, २८ ॥

इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि।
भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥ ३५, ३६ ॥

नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते।
न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥ ३५, ३७ ॥

तब राजा ने सुमन्त्र को आदेश दिया, कि 'धन धान्य सहित चतुरङ्गिणी सेना के साथ श्रीराम को विदा करो'।

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥ ३६, २ ॥

धान्यकोशश्च यः कश्चिद् धनकोशश्च मामक।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥ ३६, ७ ॥

यजन् पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः।
ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥ ३६, ८ ॥

राजा की आज्ञा सुन कैकेयी सन्न रह गई और उसने कहा, 'धनहीन राज्य भरत लेना नहीं चाहेंगे'—

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम्।
मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि व्यरुध्यत ॥ ३६, १० ॥

सा विषण्णा च संत्रस्ता मुखेन परिशुष्यता ।
राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६, ११ ॥

राज्यं गतधन साधो पीतमण्डां सुरामिव ।
निरास्वाद्यतमं शून्यं भरतो नाभिपत्स्यते" ॥ ३६, १२ ॥

इसपर राजा ने डाँटा, तुम ने इसका करार पहले क्यों नहीं कराया ?

कैकेय्यां मुक्तलज्जायां वदन्त्यामतिदारुणम् ।
राजा दशरथो वाक्यमुवाचायतलोचनाम् ॥ ३६, १३ ॥

वहन्तं किं तुदसि मां नियुज्य धुरि माहिते ।
अनार्ये कृत्यमारब्धं किं न पूर्वमुपारुधः ॥ ३६, १४ ॥

क्रोधित कैकेयी ने उत्तर दिया—

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् ।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति" ॥ ३६, १६ ॥

इस पर राजा ने कैकेयी को धिक्कारते हुए कहा कि, असमञ्जको तो मार्ग में खेलते हुए निरपराधी बालकों को सरयूनदी में फेंकने के कारण सगरने उसे त्याग किया था, पर श्रीराम ने कौनसा अपराध किया, जिससे वन जाँय ?

एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् ।
व्रीडितश्च जनाः सर्वे सा च तन्नावबुध्यत ॥ ३६, १७ ॥

असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथि दारकान् ।
सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥ ३६, १९ ॥

ते दृष्ट्वा नागरा सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन् ।
असमञ्जं वृणीष्वैकमस्मान् वा राष्ट्रवर्धन ॥ ३६, २० ॥

क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान् बालानुद्भ्रान्तचेतसः ।
सरय्वां प्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलां प्रीतिमश्नुते ॥ ३६, २२ ॥

स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः ।
तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥ ३६, २३ ॥

इत्येनमत्यजद् राजा सगरो वै सुधार्मिकः ।
रामः किमकरोत् पापं येनैवमुपरुध्यते" ॥ ३६, २६ ॥

सिद्धार्थ ने कैकेयी से रामका दोष बताने को कहा, उन्होंने यह भी कहा कि निरपराध को दण्डित करना इन्द्र को भी भस्म कर सकता है—

नहि कंचन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम् ।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥ ३६, २७ ॥

अथवा देवि त्व कंचिद् दोषं पश्यसि राघवे ।
तमद्य ब्रूहि तत्त्वेन तदा रामो विवास्यते ॥ ३६, २८ ॥

अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च ।
निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥ ३६, २९ ॥

राजा ने कैकेयी से कहा—'लो, मैं राज्य को छोड़ आज ही राम के साथ बन चलता हूं, तुम भरत के साथ राज भोगना—

श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो राजाश्रान्ततरस्वरः ।
शोकोपहतया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ३६, ३१ ॥

एतद्वचो नेच्छसि पापरूपे हितं न जानासि ममात्मनोऽथवा ।
आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा चेष्टाहिते साधुपथादपेता ॥ ३६, ३२ ॥

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य राम राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च ।
सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं यथा सुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम् ॥३६, ३३॥

इस बहस पर श्रीराम ने पिता से कहा, त्यक्तसंग के लिये अनुयात्राके सम्मान से क्या प्रयोजन है ?' भला जो हाथी दे दे, उसे उसके आलान और रज्जु के लिए क्या मोह ?

त्यक्तभोगस्य मे राजन् वने वन्येन जीवतः ।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥ ३७, २ ॥
यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ३७, ३ ॥

मुझे तो चीर-वसन, खन्ती और एक पेटी ही चाहिए—

तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्या जगत्पते ।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥ ३७, ४ ॥

खनित्रपिटके चोभे समानयत गच्छत ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥ ३७, ५ ॥

निर्लज्ज कैकेयी ने स्वयं चीर लाकर श्रीराम से कहा 'पहन लो' । उस पर राम और लक्ष्मण ने उसे ग्रहण कर लिया—

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥ ३७, ६ ॥

स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥ ३७, ७ ॥

लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे ।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥ ३७, ८ ॥

चीर परिधान के प्रयोग में अकुशला सीता ने पति से उसके धारणविधि पूछी और उसे एक हाथ में लेकर लज्जित हो खड़ी रही —

अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।
सम्प्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ३७, ९ ॥

सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
कैकेय्याः कुशचीरे ते जानकी शुभलक्षणा ॥ ३७, १० ॥

अश्रुसम्पूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३७, ११ ॥

कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥ ३७, १२ ॥

कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना ।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥ ३७, १३ ॥

श्रीराम ने आकर सीता को चीर पहनाया—

तस्यास्तत् क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतांवरः ।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ ३७ १४ ॥

रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् ।
अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारिनेत्रजम् ॥ ३७ १५ ॥

ऊचुश्च परमायत्ता रामं ज्वलिततेजसम् ।

सीता की दशा देख कर महल की रानियों ने सीता को वन लेजाने के लिये श्रीराम को मना किया—

वत्स नैव नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥ ३७, १६ ॥

पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् ।
तावद् दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥ ३७, १७ ॥

कुरु नो याचनां पुत्र सीता तिष्ठतु भामिनी ।
धर्मनित्यःस्वयं स्थातुं न हीदानीं त्वमिच्छसि ॥ ३७, १९ ॥

सीता के चीर ग्रहण करने पर वसिष्ठ जी ने बड़े दुःखी हो कैकेयी को फट कारते हुए कहा कि राम के बन जाने से सारी प्रजायें और हम लोग उनके साथ जायंगे, तुम अकेली रहोगी, सीता अपने समुचित वेश में ही जायगी—

चीरं गृहीतं तु तथा सबाष्पो नृपतेर्गुरुः।
निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ ३७, २१॥
अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसिनि।
वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि॥ ३७, २२॥
"न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्॥ ३७, २३॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनम्॥ ३७, २४॥
अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता।
वयमत्रानुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति॥ ३७, २५,॥
अन्तपालाश्च यास्यन्ति सदारो यत्र राघवः।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरञ्च सपरिच्छदम॥ ३७, २६॥
भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम्॥ ३७, २७॥
ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह।
त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता॥ ३७, २८॥
नहि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति॥ ३७, २९॥
न ह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमिच्छति।
त्वयि वा पुत्रवद् वस्तुं यदि जातो महीपते॥ ३७, ३०॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद् गगनं चोत्पतिष्यसि।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति॥ ३७, ३१॥
तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम्।
लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः॥ ३७, ३२॥
द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशुव्यालमृगद्विजान्।
गच्छतः सह रामेण पादपांश्च तदुन्मुखान्॥ ३७, ३३॥

एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः कैकयराजपुत्रि ।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥ ३७, ३५ ॥

यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री ।
वस्त्रैश्च सर्वैः सहितैर्विधानैर्नेयं वृता ते वरसम्प्रदाने ॥ ३७, ३६ ॥

श्रीगुरुवर के ऐसा कहने पर भी सीता वेषभूषा आदि में अपने पति का ही अनुसरण करती रही—

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे ।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥३७, ३७॥

जनमत का आक्रोश—

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् ।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक् त्वां दशरथं त्विति ॥ ३८, २ ॥

उस कोलाहल से व्यथित हो राजा कैकेयी से भर्त्सनापूर्वक कहा कि तुमने राम के ही अभिषेक न करने की प्रतिज्ञा करायी थी, सीता के कुशचीर ग्रहण करा कर विदा करने की नहीं, तब ऐसा पाप क्यों कर रही हो ?—

तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः ।
चिच्छेद जीविते श्रद्धां धर्मे यशसि चात्मनः ॥ ३८, २ ॥

स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ।
"कैकेयि कुशचीरेण न सीता गन्तुमर्हति ॥ ३८, ३ ॥
सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता ।
नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३८, ४ ॥

चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा ।
यथासुखं गच्छति राजपुत्री वनं समग्रा सह सर्वरत्नैः ॥ ३८, ६ ॥

आजीवनार्हेण मया नृशंसा कृता प्रतिज्ञा नियमेन तावत् ।
त्वया हि बाल्यात् प्रतिपन्नमेतत् तन्मा दहेद् वेणुमिवात्मपुष्पम्" ॥३८,७॥

प्रतिज्ञातं मया तावत् त्वयोक्तं देवि शृण्वता ।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ ३८, ११ ॥

तत्त्वेतत् समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि ।
मैथिलीमपि याहि त्वमीक्ष्यसे चीरवासिनीम् ॥ ३८, १२ ॥

वन प्रस्थान करते श्रीराम का राजा दशरथ से निवेदन—

एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः सम्प्रस्थितो वनम् ।

अवाक्शिरः समासीनमिदं वचनमब्रवीत् ।। ३८, १३ ।।

"इयं धार्मिक कौशल्या मम माता यशस्विनी ।

वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ।। ३८, १४ ।।

श्रीराम ने राजा से अपनी वृद्धा माता की अवस्था पर कृपा दृष्टि रखने की प्रार्थना की—

मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।

अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि ।। ३८, १५ ।।

इमां महेन्द्रोपमजातगर्धिनीं तथा विधातुं जननीं ममार्हसि ।

यथा वनस्थे मयि शोककर्षिता न जीवनं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ।।३८,१७।।

श्रीराम की बात सुन राजा दशरथ का अचेत होना और चेतना आने पर उन का विलाप—

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् ।

समीक्ष्य सह भार्याभी राजाविगतचेतनः ।। ३९, १ ।।

स मुहूर्त्तमिवासंज्ञो दुःखितश्च महीपतिः ।

विललाप महाबाहू राममेवानुचिन्तयन् ।। ३९, ३ ।।

मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृता ।

प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ।। ३९, ४ ।।

एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं खिद्यते जनः ।

स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम् ।। ३९, ७ ।।

एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहितेन्द्रियः

रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः ।। ३९, ८ ।।

संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्त्तात स महीपतिः ।

नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।। ३९, ९ ।।

संज्ञा प्राप्त होने पर सुमन्त्र को रथादि प्रस्तुत करने का, राजा का आदेश—

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।

प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात् परम् ।। ३९, १० ।।

एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।

पिता माता च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ।। ३९, ११ ।।

सुमन्त्र को शीघ्र सीता के लिये बहुमूल्य वसनभूषण लाने का आदेश--

राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः।
योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ३९, १२ ॥

राजा सत्त्वरमाहूय व्यापृतं वित्तसंचये।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचि ॥ ३९, १४ ॥

वासांसि च वरार्हाणि भूषणानि महान्ति च।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥ ३९, १५ ॥

सुमन्त्र ने राजा की आज्ञा मान वस्त्राभूषण लाये और सीता ने उन्हें धारण किया—

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु गत्वा कोशगृहं ततः।
प्रायच्छत् सर्वमाहृत्य सीतायै क्षिप्रमेव तत् ॥ ३९, १६ ॥

सा सुजाता सुजातानि वैदेही प्रस्थिता वनम्।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥ ३६, १७ ॥

कौसल्या ने अपनी पुत्रवधू सीता को छाती से लगा उसे नारीधर्म का उपदेश दिया और दुष्ट नारी के लक्षण बताये—

तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्।
अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥ ३९, १९ ॥

"असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृताः प्रियैः।
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनिपातगतं स्त्रियः ॥ ३९, २० ॥

एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि ॥ ३९, २१ ॥

असत्यशीला विकृता दुर्गा अहृदया सदा।
असत्यः पापसंकल्पाः क्षणमात्रविरागिणी ॥ ३९, २२ ॥

न कुलं न कृतं विद्या न दत्तं नापि संग्रहः।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः ॥ ३९, २३ ॥

कौसल्या ने सती नारी के लक्षण, बताकर सीता को अपने पति का आदर करने की सलाह दी--

साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥ ३९, २४ ॥

स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तव देवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ ३९, २५ ॥

सीता द्वारा सास के उपदेशों का अनुमोदन करना और इसका कारण बताना—

विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् ॥
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥ ३९, २६ ॥

"करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् ।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥ ३९, २७ ॥

न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हसि ।
धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिवप्रभा ॥ ३९, २८ ॥

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ ३९, २९ ॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ ३९, ३० ॥

साहमेवं गता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्ता हि दैवतम्" ॥ ३९, ३१ ॥

सीता की बात से सास को बड़ी प्रसन्नता हुई । हर्षशोक मिश्रित आँसू निकल आये, उनकी आँखों से—

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयङ्गमम् ।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥ ३९, ३२ ॥

श्रीराम ने अपनी माता को दुःखित न होने के लिये ढाढ़स दिया—

तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् ।
रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९, ३३ ॥

"अम्ब ! मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम ।
क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ ३९, ३४ ॥

सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च ।
समग्रमिह सम्प्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम्" ॥ ३९, ३५ ॥

श्रीराम ने सभी अन्य माताओं से भी क्षमा याचना की—

संवासात् पुरुषं किञ्चिदज्ञानादपि यत् कृतम् ।
तन्मे समुपजानीत सर्वाश्चामन्त्रयामि वः ॥ ३९, ३८ ॥

विदाई काल में पिता-माताओं को श्रीराम लक्ष्मण सीता का विनीत अभिवादन—

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणः ॥ ४०, १ ॥
तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सह सीतया ।
राघवः शोकसम्मूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ ४०, २ ॥
अन्वेक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ।
अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥ ४०, ३ ॥

प्रणाम करते समय लक्ष्मण को मां सुमित्राने कुलधर्मानुसार अपने ज्येष्ठ भाई की अप्रमाद सेवा करने का उपदेश दिया—

तं वन्दमान रुदती माता सौमित्रीमब्रवीत् ।
हितकामा महाबाहुं मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥ ४०, ४ ॥
सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥ ४०, ५ ॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥ ४०, ६ ॥
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु च ॥ ४०, ७ ॥

लक्ष्मण से इस प्रकार कह, सुमित्राने श्रीराम को भी प्रस्थान की आज्ञा दी—

लक्ष्मण त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवं ।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ॥ ४०, ८ ॥

फिर लक्ष्मण को उसने श्रीराम को दशरथ, सीता को सुमित्रा एवं वन को अयोध्या मानने (समझने) को कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥ ४०, ९ ॥

सुमन्त्र ने रथ ला कर श्रीराम से रथारूढ होने को कहा—

रथमारोह भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसे ॥ ४०, १० ॥

अलंकृत हो पहले सीता रथ पर चढ़ीं—

तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालंकारमात्मनः ॥ ४०, १३ ॥

वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ ॥ ४०, १४ ॥

पुनः रथ के पिछले भाग में आवश्यक सामानों को रखा और दोनों भाईयों के रथारूढ़ होने पर सुमन्त्र ने रथ हाँका—

तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च।
रथोपस्थ प्रविन्यस्य सचर्मकठिनं च यत् ॥ ४०, १५ ॥

अथोज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम्।
तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४०, १६ ॥

सीता तृतीयानारूढान् दृष्ट्वा रथमचोदयत्।
सुमन्त्रः सम्मतानश्वान् वायुवेगसमाञ्जवे ॥ ४०, १७ ॥

श्रीराम के प्रति नागरिकों का उद्भ्रान्त प्रेम तथा उनके द्वारा सीता और लक्ष्मण के भाग्यों को सराहना—

ततः सबालवृद्धा सा पुरी परम पीडिता।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥ ४०, २० ॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानस्तदुन्मुखाः।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमुचुर्भृशनिःस्वनाः ॥ ४०, २१ ॥

सयंच्छ वाजिनां रश्मिन सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्यामि रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥ ४०, २२ ॥

कृत कृत्याहि वैदेही छायेवानुगता पतिम्।
न जहाति रता धर्मं मेरुमर्कप्रभा यथा ॥ ४०, २४ ॥

अहो लक्ष्मणसिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥ ४०, २५ ॥

महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥ ४०, २६ ॥

राजा दशरथ की व्याकुल दशा; प्रियपुत्रों के प्रस्थान, करते समय उन्हें देखने के हेतु, बाहर दौड़ पड़ना—

अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात् ॥ ४०, २८ ॥

पिता हि राजा काकुत्स्थः श्रीमान् सन्नस्तदा बभौ ।
परिपूर्णः शशीकाले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥ ४०, २९ ॥

अपने पीछे दुःख भार से पीड़ित माता-पिता को देख कर श्रीराम ने सारथी को शीघ्र आगे निकल जाने को प्रेरित किया, किन्तु जनता उन्हें ठहरनेके लिये कह रही थी; इस प्रकार सूत कुछ करने में समर्थ नहीं होते थे—

स च श्रीमानचिन्त्यात्मा रामो दशरथात्मजः ।
सूतं संचदयामास 'त्वरितं वाह्यतामिति' ॥ ४०, ३१ ॥
रामो 'याहीति' तं सूतं 'तिष्ठेति' च जनस्तथा ।
उभय नाशकत् सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥ ४०, ३२ ॥

श्रीराम ने अपने माता-पिता की हृदयद्रावक दयनीय दशा देखी और अपने प्रिय के दुखद कर्णकटु शब्द सुने, तथा सारथी को दशरथ ने रथ ठहराने को कहा और राम ने आगे चलने को कहा । दो प्रकार के आदेश सुनकर सुमन्त्र स्वयं द्विविधा में पड़े थे—

दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम् ।
निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥ ४०, ३६ ॥
ततो हलहलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम् ॥ ४०, ३७ ॥
अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥ ४०, ३९ ॥
स बद्ध इव पाशेन किशोरो मातरं यथा ।
धर्मपाशेन संयुक्तः प्रकाशं नाभ्युदैक्षत ॥ ४०, ४० ॥
पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ ।
दृष्ट्वा संचोदयामास 'शीघ्रंयाहीति' सारथिम ॥ ४०, ४१ ॥
प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् ।
बद्धवत्सा यथा धेनु राममाताभ्यधावत ॥ ४०, ४३ ॥
तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथं तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्तीं राम रामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥ ४०, ४४ ॥
रामलक्ष्मणसीतार्थं स्रवन्तीं वारि नेत्रजम् ।
असकृत् प्रैक्षत स तां नृत्यन्तीमिवमातरम् ॥ ४०, ४५ ॥

'तिष्ठेति राजा' चुक्रोश 'याहि याहीति' राघवः।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥ ४०, ४६ ॥

अन्त में श्रीराम ने सारथी से कहा कि आगे बढ़ चलो यदि मिलने पर राजा पूछें, तो उनको कह देना कि मैंने आप के आदेश सुना ही न था—

'नाश्रौषमिति' राजानमुपलब्धोऽपि वक्ष्यसि।
चिरं दुःखस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत् ॥ ४०, ४७ ॥
स रामस्य वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम्।
व्रजतोऽपि हयाञ्छीघ्रं चोदयामास सारथिः ॥ ४०, ४८ ॥

मन्त्रियों ने राजा से सविनय अनुरोध किया कि वे अब घर लौट चलें क्योंकि जिसको पुनः लौटाने की कामना हो उसको दूर तक नहीं पीछा करना चाहिये—

यमिच्छेत् पुनरायातं नैनं दूरमनुव्रजेत्।
इत्यामात्यो महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥ ४०, ५० ॥
तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥४०, ५१॥

अन्तःपुर में श्रीराम के लिये करुण विलाप—

तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृताञ्जलौ।
आर्तशब्दो हि संजज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे महान् ॥ ४१, १ ॥
अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गतिं शरणं चासीत् स नाथः क्व नु गच्छति ॥ ४१,२ ॥
न क्रुध्यत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति ॥ ४१, ३ ॥
त्रिशङ्कुर्लोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि।
दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ॥ ४१, ११ ॥
नक्षत्राणि गतार्चींषि ग्रहाश्च गततेजसः।
विशाखाश्च सधूमाश्च नभसि प्रचकाशिरे ॥ ४१, १२ ॥

शोकसंतप्त अयोध्या निवासी आहार विहारादि छोड़ कर केवल राजा को ही कोसने लगे—

अकस्मान्नागरः सर्वो जनो दैन्यमुपागमत्।
आहारे वा विहारे वा न कश्चिदकरोन्मनः ॥ ४१, १५ ॥

शोकपर्यायसंतप्तः सततं दीर्घमुच्छ्वसन्।
अयोध्यायां जनः सर्वश्चुक्रोश जगतीपतिम्॥ ४१, १६॥

अनर्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारो भ्रातरस्तथा।
सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन्॥ ४१, १९॥

जब तक उड़ती धूल दिखाई पड़ती रही, राजा देखते ही रहे। उसके ओझल हो जाने पर वे मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े—

यावद् राजा प्रियं पुत्रं पश्यत्यत्यन्तधार्मिकम्।
तावद् व्यवर्द्धते वास्य धरण्यां पुत्रदर्शने॥ ४२, २॥

न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः।
तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले॥ ४२, ३॥

तस्य दक्षिणमन्वागात् कौसल्या बाहुमङ्गना।
परं चास्यान्वगात् पार्श्वं कैकेयी सा सुमध्यमा॥ ४२, ४॥

राजा ने कैकेयी का पूर्ण परित्याग किया और कहा कि यदि भरत भी इस दुरभिसंधि में हों तो उनका दिया हुआ पितृक्रियादि सम्बन्धी दान मुझे प्राप्त नहीं हो—

तां नयेन च सम्पन्नो धर्मेण विनयेन च।
उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः॥ ४२, ५॥

कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये।
नहि त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी॥ ४२, ६॥

ये च त्वमनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम्॥ ४२, ७॥

अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत्।
अनुजानामि तत् सर्वमस्मिंल्लोके परत्र च॥ ४२, ८॥

भरतश्चेत् प्रतीतः स्याद् राज्यं प्राप्य तदव्ययम्।
यन्मे स दद्यात् पित्रर्थं मा मां तद्दत्तमागमत्॥ ४२, ९॥

पुत्रशोक से सन्तप्त एवं धूल से सने हुए राजा अतिसंतप्त हुए—

अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नराधिपम्।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्षिता॥ ४२, १०॥

हत्वेव ब्राह्मणं कामात् स्पृष्ट्वाग्निमिव पाणिना।
अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं संचिन्त्य राघवम्॥ ४२, ११॥

निवृत्यैव निवृत्यैव सीदतो रथवर्त्मसु ।
राज्ञो नातिबभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा ॥ ४२, १२ ॥

नगर के अन्त तक पहुँच कर दुःखी राजा राम और सीता के विषय में विलाप करते हुए लोगों के साथ घर में प्रवेश किये--

विललाप स दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन् ।
नगरान्तमनुप्राप्तं बुद्ध्वा पुत्रमथाब्रवीत् ॥ ४२, १३ ॥

यः सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरूषितः ।
वीज्यमानो महार्हाभिः स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः ॥ ४२, १५ ॥

स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
काष्ठं वा यदि वा वा श्मानमुपधाय शयिष्यते ॥ ४२, १६ ॥

सानूनं जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता ।
कण्टकाक्रामणक्लान्ता वनमद्य गमिष्यति ॥ ४२, १९ ॥

सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमावस ।
नहि तं पुरुषव्याघ्रं विना जीवितुमुत्सहे ॥ ४२, २१ ॥

इत्येवं विलपन् राजा जनौघेनाभिसंवृतः ।
अपस्नात इवारिष्टं प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ ४२, २३ ॥

विलखते हुए राजा दशरथ ने सेवकों को कौसल्या के भवन में ही अपने को पहुँचा देने को कहा । उन लोगों ने वैसा ही किया--

अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन् वसुधाधिपः ।
उवाच मृदुमन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥ ४२, २६ ॥

कौसल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् ।
न ह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति" ॥ ४२, २७ ॥

इति ब्रुवन्तं राजानमनयन् द्वारदर्शिनः ।
कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेशयत विनीतवत् ॥ ४२, २८ ॥

कौसल्या से राजा ने दीनस्वर में कहा, मुझे अपने हाथ से स्पर्श करो । देवि ! राम की ओर गई हुई मेरी दृष्टि आज भी लौट नहीं रही है--

अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः ।
अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ ४२, ३२ ॥

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥ ४२, ३४ ॥

एकान्त में महारानी कौसल्या राजा से अपने पुत्र के प्रति कैकेयी के दुर्व्यवहार एवं उसकी क्रूरता के बारे में कहती हुई बोली, "राम बन में कष्टों को कैसे भोगते होगे ? और उन सबों को मैं कब देखूंगी ? अब मैं शोक से जल रही हूँ"--

ततः समीक्ष्य शयने सन्नं शोकेन पार्थिवम् ।
कौसल्या पुत्र शोकार्ता तमुवाच महीपतिम् ॥ ४३, १ ॥

"राघवे नरशार्दूले विषं मुक्त्वा हि जिह्मगा ।
विचरिष्यति कैकेयी निर्मुक्तेव हि पन्नगी ॥ ४३, २ ॥

विवास्य रामं सुभगा लब्धकामा समाहिता ।
त्रासयिष्यति मां भूयो दुष्टाहिरिव वेश्मनि ॥ ४३, ३ ॥

अथास्मिन् नगरे रामश्चरन् भैक्ष्यं गृहे वसेत् ।
कामकारो वरं दातुमपि दासं ममात्मजम् ॥ ४३, ४ ॥

नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः ।
वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ४३, ६ ॥

वने त्वदृष्टदुःखानां कैकेय्यानुमते त्वया ।
त्यक्तानां वनवासाय कान्ववस्था भविष्यति ॥ ४३, ७ ॥

अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः ।
सहभार्यं सहभ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥ ४३, ९ ॥

कदा सुमनसः कन्या द्विजातीनां फलानि च ।
प्रदिशन्त्यः पुरीं हृष्टाः करिष्यन्ति प्रदक्षिणम ॥ ४३, १५ ॥

न हि मे जीविते किंचित् सामर्थ्यमिह कल्प्यते ।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मण च महाबलम् ॥ ४३, २० ॥

अयं हि मां दीपयतेऽद्य वह्निस्तनूज-शोकप्रभवो महाहितः ।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो यथा निदाघे भगवान् दिवाकरः ॥४२,२१॥

श्रीराम की प्रशंसा करती हुई एवं पूर्ण तर्क के साथ श्रीराम के ऐश्वर्य वर्णन करती हुई, माता सुमित्रा द्वारा शीघ्र राज्याभिषेक में सकुशल पहुँचने आदि का सान्त्वना पूर्ण कथन--

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम् ।
इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ॥ ४४, १ ॥

"तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः ।
किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥ ४४, २ ॥

यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः ।
साधुकुर्वन् महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥ ४४, ३ ॥

शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्यफलोदयः ।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन ॥ ४४, ४ ॥

वर्तते चोत्तमां वृत्तिं लक्ष्मणोऽस्मिन् सदानघः ।
दयावान् सर्वभूतेषु लाभस्तस्य महात्मनः ॥ ४४, ५ ॥

अरण्यवासे यद्दुःखं जानन्त्येव सुखोचिता ।
अनुगच्छति वैदेही धर्मात्मानं तवात्मजम् ॥ ४४, ६ ॥

कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रमयति प्रभुः ।
धर्मः सत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥ ४४, ७ ॥

शिवः सर्वेषु कालेषु काननेभ्यो विनिःसृतः ।
राघवं युक्तशीतोष्णः सेविष्यति सुखोऽनिलः ॥ ४४, ९ ॥

या श्रीः शौर्यं च रामस्य या च कल्याणसत्त्वता ।
निवृत्तारण्यवासः स क्षिप्रं राज्यमवाप्स्यति ॥ ४४, १४ ॥

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा क्षमा ॥४४, १५॥

दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥ ४४, १६ ॥

पृथिव्या सह वैदेह्या श्रिया च पुरुषर्षभः ॥ ४४, १७ ॥
क्षिप्रं तिसृभिरेताभिः सह रामोऽभिषेक्ष्यते ।
दुःखजं विसृजत्यश्रु निष्क्रामन्तमुदीक्ष्य यम् ॥ ४४, १८ ॥
अयोध्यायां जनः सर्वः शोकवेगसमाहतः ।
कुशचीरधरं वीरं गच्छन्तमपराजितम् ।
सीतेवानुगता लक्ष्मीस्तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥ ४४, १९ ॥
धनुर्ग्रहवरो यस्य बाणखड्गास्त्रभृत् स्वयम् ।
लक्ष्मणो व्रजति ह्यग्रे तस्य किं नाम दुर्लभम ॥ ४४, २० ॥
निवृत्तवनवासं तं द्रष्टासि पुनरागतम् ।
जहि शोकं च मोहं च देवि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४४, २१ ॥
नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः ।
नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥ ४४, २६ ॥

इतना समझा कर सुमित्रा चुप हो गई--

आश्वासयन्ती विविधैश्च वाक्यैर्वाक्योपचारे कुशलानवद्या ।
रामस्य तां मातरमेवमुक्त्वा देवी सुमित्रा विरराम रामा ॥ ४४, ३० ॥

सुमित्रा की सान्त्वना से कौसल्या को बड़ी शान्ति मिली--

निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥ ४४, ३१ ॥

उधर श्रीराम ने साथ गये हुए पुरवासियों को लौट जाने का अनुरोध किया और कहा कि यही स्नेह भरत के प्रति बरतते हुए मेरे वनवास से पूज्य पिता जी को जैसे क्लेश न पहुँचे वैसे करने को कहा---

निवर्तितेऽतीव बलात् सुहृद्धर्मेण राजनि ।
नैव ते संन्यवर्तन्त रामस्यानुगता रथम् ॥ ४५, २ ॥

स याच्यमानः काकुत्स्थस्ताभिः प्रकृतिभिस्तदा ।
कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत ॥ ४४, ४ ॥

अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव ।
उवाच रामः सस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥ ४४, ५ ॥

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनः ।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ४४, ६ ॥

स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
करिष्यति यथावद् वः प्रियाणि च हितानि च ॥ ४४, ७ ॥

ज्ञानवृद्धो वयो बालो मृदुवीर्यगुणान्वितः ।
अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ४४, ८ ॥

स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः ।
अपि चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम् ॥ ४४, ९ ॥

न संतप्येद् यथा चासौ वनवासगते मयि ।
महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥ ४४, १० ॥

पैदल चलकर वन जाने से रोकते हुए विलपते देख श्रीराम स्वयं रथ से उतर कर उनके साथ ही चलने में छोटापन नहीं समझा—

ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा ।
वयः प्रकम्पशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ॥ ४५, १३ ॥

वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः ।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवति भर्तरि" ॥ ४५, १४ ॥

एवमार्तप्रलापांस्तान् वृद्धान् प्रलपतो द्विजान् ।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥ ४५, १७ ॥

द्विजातीन् हि पदातींस्तान रामश्चारित्रवत्सलः ।
न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः ॥ ४५, १९ ॥

जाते हुए ही श्रीराम को देखकर द्विजातियों ने चलते चलते तमसा नदीतक पहुँच उन्हें लौट जाने का आग्रह किया—

गच्छन्तमेव ते दृष्ट्वा रामं सम्भ्रान्तमानसाः ।
ऊचुः परमसंतप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥ ४५, २० ॥

"अनवाप्तातपत्रस्य रश्मिसंतापितस्य ते ।
एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः ॥ ४५, २३ ॥

या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी ।
त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥ ४५, २४ ॥

हृदयेष्ववतिष्ठन्ते वेदा ये नः परं धनम् ।
वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥ ४५, २५ ॥

पुनर्न निश्चयः कार्यस्त्वद्गतौ सुकृता मतिः ।
त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद् धर्म पथे स्थितम्॥ ४५, २६ ॥

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः :
शिरोभिर्निर्भृताचार महीपतनपांसुलैः ॥ ४५, २७ ॥

बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः ।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने ॥ ४५, २८ ॥

भक्तिमन्तीह भूतानि जङ्गमाजङ्गमानि च ।
याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय" ॥ ४५, २९ ॥

एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने ।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥ ४५, ३२ ॥

इस प्रकार वहाँ पहुँच कर सुमन्त्र ने रथ से घोड़े खोले और उनकी थकावट दूर की—

ततः सुमन्त्रोऽपि रथाद्विमुच्य श्रान्तान् हयान् सम्परिवर्त्य शीघ्रम् ।
पीतोदकांस्तोयपरिप्लुताङ्गानचारयद् वै तमसाविदूरे ॥ ४५, ३३ ॥

तमसा तीर पर प्रथम रात बिताई, रात में ही भाई लक्ष्मण से सलाह कर पुरवासियों को वहाँ छोड़कर आगे बढ़ चलने का विचार किया क्योंकि पुरवासी स्वेच्छा से उनका साथ छोड़ने वाले तो थे नहीं—

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः।
सीतामुद्दिश्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४६, १॥

इयमद्य निशापूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्।
वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि॥ ४६, २॥

पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः।
यथा विलयमायद्भिर्निलीनानि मृगद्विजैः॥ ४६, ३॥

अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम।
सस्त्रीपुंसा गतानस्मान्शोचिष्यति न संशयः॥ ४६, ४॥

अस्मद्व्यपेक्षान् सौमित्रे निर्व्यपेक्षान् गृहेष्वपि।
वृक्षमूलेषु संसक्तान् पश्य लक्ष्मण साम्प्रतम्॥ ४६, १९॥

यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने।
अपि प्राणान् न्यसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥ ४६, २०॥

यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम्॥ ४६, २१॥

पौरा ह्यात्मकृताद् दुःखाद् विप्रमोच्या नृपात्मजैः।
ननु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः॥ ४६, २३॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को बुलाकर कहा, "सारथे, तुम शीघ्र रथ को तैयार करो हम पुरवासियों को सोते छोड़ कर निकल जाना चाहते हैं। सुमन्त्र ने वैसा ही आज्ञा पालन किया—

अथ रामोऽब्रवीत् सूतं शीघ्रं संयुज्यतां रथः।
गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छ शीघ्रमितः प्रभो॥ ४६, २५॥

रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च सारथिः।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत्॥ ४६, ३२॥

ततः समास्थाय रथं महारथः ससारथिर्दाशरथिर्वनं ययौ।
उदङ्मुखं तं तु रथं चकार प्रयाणमाङ्गल्यनिमित्तदर्शनात्॥ ४६, ३४॥

प्रभात में जागने पर श्रीरामादि को वहां नहीं देखने पर पुरवासी जन ढाढ़

मार कर विलाप करने लगे और निराश हो घर को लौट गये। अपने को उन्होंने खूब कोसा—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः॥ ४७, १॥

शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः॥ ४७, २॥

ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता।
कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः॥ ४७, ३॥

"धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहतचेतसः।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम्॥ ४७, ४॥

इहैव निधनं याम महाप्रस्थानमेव वा।
रामेण रहितानां नो किमर्थं जीवितं हितम्॥ ४७, ७॥

निर्यातस्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम्॥ ४७, ११॥

तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः।
अयोध्यामगमन् सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम्॥ ४७, १५॥

ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः।
नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्ष्यमाणाः प्रविनष्टहर्षाः॥ ४७, १६॥

श्रीरामवियोग में नागरिकनारियों का करुणविलाप एवं राम के विना लौटने के कारण उन की भर्त्सना—

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे बाष्पेण पिहिताननाः॥ ४८, ३॥

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत॥ ४८, ५॥

गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम्।
व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान्॥ ४८, ६॥

"किं न तेषां गृहे कार्यं किं दारैः किं धनेन वा।
पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम्॥ ४८, ७॥

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन् वने॥ ४८, ८॥

स्त्रियों ने पुरुषों से कहा, "लौट चलो, जहाँ राम हैं वहाँ कोई भय नहीं है। हम नारियाँ सीता की सेवा करेंगी और तुम लोग राम की सेवा करना—

पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यन्ति राघवम्।
यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ॥ ४८, १५ ॥

वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम्।
इति पौरस्त्रियोभर्तॄन् दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन् ॥ ४८, १८ ॥

कैकेय्या यदि चेद् राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत्।
न हि नो जीवितेनाथ कुतः पुत्रैः कुतो धनैः ॥ ४८, २१ ॥

मिथ्याप्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा ॥ ४८, ५० ॥

इस तरह विलाप करते हुए रात आ गई—

इत्येवं विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम्।
जगामास्तं दिनकरं रजनी चाभ्यवर्तत ॥ ४८, ३३ ॥

इधर रथ द्वारा श्रीरामादि का शृङ्गवेरपुर पहुँचना और यह सुन कर निषाद राज का वहाँ मन्त्रिबन्धुओं के साथ उपस्थित होना—

अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान्।
सुमहानिङ्गुदी वृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥ ५०, २८ ॥

रामोऽभिप्राय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः।
रथादवरत् तस्मात् सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ५०, ३१ ॥

तत्र राजा गुहोनाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेतिविश्रुतः ॥ ५०,३३ ॥

स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम्।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥ ५०, ३४ ॥

निषादराज को दूर से उपस्थित देख दोनों भाई वहाँ गये—

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।
सह सौमित्रिणा रामः समगच्छद् गुहेन सह ॥ ५०, ३५ ॥

निषादराज ने श्रीराम का यथायोग्य स्वागत किया और भक्ष्य, भोज्यादि आवश्यकीय वस्तुएं लाकर उपस्थित कीं—

स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही।
वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रसाधि नः ॥ ५०, ३८ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम्।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते ॥ ५०, ३९ ॥

प्रसन्न चित्त श्रीराम ने गुह से हाथ मिलाया और कुशल समाचार पूछ कर घोड़े के लिये खाद्यमात्र लाने को कहा—

अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम्।
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च ॥ ५०, ४० ॥

भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।
"दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।

अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥ ५०, ४२ ॥

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित्।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥ ५०, ४५ ॥

फिर रात आजाने पर श्रीराम और सीता सोने गये और लक्ष्मण उन दोनों के पैरों को धो एक पेड़ की जड़ के आश्रम में बैठकर जागते रहे। सारथी के साथ निषादराज भी लक्ष्मण से रात भर बातचीत करता रहा। इस प्रकार वह रात बीत गई—

तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥ ५०, ४९ ॥

गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्।
अन्वजाग्रत् ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ ५०, ५० ॥

तथा शयानस्य ततो यशस्विनो मनस्विनो दाशरथेर्महात्मनः।
अदृष्टदुःखस्य सुखोचितस्य सा तदा व्यतीता सुचिरेण शर्वरी ॥ ५०, ५१ ॥

प्रात होने पर लक्ष्मण ने भाई के आदेश से गुह को बुलाया।

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ ५२, १ ॥

विज्ञाय रामस्य वचः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।
गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद् भ्रातुरग्रतः ॥ ५२, ४ ॥

गुह ने अपने सचिवों को नाव प्रस्तुत करने को कहा—

अस्य वाहन संयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम्।
सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ५२, ६ ॥

सुदृढ़ नावों को घाट पर लगा कर अमात्यने गुह को सूचित किया—

तं निशम्य गुहादेशं गुहामात्यो गतो महान् ।
उपोह्य रुचिरां नावं गुहाय प्रत्यवेदयत् ॥ ५२, ७ ॥

तब गुह ने श्रीराम से निवेदन किया कि नाव ठीक है, उस पर चढ़ें और वे अपने सामान चढ़ा कर सीता के साथ दोनों भाई गंगा पार करने लगे—

तवामरसुतप्रख्य तर्तुं सागरगामिनीम् ।
नौरियं पुरुषव्याघ्र शीघ्रमारोह सुव्रत ॥ ५२, ९ ॥

ततः कलापान् संगृह्य खड्गौ बध्वा च धन्विनौ ।
जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥ ५२, ११ ॥

सूत ने पूछा 'मैं क्या करूं ?' श्रीराम का उत्तर—"सुमन्त्र ! पिताजी के पास लौट जाइये। यहाँ से हम पैदल महावन जायँगें—

राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत् ।
"किमहं करवाणीति" सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ५२, १२ ॥

ततोऽब्रवीद् दाशरथिः सुमंत्रं स्पृशन् करेणोत्तमदक्षिणेन ।
सुमन्त्र शीघ्रं पुनरेव याहि राज्ञः सकाशे भव चाप्रमत्तः ॥५२, १३॥

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम ।
रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामि महावनम् ॥ ५२, १४ ॥

इस पर सुमन्त्र ने श्रीराम से साथ ले चलने का आग्रह किया, पर श्रीराम की अस्वीकृति पर सुमन्त्र फूट फूट कर रोने लगे—

सह राघव वैदेह्या भ्रात्रा चैव वने वसन् ।
त्वं गतिं प्राप्स्यसे वीर त्रींल्लोकांस्तु जयन्निव ॥ ५२, १८ ॥

वयं खलु हता राम ये त्वया ह्युपवञ्चिताः ।
कैकेय्या वशमेष्यामः पापाया दुःखभागिनः ॥ ५२, १९ ॥

इति ब्रुवन्नात्मसमं सुमन्त्रः सारथिस्तदा ।
दृष्ट्वा दूरगतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम् ॥ ५२, २० ॥

श्रीराम ने सुमन्त्र को सस्नेह संदेश दिया कि पिताजी मेरे लिए शोच न करें ऐसा करने और उनपर अधिक ध्यान देने को कहा। साथ ही सभी माताओं से प्रणाम कह पिताजी से भरत को शीघ्र लिवाने कहना। भरत से भी कहना कि वह पिताजी के समान ही सभी माताओं के साथ व्यवहार करें—

इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये ।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत् तथा कुरु ॥ '५२, २२ ॥

शोकोपहतचेताश्च वृद्धश्च जगतीपतिः ।
कामभारावसन्नश्च तस्मादेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५२, २३ ॥

यद् यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति ।
न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत् तथा ॥ ५२, २६ ॥

अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम ।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥ ५२, २७ ॥

न चाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च शोचति ।
अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥ ५२, २८ ॥

चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान्॥ ५२, २९ ॥

एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे ।
अन्याश्च देवीः सहिता कैकेयी च पुनः पुनः ॥ ५२, ३० ॥

आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवादनम ।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥ ५२, ३१ ॥

ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय' ।
आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ ५२, ३२ ॥

भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥ ५२, ३३ ॥

सुमन्त्र ने कहा—"मैं किस प्रकार सूना रथ लेकर जाऊँगा, मुझे भी अपने साथ कर लें प्रभो !"

कथं हि त्वद् विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् ।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकाकुलामिव ॥ ५२, ३९ ॥

सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनः ।
विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी ॥ ५२, ४० ॥

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः ।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरम् ॥ ५२, ५२ ॥

श्रीराम ने कहा—'मेरे ही हित के लिये जाइये सुमन्त्र, और जिन-जिन से जैसा कहा है, उन्हें सुना देना—

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज।
संदिष्टश्चापि यानार्थांस्तांस्तान् ब्रूयास्तथा तथा ॥ ५२, ६४ ॥

गुह द्वारा वटक्षीर मंगाकर श्रीराम ने अपनी और लक्ष्मण की जटा बनायीं—

जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय।
तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत् ॥ ५२, ६८ ॥

लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः ॥ ५२, ६९ ॥

तत्पश्चात् नौकारोहण किया और गंगा पार हुए—

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन्।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥ ५२, ७६ ॥

अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः।
ततो निषादाधिपतिर्गुहो ज्ञातीनचोदयत् ॥ ५२, ७७ ॥

तीरं तु समनुप्राप्य नावं हित्वा नरर्षभः।
प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥ ५२, ९३ ॥

तब एक दूसरे की रक्षा के लिये, आगे आगे लक्ष्मण बीच में सीता और पीछे पीछे श्रीराम चले, (विजनवन में)—

भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा।
अवश्यरक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने ॥ ५२, ९४ ॥

अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् ॥ ५२, ९५ ॥

अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥ ५२, ९६ ॥

श्रीराम को वन में शोक संतप्त होते देखकर लक्ष्मण ने उन्हें रोका और कहा कि, जल से बाहर निकाल देने पर जैसे मछलियाँ जी नहीं पातीं वैसे ही मैं और सीता आपके बिना जी नहीं सकते—

नैतदौपयिकं राम यदिदं परितप्यसे।
विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ ॥ ५३, ३० ॥

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥ ५३, ३१ ॥

लक्ष्मण की बात से श्रीराम को सान्त्वना मिली—

स लक्ष्मणस्योत्तमपुष्कलं वचो निशम्य चैवं वनवासमादरात्।
समाः समस्ता विदधे परंतपः प्रपद्य धर्मं सुचिराय राघवः ॥ ५३, ३४ ॥

रात में वहाँ एक पेड़ के वे नीचे सोये। प्रभात में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ गंगा, यमुना से मिलती हैं। अर्थात् तीर्थराज प्रयाग आ गये—

ते तु तस्मिन् महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद् देशात् प्रतस्थिरे ॥ ५४, १०॥

यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥ ५४, २॥

प्रयाग पहुँचकर उनका महात्मा भारद्वाज के आश्रम में प्रवेश और अभिवादनानन्तर श्रीराम ने अपने तीनों का उनसे परिचय देते हुए बन आने का कारण बताया—

स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम्।
संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ॥ ५४, ११॥

हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत् ॥ ५४, १२॥

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः।
पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन् रामलक्ष्मणौ ॥ ५४, १३॥

भार्या ममेय कल्याणी वैदेही जनकात्मजा।
मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥ ५४, १४॥

पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः।
अयमन्वगमद् भ्राता वनमेव धृतव्रतः ॥ ५४, १५॥

मुनि ने यथायोग्य स्वागत कर उन्हें अपने आश्रम में ही कालयापन करने की सलाह दी—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः ॥ ५४, १७॥
मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः।
राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः ॥ ५४, १९॥

प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्।
भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मयुक्तमिदं वचः ॥ ५४, २०॥

चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्याम्यहमुपागतम्।
श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥ ५४, २१॥
अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम् ॥ ५४, २२॥

इस पर श्रीराम ने उनसे विनीत भाव से कहा-"यहां जनपद से लोग आते जाते रहेंगे, अतः कोई ऐसा एकान्तस्थान बताया जाय जहाँ सीता का भी मन रम सके—

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥ ५४, २४ ॥

आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥ ५४, २५ ॥

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥ ५४, २६ ॥

यहां से दश कोश पर महर्षियों से सेवित एक पर्वत है, वहाँ आप रहेंगे ऐसा भरद्वाज जी का उत्तर सुनकर रात में वहीं उन्होंने निवास किया—

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् विवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥ ५४, २८ ॥

तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः।
प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतः कथाः ॥ ५४, ३४ ॥

प्रभात में उठ कर मुनि से चलने की आज्ञा माँगी—

शर्वरीं भगवन्नद्य सत्यशील तवाश्रमे।
उषिताः स्मेह वसतिमनुजानातु नो भवान् ॥ ५४, ३७ ॥

मुनि ने उनका स्वस्त्ययन कर उन्हें विदा किया—

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह।
प्रस्थितान् प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ५५, २ ॥

लकड़ी का बेड़ा बनाकर उन्होंने यमुना को पार किया और आगे चलकर श्यामवटवृक्ष के पास पहुँचे--

तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम् ॥ ५५, १३ ॥
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाः सुखमासनम् ॥ ५५, १५ ॥

ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात्।
श्यामन्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम् ॥ ५५, २३ ॥

जंगल में यमुना तट के पास ही रात बितायी—

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने वारणवानरायुते।
समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः॥ ५५ ३३ ॥

चित्रकूट के लिये प्रस्थान--

तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।
पन्थानमृषिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ ५६, ४ ॥

अनेक प्रकार के पक्षियों एवं मूल फलों से युक्त सवेरे चित्रकूट के लिए प्रस्थान तथा सबों का चित्रकूट में पहुँचना—

तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम् ।
बहुमूलफलं रम्यं सम्पन्नं सरसोदकम् ॥ ५६, १३ ॥

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश कर तीनों ने ऋषि का अभिवादन किया और उन्होंने भी यथोचित उनका स्वागत किया—

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ॥ ५६, १६ ॥
तान् महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ।
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं ते निवेद्य च ॥ ५६, १७ ॥

तब वहाँ श्रीराम ने लक्ष्मण को एक लकड़ी की कुटी बनाने को कहा—

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥ ५६, १८ ॥
"लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च ।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥ ५६, १९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः ॥ ५६, २० ॥

पर्णशाला कुटी बन गई और श्रीराम नित्यकृत्य (सन्ध्या जप, देवपूजन बलिवैश्वदेव) कर मंत्रों द्वारा स्थान को रहने योग्य बनाये—

रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः ।
संग्रहेणाकरोत् सर्वान् मन्त्रान् सत्रावसानिकान् ॥ ५६, २९ ॥
दृष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ।
बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः ॥ ५६, ३० ॥
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च ।
वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन् ॥ ५६, ३१ ॥

चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य से श्रीराम की प्रसन्नता—

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् ।

ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासम् ॥ ५६, ३५ ॥

उधर सुमन्त्र ने श्रीराम से विदा लेकर गुह से भी विदा लिया और अयोध्या को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उसे आनन्दरहित देखा—

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान्।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः ॥ ५७, ३ ॥

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥ ५७, ५ ॥

निस्तब्ध, शोक से दग्ध अयोध्या को देख कर सुमन्त्र शोचने लगे—

स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः।
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः ॥ ५७, ६ ॥

"कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा।
रामसंतापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी" ॥ ५७, ७ ॥

राजभवन में प्रवेश कर सुमन्त्र ने राजा को प्रणाम किया और संदेश सुनाया—

अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥ ५७, २५ ॥

समाचार सुन कर राजा मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़े—

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः।
मूर्च्छितो न्यपतद् भूमौ रामशोकाभिपीडितः ॥ ५७, २६ ॥

कौसल्या ने सचेत होने पर उनसे कहा, 'देव! जिस कैकेयी के डर से आप सूत से बातें भी नहीं कर रहे हैं, वह यहाँ नहीं है, आप छूट कर बातें करें'—

सुमित्रायास्तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५७, २८ ॥

इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥ ५७, २९ ॥

देव यस्या भयात् रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम्" ॥ ५७, ३१ ॥

राजा से ऐसा कह कर वह स्वयं पृथ्वी पर बेहोश हो गिर गई—

सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥ ५७, ३२ ॥

फिर तो अन्तःपुर में क्रन्दन का कोलाहल ही गूँज उठा—

ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समन्ततः पुरं तदासीत् पुनरेव संकुलम् ॥ ५७, ३४॥

राजा के पूछने पर सुमन्त्र ने श्रीराम का पूरा संदेश सुनाना आरंभ किया:—

अब्रवोन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥ ५८, १४ ॥
'सूत ! मद्वचनात् तस्य तातस्य विदितात्मनः ।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥ ५८, १५ ॥
माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ॥ ५८, १७ ॥
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय ॥ ५८, १८ ॥
भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥ ५८, २१ ॥
पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय ॥ ५८, २२ ॥

महाराज दशरथ के प्रति लक्ष्मण की आक्रोश भरी उलाहना और पितृत्वादि सारा आप्त सम्बन्ध श्रीराम में ही निहित मानना, राजा दशरथ में नहीं—

असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवम् ।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥ ५८, ३० ॥
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥ ५८, ३१ ॥

श्रीराम और सीता की दशा का वर्णन—

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः ।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी निरीक्षते राजरथं तथैव माम् ॥५८, ३७॥

सूत की बात सुनकर राजा का अपने पूर्व अप-कृत्यों पर घोर पश्चात्ताप—

सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया ।
बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५९, १७ ॥
कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया ।
मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम् ॥ ५९, १८ ॥

न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा सनैगमैः।
मयायमर्थः सम्मोहात् स्त्रीहेतोः सहसा कृतः ॥ ५९, १९ ॥

राजा का सूत से निवेदन करना कि वह उन्हें शीघ्र श्रीराम के पास पहुँचा दे-

सूत यद्यस्ति ते किंचिन्मयापि सुकृतं कृतम्।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः संत्वरयन्ति माम् ॥ ५९, २१ ॥

राजा का विलाप—

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ॥ ५९, २७ ॥

आर्तस्वर में उन्होंने कौसल्या अपने से शोक को दुस्तर बताया—

यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं बिना।
दुस्तरो जीविता देवि मयायं शोकसागरः ॥ ५९, ३२ ॥

विलाप करते हुए राजा का मूर्च्छित हो जाना और कौसल्या का भय द्विगुण बढ़ जाना—

इति विलपति पार्थिवे प्रणष्टे करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवि भयमगमत् पुनरेव राममाता ॥ ५९, ३४ ॥

कौसल्या को दुःखमग्न देख सुमन्त्र ने उन्हें उन सबों के सकुशल रहने का आश्वासन दिया—

त्यज शोकं च मोहं च सम्भ्रमं दुःखजं तथा।
व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः ॥ ६०, ५ ॥

विजनेऽपि वने सीता वासं प्राप्य गृहेष्विव।
विस्रम्भं लभतेऽभीता रामे विन्यस्तमानसा ॥ ६०, ७ ॥

राम वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी।
अयोध्याक्रोशमात्रे तु विहारमिव साश्रिता ॥ ६०, ११ ॥

अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ ।
अद्यापि चरणौ तस्याः पद्मकोशसमप्रभौ ॥ ६०, १८ ॥

विधूय शोकं परिहृष्टमानसा महर्षियाते पथि सुव्यवस्थिताः।
वने रता वन्यफलाशनाः पितुः शुभां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ति ते ॥६०, २२॥

शोकाभिभूत होने के कारण कौसल्या ने रोती हुई, राजा से लम्बा उपालम्भन सुनाया—

यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः॥ ६१, २॥
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया।
दुःखितौ सुखसंवृद्धौ वने दुःखं सहिष्यतः॥ ६१, ३॥
सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते॥ ६१, ४॥
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः।
अपश्यन्त्या न तं यद् वै फलतीदं सहस्रधा॥ ६१, ९॥
भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित् स्वानेव बान्धवान्।
ततः पश्चात् समीक्षन्ते कृतकार्यो द्विजोत्तमान्॥ ६१, १२॥
तत्र ते गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः।
न पश्चात् तेऽभिमन्यन्ते सुधामपि सुरोपमाः॥ ६१, १३॥
ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छेदमिवर्षभाः॥ ६१, १४॥
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।
भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥ ६१, १५॥
न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते॥ ६१, १६॥
हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः।
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे॥ ६१, १७॥
नैतस्य सहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे।
अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत्॥ ६१, २०॥
स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः।
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा॥ ६१, २२॥
द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनः।
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते॥ ६१, २३॥
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥ ६१, २४॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥ ६१, २५॥

हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ॥ ६१, २६॥

उपालम्भन सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये, फिर अपने दुष्कर्मों को याद करने लगे—

इमां गिरं दारुणशब्दसंहितां निशम्य रामेति मुमोह दुःखितः।
ततः सशोकं प्रविवेश पार्थिवः स्वदुष्कृतं चापि पुनस्तथास्मरन्॥६१,२७॥

दयाशीला कौसल्या को प्रसन्न करने के लिये राजा ने उससे हाथ जोड़ कर माँफी माँगी—

दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः॥ ६२, ६॥

प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि॥ ६२, ७॥

भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान् निर्गुणोऽपि वा।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम्॥ ६२, ८॥

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा।
नार्हसे विप्रियं वक्तु दुःखितापि सुदुःखितम्॥ ६२, ९॥

राजा की बात सुनकर कौसल्या को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो आया और उनसे क्षमा माँगी। उसने स्वीकार किया कि पुत्रशोक के कारण उसे कर्तव्य का ज्ञान लोप हो गया था—

तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम्।
कौसल्या व्यसृजद् बाष्पं प्रणालीव नवोदकम्॥ ६२, १०॥

सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम्।
सम्भ्रमादब्रवीत् त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः॥ ६२, ११॥

प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया॥ ६२, १२॥

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता।
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या सम्प्रसाद्यते॥ ६२, १३॥

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः॥ ६२, १५॥

शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः।
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते॥ ६२, १६॥

कौसल्या की बात से राजा का संतोष हुआ—

अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः ।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्रया वशमेयिवान् ॥ ६२, २० ॥

शोकार्ता कौसल्या से शोकार्त राजा ने अपने बीते दुष्कर्म का फल ही, इस घटना का स्रोत बताया—

स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः ।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६३, ५ ॥

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम् ।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥ ६३, ६ ॥

गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम् ।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ॥ ६३, ७ ॥

कश्चिदाम्रवनं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति ।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे ॥ ६३, ८ ॥

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति ।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः ॥ ६३, ९ ॥

सोऽहमाम्रवनं छित्वा पलाशांश्च न्यषेचयम् ।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः ॥ ६३, १० ॥

श्रवणकुमार के माता-पिता के श्राप का ही फल घटित हुआ है—

त्वयापि च यदज्ञानान्निहतो मे स बालकः ।
तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम् ॥ ६४, ५३ ॥

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम् ।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं गमिष्यसि ॥ ६४, ५४ ॥

त्वामप्येतादृशो भाव क्षिप्रमेव गमिष्यति ।
जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणा ॥ ६४, ५६ ॥

एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु ।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥ ६४, ५७ ॥

कौसल्या से राजा ने कहा, मैं ने वैसा नहीं किया जैसा मुझे करना चाहिये था और श्रीराम ने जैसा किया वह उसी से हो सकता था'—

न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ।
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ॥ ६४, ६३ ॥

दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद् भुवि विचक्षणः।
कश्च प्रव्राज्यमानो वा नासूयेत् पितरं सुतः॥ ६४, ६४॥

फिर शोकाभिभूत होने के कारण कौसल्या से यों कहा --

"चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते।
दूता वैवस्वतस्यैते कौसल्ये त्वरयन्ति माम्॥ ६४, ६५॥

हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हाद्य क्वासि गतः सुत॥ ६४, ७५॥

हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि"॥ ६४, ७६॥

इस प्रकार शोचते हुए कौसल्या तथा सुमित्रा के निकट ही राजा ने प्राण त्यागे (राम राम कहते हुए)—

इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत्॥ ६४, ७७॥

तथा तु दीनः कथयन् नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः।
गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः॥६४, ७८॥

रानियों का विलाप—

अतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभं यशस्विनं तं परिवार्य पत्नयः।
भृशं रुदत्यः करुणं सुदुःखिताः प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत्॥ ६५,२९॥

'राजा की मृत्यु के कारण शून्य राज्यसिंहासन पर किसी इक्ष्वाककुलोद्भव व्यक्तिको बैठा दिया जाय' यह विचार मार्कण्डेयादि मुनियों का था, और उन्होंने वसिष्ठ जी की अनुमति माँगी--

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद् राजा विधीयताम्।
अराजके हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्॥ ६७, ८॥

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित्।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥ ६७, ३१॥

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः॥ ६७, ३३॥

राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्॥ ६७, ३४॥

चूंकि भरत जी मनोनीत राज्याधिकारी थे इसलिये वसिष्ठ जीने ननिहाल से भरत, शत्रुघ्न को बुलवाने का आदेश दिया—

यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः॥ ६८, २॥
तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम्॥ ६८, ३॥

दूतों का भरत के ननिहाल पहुँचना—

भर्तुः प्रियार्थं कुलरक्षणार्थं भर्तुश्च वंशस्य परिग्रहार्थम्।
अहेडमानास्त्वरया स्म दूता रात्र्यां तु ते तत्पुरमेव याताः॥६८, २२॥

भरत को संवाद देना—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया॥ ७०, ३॥

भरत को नाना की आज्ञा माँगना—

राजन् पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि॥ ७०, १५॥

भरत को नाना की आज्ञा मिलना—

गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप॥ ७०, १७॥

भरत का अयोध्या पहुँचना, पहुँचने में सात रातें लगीं—

अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह।
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि॥ ७१ १८॥

भरत ने अपने घर में प्रवेश कर अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया—

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ॥ ७२,३॥

पिता को न देख उनके विषय में पूछने पर कैकेयी ने भरत को उनकी मृत्यु का समाचार दिया—

या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गत।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः॥ ७२, १५॥

पिता की मृत्यु समाचार से व्यथित भरत ने अपने बड़े भाई श्रीराम के विषय में पूछताछ की—

योे मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ७२, ३२॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥ ७२, ३३॥

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः॥ ७२, ४०॥

कैकेयी ने कहा, "श्रीराम तो सीता और लक्ष्मण के साथ चीरधारण कर दण्डक बन चले गये"—

स तु राजसुतः पुत्रः चीरवासा महावनम्।
दण्डकान् सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः॥ ७२, ४२॥

सारी बातें जान लेने पर महात्मा भरत ने अपनी माता कैकेयी को अनेकों प्रकार से भत्सना करते हुए कहा कि, तुम अग्नि में प्रवेश करके या गले में फाँसी लगाकर इस दुष्कर्म का प्रायश्चित करो—

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च॥ ७३, २॥

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसिनि॥ ७३, ५॥

न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत् सदा॥ ७३, १८॥

भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात्।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम्॥ ७४, ४॥

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि॥ ७४, ७॥

अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते।
तस्मात् प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः॥ ७४, १४॥

सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान्।
रज्जुं बद्ध्वाथ वा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम्॥ ७४, ३३॥

उपर्युक्त भर्त्सना करते हुए भरत जी का मूच्छित हो जाना—

इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः।
पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः॥ ७४, ३५॥

संरक्तनेत्रः शिथिलाम्बरस्तथा विधूतसर्वाभरणः परंतपः।
बभूव भूमौ पतितो नृपात्मजः शचीपतेः केतुरिवोत्सवक्षये॥७४, ३६॥

भरत से मिलने पर कौसल्या ने दुःखित होकर कहा—"भरत धनधान्यपूर्ण अकण्टक राज्य तुम्हारी क्रूरकर्मा मां के द्वारा तो तुम्हें मिल गया न ?"

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥ ७५, ११॥

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी॥ ७५, १२॥

इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम्।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया॥ ७५, १६॥

कौसल्या के परोक्ष व्यङ्ग्य से आहत हो उन्होंने शपथ खायी और अपने को निरपराध बताया—

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम्।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे॥ ७५, २०॥

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः।
गुरूंश्चाप्यवजानन्तु यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ७५, ३०॥

माऽऽत्मनः संततिं द्राक्षीत् स्वेषु दारेषु दुःखितः।
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ७५, ३६॥

उभे संध्ये शयानस्य यत् पापं परिकल्प्यते।
तच्च पापं भवेत् तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ७५, ४४॥

यदग्निदायके पापं यत् पापं गुरुतल्पगे।
मित्रद्रोहे च यत् पापं तत् पापं प्रतिपद्यताम्॥ ७५, ४५॥

धर्मदारान् परित्यज्य परदारान् निषेवताम्।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ ७५, ५५॥

एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह।
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः॥ ७५, ६२॥

फिर कौसल्या ने उन को सहृदयता और श्रीराम के प्रति अविरल प्रीति की प्रशंसा की—

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सह लक्ष्मणः।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि॥ ७५, ६२॥

इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता॥ ७५, ६३॥

लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रणष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसितस्य दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः॥७५, ६५॥

वसिष्ठजी के आदेशानुसार राजा की श्राद्धक्रिया भरत ने सम्पन्न की—

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्॥ ७६, ३॥

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः।
द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्॥ ७७, १॥

मुनि वसिष्ठ ने भरत को उपदेश दिया—

त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे॥ ७७, २२॥

त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि॥ ७७, २३॥

श्रीराम की वनगमनघटना को बलप्रयोग द्वारा लक्ष्मण क्यों नहीं बचाये—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्॥ ७८, २॥

बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥ ७८, ३॥

क्रोधाभिभूत शत्रुघ्न कुब्जा को देखकर उसे दण्ड देने लगे। कैकेयी ने छुड़ाना चाहा। शत्रुघ्न ने उन्हें भी डाँटा। तब वह डर कर भरत की शरण में गई—

स बली बलवत् क्रोधाद् गृहीत्वा पुरुषर्षभः।
कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः॥ ७८, १९॥

तैर्वाक्यैः परुषैर्दुःखैः कैकेयी भृशदुःखिता।
शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता॥ ७८, २०॥

दयालु भरत ने शत्रुघ्न से कहा, नारी अवध्या होती है। इसे मत मारो। मैं भी कैकेयी को मार डालना चाहता था, किन्तु श्रीराम मातृहन्ता समझ कर कभी भी मुझ से बातें नहीं करेंगे। कुब्जा के मारे जाने की बात जान कर भी वह कभी भी हम से नहीं बोलेंगे—

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ॥ ७८, २१ ॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥ ७८, २२ ॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ॥ ७८,२३ ॥

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञां समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपां क्रौञ्चीं विलग्नामिव वीक्षमाणाम् ॥७८, २६॥

मन्त्रियों ने भरत से आग्रह किया कि वह अभिषिक्त होकर राज्य ग्रहण करें—

गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः।
रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ७९, २ ॥
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः।
संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥ ७९, ३ ॥
राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम्।
अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान् नरर्षभ ॥ ७९, ५ ॥

राज लेना भरत ने अस्वीकार किया। "भरत ने अभिषेचनीय द्रव्यादि के साथ, सेना लेकर, बन जाने को उद्यत हुए और वहीं राज्य देकर राम का लौटा लाने का भी संकल्प किया"—

अभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम्।
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥ ७९, ६ ॥
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥ ७९, ७ ॥
रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥ ७९, ८ ॥
युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥ ७९, ९ ॥

आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् ।
पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥ ७९, १० ॥

तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम् ।
आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ॥ ७९, ११ ॥

आगन्तुक प्रजावर्ग ने भरत की भूरि भूरि प्रशंसा की—

एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम् ।
यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥ ७९, १५ ॥

प्रजा की बात सुनकर भरत को अतीव हर्ष हुआ—

अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजः प्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च ।
प्रहर्षजास्तं प्रतिबाष्पबिन्दवो निपेतुरार्याननेत्रसम्भवाः ॥७९, १६॥

वसिष्ठ ने भरत को अपने को अभिषिक्त कराने को कहा और उसका औचित्य बताया—

तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन् ।
धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ॥ ८२, ५ ॥

रामस्तथा सत्यवृत्तिः सतां धर्ममनुस्मरन् ।
नाजहात् पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः ॥ ८२, ६ ॥

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम् ।
तद् भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय ॥ ८२, ७ ॥

वसिष्ठ जी की बात सुन कर भरत ने इस प्रकार न्यायसंगत उत्तर दिया कि बड़े के रहते छोटा भाई राज्य का अधिकारी हो ही नहीं सकता, इसलिये तो मैं उन्हें लौटा लाऊँगा या मैं भी वनवास ही करूँगा—

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः ।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत् ॥ ८२, ११ ॥

कथं दशरथाज्जातो भवेद् राज्यापहारकः ।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ॥ ८२, १२ ॥

ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोपमः ।
लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा ॥ ८२, १३ ॥

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि ।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः ॥ ८२, १४ ॥

राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति ॥ ८२, १६ ॥

यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात्।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा ॥ ८२, १८ ॥

सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं वनात्।
समक्षमार्यमिश्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम् ॥ ८२, १९ ॥

बनयात्रा की तैयारी करने के हेतु सुमन्त्र को भरत का आदेश—

तूर्णमुत्थाय गच्छ त्वं सुमन्त्र मम शासनात्।
यात्रामाज्ञापय क्षिप्रं बल चैव समानय ॥ ८२, २२ ॥

भरतने सेनाको सज्जित देखा और फिर सुमन्त्र से राम को लाने चलने कहा—

सज्जं तु तद्बलं दृष्ट्वा भरतो गुरुसंनिधौ।
रथं मे त्वरयस्वेति सुमन्त्रं पार्श्वतोऽब्रवीत् ॥ ८२, २७ ॥

तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान्।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थं प्रसाद्य रामं जगतो हिताय ॥८२, ३०॥

भरत की बनयात्रा (प्रस्थान)—

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम्।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया ॥ ८३, १ ॥
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः।
अधिरुह्य हयैर्युक्तान् रथान् सूर्यरथोपमान् ॥ ८३, २ ॥
कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी।
रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥ ८३, ६ ॥
ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः।

शृङ्गवेरपुर पहुँच कर रात में वहीं पड़ाव डालना—

समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥ ८३, १९ ॥
निवेश्य गङ्गामनु तां महानदीं चमूं विधानैः परिबर्हशोभिनीम्।
उवास रामस्य तदा महात्मनो विचिन्तयानो भरतो निवर्तनम् ।८३, २६।

स्वयं भरत को और उनकी विशाल सेना को देख निषाद राज, गुह को दुःशङ्का हुई—

महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते।
नास्यान्तमवगच्छामि मनसापि विचिन्तयन् ॥ ८४, २ ॥

यदा नु खलु दुर्बुद्धिर्भरतः स्वयमागतः।
स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे॥ ८४, ३॥

बन्धयिष्यति वा पाशैरथवास्मान् वधिष्यति।
अथ दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद् विवासितम्॥ ८४, ४॥

गुहने अपने ज्ञाति वर्ग को सजग होकर तैयार रहने को चेतावनी दी—"यदि भरत की भावना पवित्र होगी तभी वह गंगा पार करेंगे"—

भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत॥ ८४, ६॥

तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गङ्गामन्वाश्रिता नदीम्।
बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः॥ ८४, ७॥

यदा तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति।
सेयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति॥ ८४, ९॥

भरत का भाव जानने के लिये गुहराज भेंट के साथ मिलने के लिये भरत के पड़ाव पर गये। सुमन्त्र ने उसका परिचय दिया और कहा कि यह राम का सखा है—

इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च।
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः॥ ८४, १०॥

तमायान्तं तु सम्प्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान्।
भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत्।

एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः।
कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रातुश्च ते सखा॥ ८४, १२॥

तस्मात् पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः।
असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ॥ ८४, १३॥

सुमन्त्र की बात सुन भरत ने गुह को बुलाया और गुह ने विनीतभाव से भरत से शिष्टवार्ता की—

लब्ध्वानुज्ञां सम्प्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः।
आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत्॥ ८४, १५॥

निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम्।
निवेदयाम ते सर्वे स्वके दाशगृहे वस॥ ८४, १६॥

आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम्।
अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि॥ ८४, १८॥

भरत ने उसे श्रीराम सखा जानकर उसका समादर किया और अपनी कृतज्ञता प्रकट की—

ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ॥ ८५, २ ॥

भरत ने गुह से भरद्वाजाश्रम जाने की राह पूछी—

कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं यथा।
गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपदुरत्ययः ॥ ८५, ४ ॥

गुह ने भरत से अपनी शङ्का व्यक्त की—

दाशास्त्वानुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ॥ ८५, ६ ॥

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे' ॥ ८५, ७ ॥

भरत ने गुह से अपनी हार्दिकभाव व्यक्त कर दिया--सच्ची बातें बताईं—

मा भूत् स कालो यत् कष्टं न मां शङ्कितुमर्हति।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ॥ ८५, ९ ॥

तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ८५, १० ॥

यह सुनकर गुह ने कहा, "विना प्रयास राज्य प्राप्त कर के भी उसे त्याग देना आपसे ही हो सकता है" उसे बड़ा हर्ष हुआ—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥ ८५, १२ ॥

रात तो वहीं बिताई ! प्रभात में शत्रुघ्न से भरत ने कहा, "वीर ! गुहराज को बुलाओ। वे हमें गंगा पार करायेंगे--

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः।
कल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८९, १ ॥

शत्रुघ्नोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम्।
शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥ ८९, २ ॥

गुह ने आकर भरत से उनका कुशल पूछा—

कच्चित् सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम्।
कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनामयम् ॥ ८९, ५ ॥

भरत ने हाँ कहकर नाव प्रस्तुत करने को कहा—पार उतारने के लिए।

सुखा नः शर्वरी धीमन् पूजिताश्चापि ते वयम्।
गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः संतारयन्तु नः॥ ८९, ७॥

गुहने भरत की स्नेह युक्त आज्ञा मानकर अपने ज्ञातिवर्ग को बुलाया और सेना को पार करने को कहा—

ततो गुहः संत्वरितः श्रुत्वा भरतशासनम्।
प्रति प्रविश्य नगरं तं ज्ञातिजनमब्रवीत्॥ ८९, ८॥

उत्तिष्ठत प्रबुध्यध्वं भद्रमस्तु हि वः सदा।
नावः समुपकर्षध्वं तारयिष्यामि वाहिनीम्॥ ८९, ९॥

गुह के आदेश पर पाँच सौ नावें घाट पर लग गई—

ते तथोक्ताः समुत्थाय त्वरिता राजशासनात्।
पञ्च नावां शतान्येव समानिन्युः समन्ततः॥ ८९, १०॥

भरत ने गङ्गा पार कर मैत्रमुहूर्त में प्रयागवन की ओर प्रस्थान किया—

सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः संतारिता स्वयम्।
मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्॥ ८९, २१॥

प्रयाग पहुँच कर सेनादि को दूर ही टिकाकर पुरोहित के साथ भरत भरद्वाज जी के दर्शन को गये—

आश्वासयित्वा च चमूं महात्मा निवेशयित्वा च यथोपजोषम्।
द्रष्टुं भरद्वाजमृषिप्रवर्यमृत्विक्सदस्यैर्भरतः प्रतस्थे॥ ८९, २२॥

मन्त्रियों को भी आश्रमप्रवेशद्वार के बाहर ही छोड़ दिया—

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः॥ ९०, १॥

पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः।
वसानो वाससी क्षौमो पुरोधाय पुरोहितम्॥ ९०, २॥

ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम्॥ ९०, ३॥

वसिष्ठ जी को देखते ही भरद्वाज जी उठ खड़े हुए और शिष्यों से अर्घ्य लाने को कहा—

वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः।
संचचालासनात् तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन्॥ ९०, ४॥

अर्घ्यपाद्य के बाद उभयपक्ष द्वारा कुशल-समाचार पूछे गये—

ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात् फलानि च ।
आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ॥ ९०, ६ ॥
अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु ।
जानन् दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरेत् ॥ ९०, ७ ॥
वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् ।
शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥ ९०, ८ ॥

श्रीरामस्नेह के कारण मुनि ने भरत के सेनादि को देख कर पूछा, "तुम्हारे आने का क्या कारण है ? क्या तुम भाई लक्ष्मण सहित श्रीराम का अनिष्ट करना चाहते हो ?"

तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः ।
भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥ ९०, ९ ॥
किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः ।
कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि ।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च' ॥ ९०, १३ ॥

मुनि की शङ्का से भरत को बड़ा कष्ट हुआ और कहा, 'भगवन्' जब आपकी ही ऐसी धारणा है, तब तो मैं मारा ही गया । देव, मैं पूज्य श्रीरामको मनाने जा रहा हूँ—

हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते ।
मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि ॥ ९०, १५ ॥
अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः ।
प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम् ॥ ९०, १७ ॥
तं मामेवं गतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
शंस मे भगवन् रामः क्व सम्प्रति महीपतिः ॥ ९०, १८ ॥

वसिष्ठादि मुनियों ने भरत को निर्दोष बताया—मुनि ने स्वयं भी कहा कि उन्हें सारी बातें ज्ञात हैं, उन्होंने तो यूं ही उन्हें ऐसा पूछ दिया—

वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः ।
उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः ॥ ९०, १९ ॥
त्वय्यैतत् पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे ।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता" ॥ ९०, २० ॥

जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति'।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धनम् ॥ ९०, २१ ॥
जाने च रामं धर्मज्ञ ससीतं सहलक्ष्मणम्।
अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ॥ ९०, २२ ॥
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः।
एवं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥ ९०, २३ ॥

मुनि ने आतिथ्य हेतु भरत को निमन्त्रित किया—

कृतबुद्धिं निवासाय तत्रैव स मुनिस्तदा।
भरतं कैकयीपुत्रमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ॥ ९१, १ ॥

भरत ने कहा, "आप अर्घ्यपाद्यादि से तो आतिथ्य कर ही चुके हैं"—

अब्रवीद् भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम्।
पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यं वने यदुपपद्यते ॥ ९१, २ ॥

मुनि ने कहा, "तुम तो जिस किसी चीज से सन्तुष्ट हो जाओगे, मैं तुम्हारा सेना को खिलाना चाहता हूं"—

अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव।
जाने त्वां प्रीतिसंयुक्तं तुष्येस्त्वं येन केनचित् ॥ ९१, ३ ॥
सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम्।
मम प्रीतिर्यथारूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ॥ ९१, ४ ॥

फिर भरत से कहा, "सेनादि को क्यों पीछे छोड़ रखा है ?

किमर्थं चापि निक्षिप्य दूरे बलमिहागतः ॥ ९१, ५ ॥

भरत ने जवाब दिया —

राज्ञा हि भगवन् नित्यं राजपुत्रेण वा तथा।
यत्नतः परिहर्तव्या विषयेषु तपस्विनः ॥ ९१, ७ ॥

आतिथ्य के लिये मुनि ने दिव्य शक्तियों का आवाहन किया—

अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापः परिमृज्य च।
आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥ ९१, ११ ॥

दिव्य सत्कार से सत्कृत भरत के अनुयायीगण आनन्दविभोर हो गये। ऐसे पदार्थों की प्राप्ति कभी पहले उन्हें हुई ही न थी, वे सबके सब चकित थे—

तर्पिताः सर्वकामैश्च रक्तचन्दनरूषिताः।
अप्सरोगणसयुक्ताः सैन्या वाचमुदीरयन् ॥ ९१, ५८ ॥

नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान् ।
कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु यथासुखम् ।। ९१. ५९ ।।

संप्रहृष्टा विनेदुस्ते नरास्तत्र सहस्रशः ।
भरतस्यानुयातारः स्वर्गोऽयमिति चाब्रुवन ।। ९१, ६१ ।।

ततो भुक्तवतां तेषां तदन्नममृतोपमम् ।
दिव्यानुद्वीक्ष्य भक्ष्यांस्तानभवद् भक्षणे मतिः ।। ९१, ६३ ।।

आश्रम में रात्रि बिताने पर प्रातः मुनि से भरत ने भेंट की और हाथ जोड़कर कहा—

ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः ।
कृतातिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह ।। ९२, १ ।।

मुनि ने भरत से पूछा, "क्या तुम्हारे लोग आतिथ्य की प्रशंसा करते थे? क्या तुम्हारी रात सुख से कटी ?"

तमृषिः पुरुषव्याघ्रं प्रेक्ष्य प्राञ्जलिमागतम् ।
हुताग्निहोत्रो भरतं भरद्वाजोऽभ्यभाषत ।। ९२, २ ।।
'कच्चिदत्र सुखा रात्रिस्तवास्मद्विषये गता ।
समग्रस्ते जनः कच्चिदातिथ्ये 'शंस मेऽनघ' ।। ९२, ३ ।।

तब भरत ने सब कुछ कह चित्रकूट की राह पूछी, और दूरी भी—

सुखोषितोऽस्मि भगवन् समग्रबलवाहनः ।
तर्पितः सर्वकामैश्च सामात्यो भगवंस्त्वया ।। ९२, ४ ।।
आमन्त्रयेऽहं भगवन् कामं त्वामृषिसत्तम ।
समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ।। ९२, ७ ।।
आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः ।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे ।। ९२, ८ ।।

मुनि ने भरत को गन्तव्यस्थान का पता बता दिया—

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने ।
चित्रकूटगिरिस्तत्र रम्यनिर्झरकाननः ।। ९२, १० ।।
उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी ।
पुष्पितद्रुमसंछन्ना रम्यपुष्पितकानना ।। ९२, ११ ।।
अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटं च पर्वतम् ।
तयोः पर्णकुटी तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम् ।। ९२, १२ ।।

मुनि ने भरत से कहा, "भरत ! राम के वनगमन पर किसी को दोषी नहीं मानना। इसका सुन्दर सुखमय परिणाम होगा"—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति ॥ ९२, ३० ॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ॥ ९२, ३१ ॥

मुनि की आज्ञा ले और उनकी प्रदक्षिणा कर भरत ने सेना को आगे चलने की तैयारी की—

अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम्।
आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ॥ ९२, ३२ ॥

चित्रकूट पहुँचने पर सेना को नीचे ही ठहरा दिया और आप सुमन्त्र एवं धृति के साथ आगे पैदल बढ़े—

यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो धृतिरेव च ॥ ९३, २५ ॥

सेना तो ठहर गई, पर भरत उसी ओर बढ़े जहाँ ऊपर धुआँ उठ रहा था—

एवमुक्तास्ततः सैन्यास्तत्र तस्थुः समन्ततः।
भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधे ॥ ९३, २६ ॥

वहाँ ठहरायी गई सेना को विश्वास हो गया था कि श्रीराम का समागम होगा, अतः वह प्रसन्न थी—

व्यवस्थिता या भरतेन सा चमूर्निरीक्षमाणापि च भूमिमग्रतः।
बभूव हृष्टा नचिरेण जानती प्रियस्य रामस्य समागमं तदा ॥९३, २७॥

इसी बीच श्रीराम ने पशुओं को घबराकर भागते हुए देखा और कारण जानने के लिए लक्ष्मण को प्रेरित किया—

एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाद् दुद्रुवुर्भृशम् ॥ ९६, ४ ॥
स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः।
तांश्च विप्रद्रुतान् सर्वान् यूथपानन्ववैक्षत ॥ ९६, ५ ॥

लक्ष्मण ने 'कोविदार' चिह्नाङ्कित ध्वज को देखकर कहा "यह तो अयोध्या का ध्वज है। तो क्या भरत हमें वश में करने को आया है?" फिर क्या था? लक्ष्मण फट पड़े—

स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम् ।
प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत ॥ ९६, ११ ॥

उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम् ।
गजाश्वरथसम्बाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥ ९६, १२ ॥

अपि नौ वशमागच्छेत् कोविदारध्वजो रणे ।
अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत् कृते व्यसनं महत् ॥ ९६, २१ ॥

त्वया राघव सम्प्राप्तं सीतया च मया तथा ।
यन्निमित्तं भवान् राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात् ॥ ९६, २२ ॥

पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते ।
पूर्वापकारी भरतस्त्यागेऽधर्मश्च राघव ॥ ९६, २४ ॥

कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम् ।
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम् ॥ ९६, २६ ॥

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन् महावने ।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ॥ ९६, ३० ॥

लक्ष्मण को कई युक्तियों द्वारा श्रीराम ने शान्त किया और कहा, "भाई को अनिष्ट कर मैं सुख भोगना नहीं चाहता, उन्हीं के लिये अर्थसंग्रह चाहता हूँ—"

पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे ।
किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण ॥ ९७, ३ ॥

यद्द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत् ।
नाहं तत् प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान् विषकृतानिव ॥ ९७, ४ ॥

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ॥ ९७, ५ ॥

भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥ ९७, ६ ॥

नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा ।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥ ९७, ७ ॥

यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी ॥ ९७, ८ ॥

श्रीराम ने भरतागमन का अपना अनुमान लक्ष्मण को कह सुनाया—

श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् ।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥ ९७, ११ ॥

स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः ।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः ॥ ९७, १२ ॥

भरतजी के ऊपर लक्ष्मण के अनेक प्रकार के राज्यलोभ की शङ्का का समाधान श्रीराम ने तर्कपूर्ण दिया कि, वे किसी तरह सन्देह के पात्र नहीं हैं। यदि तुम ऐसा नहीं मानते हो तो उनसे मैं कहूँगा कि वे तुम्हें ही राज्य देवें। ऐसा सुन लक्ष्मण शान्त हो गये—

प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान् भरतो द्रष्टुमर्हति ।
अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥ ९७, १३ ॥

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् ।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद् विशङ्कसे ॥ ९७, १४ ॥

नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥ ९७, १५ ॥

कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि ।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात् सौमित्रे प्राणमात्मनः ॥ ९७, १६ ॥

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचः प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा "राज्यमस्मै प्रदीयताम्" ॥ ९७, १७ ॥

उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति "बाढमित्येव" मंस्यते ॥ ९७, १८ ॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण लज्जित हो गये—

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः ।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया । ९७, २० ॥

लज्जित लक्ष्मण को देख श्रीराम ने कहा, "मालूम पड़ता है, भरत हमें देखने को आये हैं"—

व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह ।
एष मन्ये महाबाहुरिहाऽस्मान् द्रष्टुमागतः ॥ ९७, २१ ॥

गुह के साथ भरत श्रीरामाश्रम देखने को आगे बढ़े—

स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।
गुहेन सार्धं त्वरितो जगाम पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा ॥ ९८, १० ॥

श्रीराम को देखकर भरत का मनःसंताप—

जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः ।
जनेन्द्रो निर्जनं प्राप्य धिङ् मे जन्म सजीवितम् ॥ ९९, १५ ॥

मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः ।
सर्वान् कामान् परित्यज्य वने वसति राघवः ॥ ९९, १६ ॥

दूर से ही भरत ने श्रीराम को तापसरूप में बैठा देखा—

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डल-धारिणम् ॥ ९९, २५ ॥

कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् ।
ददर्श राममासीनमभितः पावकोपमम् ॥ ९९, २६ ॥

श्रीराम की वह दशा देख भरत आर्तस्वर में विलाप करने लगे—

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमाञ्शोकमोहपरिप्लुतः ॥ ९९, २९ ॥

अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः कैकयीसुतः ।
दृष्ट्वैव विललापार्तो बाष्पसंदिग्धया गिरा ।
अशक्नुवन् धारयितुं धैर्यात् वचनमब्रवीत् ॥ ९९, ३० ॥

उन्होंने अपने मन में कहा "सभाभवन में अपने प्रजावर्ग से घिरे रहने वाले मेरे भैया यहाँ वन्य पशुओं से घिरे हैं"—

यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद् युक्त उपासितुम् ।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः ॥ ९९, ३१ ॥

इस प्रकार दुखी होकर कहते हुए भरत पृथ्वी पर गिर पड़े। 'आर्य' इतना ही मुँह से निकला, और कुछ भी नहीं बोला गया। शत्रुघ्न ने रोते हुए चरणवन्दना की। श्रीराम ने भी रोते हुए दोनों भाइयों का आलिङ्गन किया—

इत्येवं विलपन् दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः ।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन् ॥ ९९, ३७ ॥

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।
उक्त्वाऽऽर्येति' सकृद् दीनं पुनर्नोवाच किंचन ॥ ९९, ३८ ॥

बाष्पैः पिहितकण्ठश्च प्रेक्ष्य रामं यशस्विनम् ।
आर्येत्येवाभिसंक्रुश्य व्याहर्तुं नाशकत् ततः ॥ ९९, ३९ ॥

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् ।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत ॥ ९९, ४० ॥

फिर सुमन्त्र एवं गुह से मिलाप हुआ—

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव समीयतू राजसुतावरण्ये ।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च यथाम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ॥९९,४१॥

श्रीराम ने भरत को जटाचीरधारी रूप में देखा। उन्हें जमीन से उठाकर गले लगाया। और अङ्क में बिठा समाचार पूछने लगे, राजनीति सम्बन्धी बातें भी बताईं—

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा ॥ १००, १ ॥

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् ।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ॥ १००, २ ॥

क्व नु तेऽभूत् पिता तात यदरण्यं त्वमागतः ।
न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तुमर्हसि ॥ १००, ४ ॥

कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् ॥ १००, २२ ॥

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥ १००, २३ ॥

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥ १००, २४ ॥

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तातयोजिताः ॥ १००, २५ ॥

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्छुचीन् ।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु ॥ १००, २६ ॥

कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ॥ १००, २८ ॥

उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसंदूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते ॥ १००, २९ ॥

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे ॥ १००, ३२ ॥

कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयो भृताः ।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः ॥ १००, ३३ ॥

कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥ १००, ३५ ॥
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥ १००, ३६ ॥
कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः ।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते ॥ १००, ४७ ॥
व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ॥ १००, ५८ ॥
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ १००, ५९ ॥
कच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर ।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे ॥ १००, ६३ ॥
नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम् ॥ १००, ६५ ॥
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम् ।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम् ॥ १००, ६६ ॥
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ।
कच्चित् त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश ॥ १००, ६७ ॥
दश पञ्च चतुर्वर्गान् सप्तवर्गं च तत्त्वतः ।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव ॥ १००, ६८ ॥
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्वा षाड्गुण्यं दैवमानुषम् ।
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम् ॥ १००, ६९ ॥
यात्रा दण्डविधानं च द्वियोनो संधिविग्रहौ ।
कच्चिदेतान् महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे ॥ १००, ७० ॥
यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः प्रपितामहः ।
तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद् या च सत्पथगा शुभा ॥ १००, ७४ ॥
राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम् ।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १००, ७६ ॥

श्रीराम की बात सुनने के बाद भरतजी ने उनसे कहा कि बड़े भाई के रहते छोटे को राज्य का अधिकार नहीं है। आप लोगों के बन आने पर शोकाकुल पिता जी स्वर्ग चले गये। अब आप उनकी उदक क्रिया करें, हम दोनों भाई कर चुके हैं--

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह।
किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति ॥ १०१, १ ॥

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजा न कनीयान् भवेन्नृपः ॥ १०१, २ ॥

राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे सम्मतो मम।
यस्य धमार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम् ॥ १०१, ३ ॥

निष्क्रान्तमात्रे भवति सहसीते सलक्ष्मणे।
दुःखशोकाभिभूतस्तु राजा त्रिदिवमभ्यगात् ॥ १०१, ६ ॥

उत्तिष्ठ पुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकं पितुः।
अहं चायं च शत्रुघ्नः पूर्वमेव कृतोदकौ ॥ १०१, ७ ॥

पूज्य पिता जी के मृत्युसमाचार से श्रीराम वज्राहत से हो गये। बाद उन्होंने भाई के साथ मन्दाकिनी के किनारे पिता का श्राद्ध किया--

तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परंतपः ॥ १०२, २ ॥

किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः।
यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ॥ १०२, ९ ॥

ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युतीर्य स राघवः।
पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ॥ १०२, २८ ॥

वसिष्ठजी के साथ आती हुई मार्ग में माता कौसल्या तथा अन्य माताओं ने तीर पर श्रीराम द्वारा, पिता को दिये गये इंगुदी का पिण्ड देखकर पश्चाताप करती हुई इस श्रुतिवाक्य को सत्य समझा कि पुरुष स्वयं जिस अन्न का व्यवहार करता है, उसके देव पितर भी वही अन्न ग्रहण करते हैं—

वसिष्ठपुरतः कृत्वा दारान् दशरथस्य च।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः ॥ १०३, १ ॥

रामेणेङ्गुदिपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे।
कथं दुःखेन हृदयं न विस्फोटति सहस्रधा ॥ १०३, १४ ॥

श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥ १०३, १५ ॥

वे वहाँ से चलकर श्रीराम के आश्रम में पहुँची और बेटे को मुनिभेष में देख कर फूट फूट कर रोने लगीं—

इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः।
राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि ॥ १०३, १६ ॥
तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं सम्प्रेक्ष्य मातरः।
आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्षिताः ॥ १०३, १७ ॥

माताओं के अभिवादनानन्तर श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ का अभिवादन कर उनके ही साथ बैठ गये—

ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः ॥ १०३, २७ ॥
पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतेरिन्द्र इवामराधिपः।
प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥१०३, २८॥

अपने सुहृदों से घिरे श्रीराम सहित चारों भाई प्रज्वलित अग्नि के सम्मान सुशोभित हो रहे थे—

स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः।
वृताः सुहृद्भिश्च विरेजुरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ।१०३,३२।

श्रीराम ने भरत के आगमन का अभिप्राय पूछा—

किमेतदिच्छेयमहं श्रोतु प्रव्याहृतं त्वया।
यस्मात्त्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी ॥ १०४, २ ॥

भरतजी ने श्रीराम से कहा—पिताजी ने, 'मेरी माँ कैकेयी के वचन से बहुत बड़ा पाप किया। आप मेरे ऊपर तथा विधवा माताओं के ऊपर प्रसन्न हो आज ही अपना राज्याभिषेक स्वीकार करें—

आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ॥ १०४, ५ ॥
स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप।
चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम् ॥ १०४, ६ ॥
तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥ १०४, ८ ॥

इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १०४, ९ ॥

भरत के अनुनय पर श्रीराम का तर्कपूर्ण उत्तर उन्होंने कहा कि पूज्य माता-पिता के द्वारा हमारा वनवास तथा तुम्हें राजगद्दी पर बैठने का आदेश मिल चुका है। उनके द्वारा जैसा विभाजन कर दिया गया है, उसे पालन करना ही हम दोनों का कर्त्तव्य है--

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः॥ १०४, १६ ॥

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन।
न चापि जननीं बाल्यात् त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥ १०४, १७ ॥

यावत् पितरि धर्मज्ञे गौरवं लोकसत्कृते।
तावत् धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥ १०४, २१ ॥

एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां 'वनं गच्छेति' राघव।
मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत् समाचरे ॥ १०४, २२ ॥

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम्।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥ १०४, २३ ॥

एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ।
व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः॥ १०४, २४ ॥

स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव।
पित्रा दत्तं यथा भागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि ॥ १०४, २५ ॥

चतुर्दश समाः सौम्य दण्डकारण्यमाश्रितः।
उपभोक्ष्ये त्वहं दत्तं भागं पित्रा महात्मना ॥ १०४, २६ ॥

भरत जी ने राज्य चलाने में अपने को असमर्थ बताया—

गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्रिणः।
अनुगन्तु न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते ॥ १०५, ६ ॥

सुजीवं नित्यशक्तस्य यः परैरुपजीव्यते।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥ १०५, ७ ॥

शोकाभिभूत भरत को श्रीराम का शास्त्र एवं नीति सम्बन्धी अनेक दृष्टान्तों द्वारा सान्त्वना देना एवं सत्पथ का मार्ग निर्देश करना—

नात्मनः कामकारोऽस्ति पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥ १०५, १५ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवतम् ॥ १०५, १६ ॥
यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥ १०५, १७ ॥
यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति ।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः ॥ १०५, १८ ॥
अत्येति रजनी यातु सा न प्रतिनिवर्तते ।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥ १०५, १९ ॥
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥ १०५, २० ॥
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते ॥ १०५, २२ ॥
नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥ १०५, २४ ॥
हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नव नवमिवागतम् ।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः ॥ १०५, २५ ॥
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातं महार्णवे ।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥ १०५, २६ ॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विना भवः ॥ १०५, २७ ॥
नात्र कश्चिद् यथाभावं प्राणी समतिवर्तते ।
तेन तस्मिन् न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः ॥ १०५, २८ ॥
यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः ।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥ १०५, २९ ॥
एवं पूर्वगतो मार्गः पितृपैतामहो ध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ १०५, ३० ॥
वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥ १०५, ३१ ॥

पुनः श्रीराम ने भरत को पुण्यवान् पिता के लिए शोक न कर उनकी आज्ञा पालन करने के हेतु अयोध्या जाकर राज्य करने को कहा—

इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैर्भोगांश्चावाप्य पुष्कलान्।
उत्तमं चायुरासाद्य स्वर्गतः पृथिवीपतिः॥ १०५, ३५॥

स जीर्णमायुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम्॥ १०५, ३७॥

तं तु नैवं विधः कश्चित् प्राज्ञः शोचितुमर्हसि।
त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतवान् बुद्धिमत्तरः॥ १०५, ३८॥

स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम्।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर॥ १०५, ४०॥

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्॥ १०५, ४१॥

न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिन्दम।
स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता॥१०५, ४२॥

धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषिता॥ १०५, ४४॥

इतना कहकर श्रीराम चुप हो गये—

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा पितुर्निदेशप्रतिपालनार्थम्।
यवीयसं भ्रातरमर्थवच्च प्रभुर्मुहूर्ताद् विरराम रामः॥ १०५, ४६॥

भरत ने श्रीराम के सद्विचार के लिये भूरिभूरि प्रशंसा तो की किन्तु प्रार्थनारूप में अपनी विनती नहीं छोड़ी, पिता के दोषनिवारण के लिये भी उन्होंने आग्रह किया—

को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिन्दम॥ १०६, २॥

न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत्।
सम्मतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान॥ १०६, ३॥

यथा मृतस्तथा जीवन् यथासति तथा सति।
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात् परितप्येत केन सः॥ १०६, ४॥

परावरज्ञो यश्च स्याद् यथा त्वं मनुजाधिप।
स एव व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति॥ १०६, ५॥

को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किल्बिषम् ।
स्त्रियाः प्रियचिकीर्षुः सन् कुर्याद् धर्मज्ञ धर्मवित् ॥ १०६,१२॥
अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः ।
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता ॥ १०६, १३ ॥
साध्वर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् ।
तातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद् भवान् ॥ १०६, १४ ॥
पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते ।
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥ १०६, १५ ॥
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं वक्तुमिच्छसि ।
हीनबुद्धिर्गुणो बालो हीनस्थानेन चाप्यहम् ।
भवता च विनाभूतो न वर्तयितुमुत्सहे ॥ १०६, २४ ॥

श्रीराम को अपने को अभिषेक करा लेने का भी भरत का आग्रह हुआ, ऐसा नहीं करने पर उनके साथ ही भरत का वन चलने का विचार प्रकट करना—

इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः ॥ १०६, २६ ॥
शिरसा त्वभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि ।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥ १०६, ३१ ॥
अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ॥ १०६, ३२ ॥

भरत के अनेक आग्रह के बावजूद श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे—

तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्ववान् मतिं पितुस्तद् वचने प्रतिष्ठितः ॥१०६,३३॥

श्रीराम के इस दृढ़ विचार से सभी लोग हर्ष और विषाद दोनों से अभिभूत हो गये—

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः ।
न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत् स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ॥ १०६, ३४॥

माताएं तो आसूं बहाने लगीं किन्तु अन्य लोग श्रीराम की दृढ़ता पर प्रसन्न थे—

तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः।
तथाब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह॥ १०६, ३५॥

श्रीराम ने भरत को उनका सप्रमाण यौवराज्य के अनेक अन्य कारण भी बताये और आगे कहा कि तुम्हारी मां को पिता जी से देवासुरसंग्राम में दो वर मिले थे—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥ १०७, ३॥

देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
ततः सा सम्प्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी॥ १०६, ५॥

तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम्॥ १०७, ६॥

पिता को सत्यवादी बनाने के लिये भरत श्रीराम का अनुरोध—

भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषिञ्चनात्॥ १०७, ९॥

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं चापि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय॥ १०७, १०॥

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः॥ १०७, १२॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गयां व्रजेत्॥ १०७, १३॥

एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता रघुनन्दन।
तस्मात् त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात् प्रभो॥ १०७, १४॥

अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरञ्जय।
शत्रुघ्न सहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः॥ १०७, १५॥

प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन्।
आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च॥ १०७, १६॥

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम् ।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य सम्प्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान् प्रवेक्ष्ये॥१०७,१७॥

जाबालि ने श्रीराम को लौटाने के लिये नास्तिकबाद का प्रतिपादन किया और उन्हों ने भरत के दिए हुये राज्य को ग्रहण करने का औचित्य बताया—

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥ १०८, ३ ॥

पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम ।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥ १०८, ७ ॥

दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः ।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व संत्यज ॥ १०८, १६ ॥

स नास्ति परमित्येतत् कुरु बुद्धिं यथामते ।
प्रत्यक्षं तत् तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥ १०८, १७ ॥

सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकनिदर्शिनीम् ।
राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः ॥ १०८, १८ ॥

श्रीराम ने आवेशभाव में उपरोक्त बाद का प्रबल खण्डन किया, और सत्य की महत्ता बतायी—

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥ १०९, ३ ॥

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ॥ १०९, ४ ॥

अनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथाशुचिः ।
लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥ १०९, ५ ॥

अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम् ।
अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जितम् ॥ १०९, ६ ॥

कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः ।
बहुमन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥ १०९, ७ ॥

कामवृत्तोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते ।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥ १०९, ९ ॥

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥ १०९, १० ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम् ॥ १०९, ११ ॥

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मसत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥ १०९, १२ ॥

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥ १०९, १३ ॥

दत्तमिष्टं हुत चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत् ॥ १०९, १४ ॥

क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम्।
क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः ॥ १०९, २० ॥

कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्यतत्।
अनृतं जिह्वया चाहं त्रिविधं कर्म पातकम् ॥ १०९, २१ ॥

भूमिः कीर्त्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः ॥ १०९, २२ ॥

कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम्।
अग्निर्वायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः ॥ १०९, २८ ॥

शतक्रतूनामाहृत्य देवराट त्रिदिवं गतः।
तपांस्युग्राणि चास्थाय दिवं प्राप्ता महर्षयः ॥ १०९, २९ ॥

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥ १०९, ३१ ॥

श्रीरामने जाबालि मुनि से कहा कि, 'आप जैसे नास्तिक को मेरे पिताजी ने जो याजक बनाया था, इसके लिये मैं उन्हें निन्दा करता हूँ''—

निन्दाम्यहं कर्मकृतं पितुस्तद् यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥ ०९, ३३॥

यथा हि चौरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात् १०९,३४

त्वत्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः।
छित्त्वा सदेहं च परं च लोकं तस्माद् द्विजाः स्वस्तिकृतं हुतं च १०९,३५

धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ॥१०९, ३६॥

जाबालि ने अपने को आस्तिक ही बताया, केवल नास्तिक सी बातें कर राम को वन से लौटाने का प्रयत्न उन्हों ने किया था—

न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन ।
समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ।१०९, ३८।

स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता ।
निवर्तनार्थं तव राम कारणात् प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ॥१०९, ३९॥

वसिष्ठ ने जाबालि को आस्तिक होने का अनुमोदन किया, उन्होंने यह भी कहा कि इक्ष्वाकुवंश में सदासे बड़े भाई ही राजा बनते आये हैं । इस परंपरा को स्थिर रखें और अभिषिक्त हो राज्य करें । उन्होंने राज्य ग्रहण करने का औचित्य भी समझाया ।

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
जाबालिरपि जानीते लोकस्यास्य गतागतिम् ॥ ११०, १ ॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः ।
पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते ॥ ११०, ३६ ॥

स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः सनातनं नाद्य विहन्तुमर्हसि ।
प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीं प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशः ॥ ११०, ३७ ॥

पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा ।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव ॥ १११, २ ॥
पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते ॥ १११, ३ ॥
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप ।
मम त्वं वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥ १११, ४ ॥
इमा हि ते परिषदो ज्ञातयश्च नृपास्तथा ।
एषु तात चरन् धर्मं नातिवर्तेः सतांगतिम् ॥ १११, ५ ॥
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम् ।
अस्या हि वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम् ॥ १११, ६ ॥

भरतस्य वचः कुर्वन् याचमानस्य राघव।
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम ॥ १११, ७ ॥

गुरु के धर्मसंगत-वचन सुनकर राम ने दृढ़ता पूर्ण स्वरों में अपना दृढ़-संकल्प सुनाया कि पिता जी की आज्ञा अटल है—

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा।
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥ १११, ९ ॥

यथाशक्तिप्रदानेन स्वापनाच्छादनेन च।
नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च ॥ १११, १० ॥

स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम।
आज्ञापयन्मां यत् तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति ॥ १११, ११ ॥

भरत का श्रीराम को पुरी लौटने का इरादा न देख, वहीं अपना धरना देना और वहां स्वयं कुशास्तरण बिछाना--

इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे सम्प्रसीदति ॥ १११, १३ ॥

निराहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विज।
शये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति ॥ १११, १४ ॥

स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः।
कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्थितः स्वयम् ॥ १११, १५ ॥

श्रीराम ने कहा,—भरत ! तुम्हारा धरना देना असंगत और अवैध है। उठो और अयोध्या को प्रस्थान करो—

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हति।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥ १११, १७ ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल हित्वैतद् दारुणं व्रतम्।
पुरवर्यामितः क्षिप्रमयोध्यां याहि राघव ॥ १११, १९ ॥

भरत के अनुनय पर पुरवसियों का निर्णयात्मक विचार—

ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग् वदति राघवः ॥ १११, २० ॥

एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति।
अत एव न शक्ताः स्मो व्यर्तयितुमञ्जसा ॥ १११, २१ ॥

पुरवासियों की बात सुन श्रीराम ने भरत से कहा—"भरत उठो और मेरा तथा जल का स्पर्श करो—

तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत्।
एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम्॥
एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक् सम्पश्य राघव।
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम्॥ १११, २२॥

भरत ने श्रीराम की आज्ञा मान ली, किन्तु यह कहा कि यदि वन जायंगे ही तो मैं भी साथ चलूंगा—

अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत्।
श्रृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः श्रृणुयुस्तथा॥ १११ २४॥
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः॥ १११, २६॥
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत् पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा॥ १११, २८॥
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः।
युक्तयुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम्॥ १११, २९॥
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम्॥ १११, ३२॥

ऋषियों ने रावणादि सब दुष्टों के बध की बात याद कर भरत से कहा कि तुम श्रीराम की बातें मान लो—

ततस्त्वृषिगणा क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः॥ ११२, ४॥
कुलेजात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे॥ ११२, ५॥

इससे श्रीराम को सन्तोष हुआ—

ह्लादितस्तेन वाक्येन शुशुभे शुभदर्शनः।
रामः संहृष्टवदनांस्तानृषीनभ्य पूजयत्॥ ११२, ८॥

भरत ने श्रीराम के चरणों पर गिरकर पुनः प्रार्थना की—

इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि।
शक्तिमान् स हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने॥ ११२, १३॥

एवमुक्त्वापतद् भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा ।
भृश सम्प्रार्थयामास राघवेऽतिप्रिय वदन् ॥ ११२, १४ ॥

भरत को अपनी गोद में बिठाकर श्रीराम ने मधुरवाणी में राज्य संचालन हेतु उनके सहायकों की ओर संकेत किया और अपनी माता की प्रति मातृभाव बरतने को कहा--

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम् ॥ ११२, १५ ॥

"अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः ।
सर्वकार्याणि सम्मन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय ॥ ११२, १७ ॥

कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् ।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्" ॥ ११२, १९ ॥

भरत ने स्वर्णपादुका लाकर राम को उस पर चढ़ने को कहा । उन्होंने उसी को श्रीरामका प्रतिनिधि माना, उसपर चढ़ कर श्रीराम ने उसे भरत को दे दिया—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥ ११२, २१ ॥

सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च ।
प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥ ११२, २२ ॥

भरत ने श्रीराम के चरणपादुका को लेकर प्रणाम किया और कहा कि, इन्हीं के प्रतिनिधित्व में चौदह वर्षों तक आपका राज्य संचालन करूंगा, चौदह वर्षों के अन्त में आपके नहीं लौटने पर शरीर को जला दूंगा—

स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् ।
"चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥ ११२, २३ ॥

फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ॥ ११२, २४ ॥

तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।
चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥ ११२, २५ ॥

न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्" ॥

'ऐसा ही होगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर श्रीराम ने भरत एवं शत्रुघ्न को आलिंगन किया और अश्रुपूर्ण आँखों से भरत को विदा कर कहा—भरत ! माता कैकेयी का कभी निरादर नहीं करना—

तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ॥ ११२, २६ ॥
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् ।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥ ११२, २७ ॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन ।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह ॥ ११२, २८ ॥

इसके बाद राम ने सभी नागरिकों गुरुजनों मन्त्रियों तथा प्रजाओं को सम्मानपूर्वक विदा किया और अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ कुटी में लौट आये—

स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महोज्वले सम्परिगृह्य धर्मवित् ।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥११२, २९॥
अथानुपूर्व्यात्प्रतिपूज्य तं जनं गुरुश्च मन्त्रीन् प्रकृतिस्तथानुजौ ।
व्यसर्जयद् राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ११२,३०
तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः ।
स चैव मातॄरभिवाद्य सर्वा रुदन् कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥ ११२,३१ ॥

प्रसन्नचित्त भरत श्रीराम की चरण पादुका को माथे पर उठा रथपर सवार हो भरद्वाज जीं की कुटीपर पहुँचे. चित्रकूट के पास ही—

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा ।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ११३, १ ॥
अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा ।
आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः ॥ ११३, ५ ॥

मुनि के पूछने पर भरत ने उनसे कहा, चरणपादुका मिल गया, इसे लेकर अयोध्या जाता हूं—

निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण तु महात्मना ।
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे ॥ ११३, १४ ॥

भरद्वाज ने भरत से कहा—"भरत तुममें सारे सद्गुण निहित हैं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं। तुम जैसे धर्मात्मा पुत्र पा राजा दशरथ उऋण हो गये—

नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदांवर ।
यदार्यं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम् ॥ ११३, १६ ॥
अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ॥ ११३, १७ ॥

मुनि की प्रदक्षिणा कर भरत अपने मन्त्रियों सहित अयोध्या गये—

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः।
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः॥ ११३, १९॥

राजाविहीन अयोध्या में भरत ने प्रवेश किया—

अयोध्यां सम्प्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः।
तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव॥ ११३, २८॥

भरत ने गुरुजनों से नन्दीग्राम जाने की अनुमति मांगी। वहां श्रीराम के आने की प्रतीक्षा में तन्निमित्त तप करने की इच्छा प्रकट की—

नन्दिग्रामं गमिस्यामि सर्वानासन्त्रयेऽत्र वः।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना॥ ११५, २॥
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम।
रामं प्रतीक्ष्ये राज्याय स हि राजा महायशाः॥ ११३, ३॥

वसिष्ठादि सभी गुरुजनों ने भरत की भ्रातृवत्सलता की सराहना की—

सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तथैव तत्॥ ११५, ५॥

वसिष्ठादि गुरुजनों के साथ माथे पर पादुकाओं को उठाये भरत नन्दीग्राम पहुँचे—

अग्रतो गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः।
प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत्॥ ११५, १०॥
भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः।
अब्रवीद् दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्॥ ११५, १५॥
"छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम"॥ ११५, १६॥

फिर पादुकाओं को अभिषेक करा उनके अधीन रह राज्य करने लगे। जो कुछ उपायन पहुँचता उसे पादुकाओं को ही निवेदित करते—

ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके।
तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा॥ ११५, २६॥
तदा हि तत् कार्यमुपैति किंचिदुपायनं चोपहृतं महार्हम्।
स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य चकार पश्चाद् भरतो यथावत्॥ ११५, २७

इसपर चित्रकूट को छोड़ आगे दण्डकारण्य की ओर जाने के पूर्व श्रीरामादि अत्रिमुनि के आश्रम में गये। सीता अनसूया से मिलने गई। अनसूया ने सीता का स्वागत करते हुए उसकी प्रशंसा की और धर्म का उपदेश दिया—

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च भामिनि।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥ ११७, २२ ॥

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाऽशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥ ११७, २३ ॥

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥ ११७, २४ ॥

सीता के आचार से अनुसूया बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने कहा—तुम्हारी जैसी स्त्रियां स्वर्ग में विचरन करेंगी—

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम् ॥ ११७, २५ ॥

न त्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः।
कामवक्तव्य-हृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः ॥ ११७, २६ ॥

त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथापुण्यकृतस्तथा ॥ ११७, २७ ॥

सीता ने श्रीराम के स्वभाव का वर्णन किया कि वह कितने उदार, स्वजन प्रेमी और मातृ-पितृवत्सल हैं। उनसे प्रेम क्यों न हो। यदि वह अभद्र भी होते तो मैं उसी प्रकार अनुरक्त रहती जैसी मैं अभी हूं—

यद्यप्येष भवेद् भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत् ॥ ११८, ३ ॥

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः ॥ ११८, ४ ॥

यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः।
तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते ॥ ११८, ५ ॥

सकृद् दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः।
मातृवद् वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ॥ ११८, ॥

अनुसूया जी ने प्रसन्न होकर दिव्याभरण-वस्त्र एवं अङ्गरागादि सीताजी को उपहार में दिये—

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्राण्याभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥ ११८, १८ ॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥ ११८, १९ ॥

अनुसूया द्वारा पूछे जाने पर सीता ने उनसे अपने स्वयंवर सम्बन्धी सारी कथा कह सुनाई—

सदृशाच्चापकृष्टाच्च लोके कन्यापिता जनात्।
प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि ॥ ११८, ३५ ॥
अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत् स चिन्तयन्।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ॥ ११८, ३७ ॥
महायज्ञे तदा तस्य वरुणेन महात्मना।
दत्तं धनुर्वरं प्रीत्या तूणी चाक्षयसायकौ ॥ ११८, ३९ ॥
असंचाल्यं मनुष्यैश्च यत्नेनापि च गौरवात्।
तन्न शक्ता नमयितुं स्वप्नेष्वपि नराधिपाः ॥ ११८, ४० ॥
तद्धनुः प्राप्य मे पित्रा व्याहृतं सत्यवादिना।
समवाये नरेन्द्राणां पूर्वमामन्त्र्य पार्थिवान् ॥ ११८, ४१ ॥
"इदं च धनुरुद्यम्य सज्यं यः कुरुते नराः।
तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः ॥ ११८, ४२ ॥

राजा जनक से ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजी ने राजकुमारों को धनुष दिखलाने को कहा—

प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ रामलक्ष्मणौ।
सुतौ दशरथस्येमौ धनुर्दर्शनकाङ्क्षिणौ ॥ ११८, ४६ ॥
धनुर्दर्शय रामाय राजपुत्राय दैविकम्।"

तब धनुष लाकर कुमारों को दिखाया गया—

इत्युक्तस्तेन विप्रेण तद् धनुः समुपानयत्।
तद् धनुर्दर्शयामास राजपुत्राय दैविकम् ॥ ११८, ४७ ॥

श्रीराम ने निमिषमात्र में उस धनुष को उठा लिया, प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और इस

प्रकार प्रत्यञ्चा खींचो कि घोर शब्द करता हुआ धनुष मध्यभाग से दो टुकड़ा हो गया। इस प्रकार मैंने वीर्यवान् पति को पाया हैं—मैं उनसे अनुरक्त हूँ—

निमेषान्तरमात्रेण तदानम्य महाबलः।
ज्यां समारोप्य झटिति पूरयमास वीर्यवान् ॥ ११८, ४८ ॥
तेन पूरयिता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः।
तस्य शब्दोऽभवद् भीमः पतितस्याशनेर्यथा ॥ ११८, ४९ ॥
एवं दत्तास्मि रामाय तथा तस्मिन् स्वयंवरे।
अनुरक्तास्मि धर्मेण पतिं वीर्यवतां वरम् ॥ ११८, ५४ ॥

अनसूया ने सीता से कहा, "तुमने जो स्वयंवर की विचित्र कहानी कही, मैंने सुनली। अब बेटी मेरे सामने दिव्यालंकार धारण कर मुझे प्रसन्न कर और श्रीराम के पास चली जा"—

व्यक्ताक्षरपदं चित्रं भाषितं मधुरं त्वया।
यथा स्वयंवरं वृत्तं तत् सर्वं च श्रुतं मया ॥ ११९, २ ॥
गम्यतामनुजानामि रामस्यानुचरी भव।
कथयन्त्या हि मधुरं त्वयाहमपि तोषिता ॥ ११९, १० ॥
अलंकुरु च तावत् त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिलि।
प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालंकार-शोभिनी ॥ ११९, ११ ॥

अनसूया के समक्ष अलंकृत हो उनकी अनुमति से सीता अपने पति के पास जाकर दिव्योपहार सम्बन्धी बातें कह सुनाईं—

सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा।
प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ ॥ ११९, १२ ॥
न्यवेदयत् ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली।
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजम् ॥ ११९, १४ ॥

मैथिली का दिव्य सम्मान से दोनों भाइयों को प्रसन्नता हुई—

प्रहृष्टस्त्वभवद् रामो लक्ष्मणश्च महारथः।
मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभम् ॥ ११९, १५ ॥

रात बीत जाने पर श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों ने तपस्वियों से चलने की आज्ञा मांगी और तपस्वियों ने उनसे प्रार्थना की कि, राक्षस नानारूप धारण कर ब्रह्मचारी तपस्वियों को खा जाया करते हैं, इस संकट को आप दूर करें। इस प्रकार प्रार्थनोपरान्त उन तापसों ने हाथ जोड़कर श्रीराम का स्वस्त्ययन किया। इसके पश्चात् सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम ने वन में प्रवेश किया—

ततः स शर्वरी प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् ।
अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥ ११९, १६ ॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् ।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान् ॥ ११९, १७ ॥

तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः ।
वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥ ११९, १८ ॥

रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव ।
वसन्त्यस्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः ॥ ११९, १९ ॥

उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम् ।
अदन्त्यस्मिन् महारण्ये तान् निवारय राघव" ॥ ११९, २० ॥

इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परं तपः ।
वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥११९,२२॥

इत्यार्षे संक्षिप्त श्रीमद्वाल्मीकियरामायणे अयोध्याकाण्डम् ॥

अरण्यकाण्डम्

श्रीसीता राम और लक्ष्मण का दण्डकारण्य प्रवेश—

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १, १ ॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ।
तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १, ९ ॥

श्रीराम को देखकर तापसों ने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया और मङ्गलकृत्य करने के बाद फल मूलादिसे उन्हें तृप्त किया पश्चात् राक्षसों से त्राण दिलाने को उनसे प्रार्थना की—

अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः ।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥ १, १० ॥
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ।
ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणीम् ॥ १,११ ॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् ॥ १, १२ ॥
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः ।
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ॥ १, १७ ॥
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।
धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ॥ १, १८ ॥
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः ।
इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ॥ १, १९ ॥
राजा तस्मात् वरान् भोगान् रम्यान् भुङ्क्ते नमस्कृतः ।
न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ १, २१ ॥

मुनियों से विदा होकर आगे बढ़ने पर विराध से भेंट हुई—उसने उनपर आक्रमण कर सीता को गोद में उठाकर आगे बढ़ कहा कि यह सीता मेरी पत्नी होगी और तुम दोनों का मैं रक्तपान करूँगा—

सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते ।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥ २, ४ ॥

स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ॥ २, ८ ॥

स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ।
अङ्कनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाऽब्रवीत् ॥ २, ९ ॥

"युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ ॥ २, १० ॥

कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ॥ २, ११ ॥

इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥ २, १३ ॥

श्रीराम ने सीता को विराध के वश में देख कर लक्ष्मण से अपनी दुर्दशा की बात कही ।

तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ २, १४ ॥

"ययाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम् ।
अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम ॥ २, १६ ॥

परस्पर्शात् तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे ।
पितुर्विनाशात् सौमित्रे स्वराज्यहरणात् तथा ॥ २, २१ ॥

लक्ष्मण ने श्रीराम को आश्वासित किया कि वे उस राक्षस को अपने बाणों से धराशायी करेंगे—

अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः ।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे ॥ २, २२ ॥

मम भुजबलवेगवेगितः पततु शरोऽस्य महान् महोरसि ।
व्यपनयतु तनोश्च जीवितं पततु ततश्च महीं विघूर्णितः ॥ २, २६ ॥

जब बाणों द्वारा विराध की मृत्यु नहीं हुई तब श्रीराम ने लक्ष्मण को गड्ढा खोदने को कहा —

स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः ।
निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ॥ ४, ८ ॥

तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् ।
भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४, ९ ॥

वनेऽस्मिन् सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रवर्चसः" ।

ऐसा करने पर बिराध बोला "मैं मारा गया । प्रभु, मोहवश आपको मैंने नहीं पहचाना । मैं तुम्बरु नामक गंधर्व हूँ, शापवश राक्षस हो गया हूँ । मुझे गड्डे में रख कर आप सुखपूर्वक जाँय—

हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै ॥
मया तु पूर्वं त्वं मोहान्न ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥ ४, १४ ॥

अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम् ।
तुम्बुरुर्नाम गंधर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि ॥ ४, १६ ॥

अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ।
रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ॥ ४, २२ ॥

अवध्यतां प्रेक्ष्य महासुरस्य तौ शितेन शस्त्रेण तदा नरर्षभौ ।
समर्थ्य चात्यर्थविशारदावुभौ विले विराधस्य वधं प्रचक्रतुः ॥ ४, ३० ॥

स्वयं विराधेन हि मृत्युमात्मनः प्रसह्य रामेण यथार्थमीप्सितः ।
निवेदितः काननचारिणा स्वयं न मे वधः शस्त्रकृतो भवेदिति ॥४,३१॥

प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम् ।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने शिलाभिरन्तर्दधतुश्च राक्षसम् ॥ ४, ३३ ॥

उसके पश्चात् तीनों ने शरभङ्ग मुनि के आश्रम में पहुँच उन का यथोचित अभिवादन किया । उनकी आज्ञा से निवासस्थान ग्रहण किया—

अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् ।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ।
प्रयाते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः ॥ ५, ३ ॥

अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ।
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः ।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥ ५. २५ ॥

मुनि शरभंग ने कहा, "मैं आपके आने की प्रतीक्षा में ब्रह्मलोक नहीं गया । अपनी तपस्या आपको समर्पण करता हूँ" उसे आप स्वीकार करें—

अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः ।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥ ५, २९ ॥

अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः ।
ब्राह्मयाश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकम् ॥ ५, ३१ ॥

श्रीरामने कहा, 'मुनि मैं आपको सभी पुण्यलोकों को प्राप्त कराऊँगा। अभी आप बतायें कि मैं कहाँ अच्छी तरह निवास करूँ' —

अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान् महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ ५, ३३ ॥

शरभंग ने बताया, 'यहाँ महातेजस्वी सुतीक्ष्णऋषि हैं, वह सब प्रबन्ध कर देंगे'—

इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः ।
वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति ॥ ५, ३५ ॥

ऐसा कह शरभंग अग्नि में प्रवेश कर गये—

ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत् ।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥ ५, ३९ ॥

ऋषि महात्माओं ने इकट्ठा होकर श्रीराम जी से प्रार्थना की कि, वह राजा होने के नाते उन महात्माओं की निशाचरों से रक्षा करें। क्योंकि राजा को ऋषियों द्वारा किये गये तप का चतुर्थभाग प्राप्त होता है,—

विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च ।
पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥ ६, ९ ॥
त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥ ६, १० ॥
अधर्मः सुमहान् नाथ भवेत् तस्य तु भूपतेः ।
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥ ६, ११ ॥
यत् करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशिनः ।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ६, १४ ॥
सोऽयं ब्राह्मण भूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥ ६, १५ ॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान निशाचरैः ॥ ६, १९ ॥

मुनियों की करुण प्रार्थना सुन श्रीराम द्रवित हो गये और बताया कि उन सबों की रक्षा के उद्देश्य से ही वह बन आये हैं—

विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ॥ ६, २३ ॥
भवतामर्थसिद्धयर्थमागतोऽहमिदं वनम् ।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलम् ॥ ६, २४ ॥

महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँच वहां ध्यानमग्नमुनि से श्रीराम ने कहा, "मुने, मैं राम आपके दर्शन के लिये आया हुआ हूं"—

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परं तपः ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥ ७, १ ॥
तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् ।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत् तपोधनमभाषत ॥ ७, ५ ॥
रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः ।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥ ७, ६ ॥

श्रीराम को देख मुनि ने उठकर उन्हें गले लगाया और उनके आगमन से अपने को धन्यमानते हुए तीनों को अपने आश्रम में सुखपूर्वक रहने को कहा—

स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् ।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७, ७ ॥
"स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर ।
आश्रमोऽयं त्वयाऽऽक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम्" ॥ ७, ८ ॥
प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः ।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ७, ९ ॥
तेषु देवर्षिजुष्टेषु जितेषु तपसा मया ।
मत्प्रसादात् सभार्यस्त्वं विहरस्व सलक्ष्मणः ॥ ७, १२ ॥

मुनि से श्रीराम ने अपनी कुटीया बनाकर रहने का स्थान पूछा—

अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रविष्टमिह कानने ॥ ७, १४ ॥
भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः ।
आख्यातं शरभङ्गेन गौतमेन महात्मना ॥ ७, १५ ॥

मुनि ने उन्हें अपने ही आश्रम में ठहरने को कहा। वहाँ सारी सुविधायें प्राप्त थीं—

अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिति।
ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः ॥ ७, १७ ॥

"इस आश्रम में चिरकाल तक तो नहीं रहना चाहता हूं ऐसा श्रीराम ने कहा—

एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये।
तमेवमुक्त्वोपरमं रामः संध्यामुपागमत् ॥ ७, २२ ॥

रात उसी आश्रम में बिताकर प्रभात में श्रीराम ने मुनि से अन्यमुनिमण्डलीके आश्रमों को देखने के लिये आज्ञा माँगी—

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः।
आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥ ८, ५ ॥

त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम्।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥ ८, ६ ॥

मुनिने दोनों भाइयों को उठाकर छाती से लगाया और जाने के पूर्व मंगल कामना की—

तौ संस्पृशन्तौ चरणमुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः।
गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८, १० ॥

"अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया" ॥ ८, ११ ॥

मुनि आश्रमों को देखभाल कर पुनः उसी आश्रममें आने को मुनि ने उनसे कहा—

गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि तु गच्छतु।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥ ८, १६ ॥

ऐसा कहने पर श्रीराम तथा लक्ष्मण ने मुनि की प्रदक्षिणा की और वहाँ से प्रस्थान किया। तब, सीता ने श्रीराम को कामज तीनों व्यसनों से रहित एवं स्वधर्मपालन में दृढ़व्रत होने की प्रार्थना की—

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः।
प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ ८, १७ ॥

अधर्मस्तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।
निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात् कामजादिह ॥ ९, २ ॥

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत ।
"मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरुतरावुभौ ॥ ९, ३ ॥
'परदाराभिगमनं' विनावैरं च रौद्रता"
'मिथ्यावाक्यं' न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥ ९, ४ ॥
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् ।
तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥ ९, ५ ॥
धर्मिष्ठः सत्यसन्धश्च पितुर्निर्देशकारकः ।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ९, ७ ॥
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
निर्वैरं क्रियते मोहात् तच्च ते समुपस्थितम् ॥ ९, ९ ॥
क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च ।
समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम् ॥ ९, १५ ॥
एवमेतत् पुरावृत्तं शस्त्रसंयोगकारणम् ।
अग्निसंयोगवद्धेतुः शस्त्रसंयोग उच्यते ॥ ९, २३ ॥
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् ।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ ९, २६ ॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम् ॥ ९, २७ ॥
धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥ ९, ३० ॥
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्शयित्वा प्रयत्नतः ।
प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ॥ ९, ३१ ॥

श्री जानकी ने कहा, "आप जैसे धर्मज्ञ को धर्म सम्बन्धी बात कौन समझा सकता है' मैं ने स्त्री चापल्य के कारण ही कुछ कह दिया है । अपने बुद्धिमान् भाई के साथ विचार कर जैसा उचित समझें करें—

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः ।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन यद् रोचते तत्कुरु मा चिरेण ॥ ९, ३३ ॥

उत्तर में श्रीराम ने कहा, 'देवि ! तुमने जो कुछ कहा ठीक है, पर मैं मुनियों को असुरों से प्राप्त कष्टों को दूर करने का जो वचन दिया, उसका पालन अवश्य करूँगा'—

हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः ।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥ १०, २ ॥

किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥ १०, ३ ॥

ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ।
मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः ॥ १०, ४ ॥

प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला ।
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ।
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ ॥ १०, ९ ॥

तदद्यमानान् रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः ।
"रक्ष नस्त्वं" सहभ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने ॥ १०, १५ ॥

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन "परिपालनम्" ।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकात्मजे ॥ १०, १६ ॥

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ १०, १८ ॥

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः ॥ १०, १९ ॥

सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ १०, २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम् ।
रामो धनुष्मान् सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥१०, २२॥

चलते चलते वे पञ्चसरनामक एक सरोवर के निकट शाम को पहुँचे जो लम्बा चौड़ा, एक एक योजन था —

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना ।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ ११, १ ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।
ददृशुः सहिता रम्यं तटाकं योजनायतम् ॥ ११, ५ ॥

प्रत्येक आश्रम में थोड़ा थोड़ा काल बिताते हुए, घूमते २ फिर सुतीक्ष्ण जी के आश्रम में लौट कर वहाँ भी कुछ दिन बिताये—

परिवृत्य च धर्मज्ञो राघवः सहसीतया ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह ॥ ११, २७ ॥

स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः।
तत्रापि न्यवसद् रामः किञ्चित् कालमरिंदमः॥ ११, २८॥

वहां रहते हुए एक दिन विनीतभाव से श्रीराम ने मुनि से कहा, "लोगों से सुना है, कि यहां कहीं भगवान् अगस्त्य रहते हैं। मैं जाकर उनका दर्शन एवं अभिवादन करना चाहता हूं" —

अथाश्रमस्थो विनयात् कदाचित् तं महामुनिम्।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत्॥ ११, २९॥
अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः।
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम्॥ ११, ३०॥
न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया।
अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम्॥ ११, ३१॥
मनोरथो महानेष हृदि सम्परिवर्तते।
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम्॥ ११, ३२॥

सुतीक्ष्णजी ने श्रीराम के प्रस्ताव को सहर्ष अनुमोदन किया और अपनी स्वीकृति दे दी—

इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः॥ ११, ३४॥
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम्।
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम्॥ ११, ३५॥
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव।
दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन् स्वयमेव ब्रवीषि माम्॥ ११, ३६॥

सुतीक्ष्ण के आज्ञानुसार श्रीराम का अगस्त्याश्रम के लिए प्रस्थान, मार्ग में रात को अगस्त्य के छोटे भाई के आश्रम में पड़ाव, रात बीतने पर मुनि से अगस्त्याश्रम जाने की अनुमति माँगना—

एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत॥ ११, ६८॥
उपास्य पश्चिमां संध्यां सहभ्रात्रा यथाविधि।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत्॥ ११, ६९॥
सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः।
न्यवसत् तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च॥ ११, ७०॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले।
भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः॥ ११, ७१॥

"अभिवादये त्वां भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम्।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम्"॥ ११, ७२॥

अगस्त्यानुज ने जाने की आज्ञा दी और वे उनको बताये गये मार्ग से आश्रम को चले—

गम्यतामिति तेनोक्तं जगाम रघुनन्दनः।
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन्॥ ११, ७३॥

अगस्त्याश्रम पहुँच कर श्रीराम ने लक्ष्मण को आगे जाकर मुनि से अपने और सीता के आने की सूचना देने को कहा—

"अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः॥ ११, ७९॥
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान् विनीतमृगसेवितः॥ ११, ८६॥
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया॥ ११, ९४॥

लक्ष्मण ने आश्रमद्वार पर जाकर मुनिशिष्य से कहा कि वह जाकर मुनि से निवेदन करें कि श्रीराम, सीता और लक्ष्मण के साथ मुनिके दर्शनार्थ आये हुए हैं—

राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया॥ १२, २॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः।
अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः॥ १२, ३॥
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्॥ १२, ४॥

शिष्य ने लक्ष्मण को बात मुनि से निनेदन कर दी—

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा॥ १२, ५॥
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य सम्मतः॥ १२, ६॥

मुनि ने शिष्य से शीघ्र तीनों को सत्कारपूर्वक ले आने को कहा—

ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् ॥ १२, ९ ॥

दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ।
मनसाकाङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥ १२, १० ॥

गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः ॥ १२, ११ ॥

शिष्य ने लक्ष्मण से आकर कहा, "श्रीराम कौन हैं ? वह स्वयं प्रवेश करें और मुनि से मिलें"—

तदा निष्क्रम्य सम्भ्रांतः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥ १२, १३ ॥

इसके बाद लक्ष्मण ने शिष्यों को श्रीराम और सीता से भेंट करा दी—

ततो गत्वाऽऽश्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः ।
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् ॥ १२, १४ ॥

अगस्त्यजी की बात शिष्य ने श्रीराम से कही और उन्हें सत्कार पूर्वक मुनि के पास पहुँचा दिया—

तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रवन् ।
प्रवेशयद् यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम् ॥ १२, १५ ॥

लक्ष्मण से श्रीराम ने कहा, 'औदार्य और तपस्तेज से पूर्ण यही अगस्त्यजी मालूम पड़ते हैं—

बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिमम् ॥ १२, २३ ॥

मुनि को देखकर श्रीराम सीता और लक्ष्मण तीनों ने उनके चरणों में प्रणाम किया—

एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् ।
जग्राह पततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥ १२, २४ ॥

अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः सलक्ष्मणः ।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥ १२, २५ ॥

मुनिने अर्घ्यपद्यादि द्वारा तीनों का स्वागतकर आसन दिया, फिर उन्होंने अग्नि में आहुति देने के बाद उन्हें भोजन कराया—

प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥ १२, २६ ॥

अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन् प्रतिपूज्य च।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥ १२, २७ ॥

मुनि ने श्रीरामादि से वानप्रस्थों का नियम सुनाया—

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥ १२, २८ ॥

अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथिं प्रतिपूजयेत्।
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन्।
दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥ १२, २९ ॥

मुनिने कहा, "सभी लोकों का राजा आप मुझे आज मान्यअथिति प्राप्त हुए हैं—

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः ॥ १२, ३० ॥

फल-मूल-पुष्पादि से पूजकर मुनिने श्रीरामजी से यों कहा, "ये दिव्य स्त्र मुझे इन्द्र से मिले हैं। श्रीराम ! आप इनके द्वारा असुरों पर विजय करें"—

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम्।
पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ १२, ३१ ॥

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ १२, ३२ ॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्य सायकौ ॥ १२, ३३ ॥
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महाराजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥ १२, ३४ ॥
अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ १२, ३५ ॥

तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥ १२, ३६ ॥

श्रीराम लक्ष्मण और सीता को सम्बोधित कर मुनि ने कहा, ''मैं आप'' लोगों पर बहुत प्रसन्न हूं कि आप ने आकर मेरा अभिवादन किया। नारियों के लक्षण बताते हुए महर्षि ने सीता की सराहना की—

एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम्।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥ १२, ३७ ॥

"राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण।
अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया ॥ १३, १ ॥

एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता।
प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ १३, ३ ॥

यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छति ॥ १३, ४ ॥

एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन।
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च ॥ १३, ५ ॥

शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां तथा।
गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः ॥ १३, ६ ॥

इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता।
श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवीष्वरुन्धती ॥ १३, ७ ॥

श्रीराम ने सीता सहित लक्ष्मण पर मुनि की प्रसन्नता देख अपने को धन्य माना—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः।
गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति ॥ १३, १० ॥

श्रीराम के द्वारा निवासस्थान पूछने पर मुनिने कहा कि, यहाँ से दो योजन की दूरी पर पञ्चवटी नामक रम्यस्थान है। वहीं कुटी बना कर रमण करना। अपनी तपस्या के प्रभाव से आपके मन की बात मैं जान गया था; आप इसी आश्रम में रहना चाहते थे' न—

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः।
देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥ १३, १३ ॥
तत्र गत्वाऽऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह।
रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥ १३, १४ ॥
विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ ॥ १३, १४ ॥
तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद् दशरथस्य च।

हृदयस्थं च तेच्छन्दो विज्ञातं तपसा मया।
इह वासं प्रतिज्ञाय मया सह तपोवने ॥ १३, १७ ॥

अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पञ्चवटीमिति।
स हि रम्यो वनोद्देशो मैथिली यत्र रंस्यते ॥ १३, १८ ॥

स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥ १३, १९ ॥

मुनि के चरणाभिवादन कर तथा उनकी आज्ञा ले तीनों पञ्चवटी की ओर चल पड़े—

अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥ १३, २५ ॥
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ।
तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥ १३, २६ ॥

गृहीत चापौ तु नराधिपात्मजौ विषक्ततूणी समरेष्वकातरौ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ ॥ १३, २७ ॥

गृध्रराज को देख श्रीराम लक्ष्मण ने उन्हें राक्षस समझा और पूछा, "आप कौन हैं ?"—

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥ १४, १ ॥

तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ।
मेनाते राक्षसं पक्षि ब्रुवाणौ को भवानिति ॥ १४, २ ॥

गृध्र ने उत्तर दिया, "मैं आपके पिताजी का मित्र हूं—

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच 'वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥ १४, ३ ॥

पितृसखा समझ श्रीराम ने उनका समुचित सत्कार किया और विनीतभाव से उनका नाम और कुल पूछा—

स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ १४, ४ ॥

गृध्रराज जटायु सभी भूतों की उत्पत्ति-क्रम से बताने लगे (विस्तार पूर्वक) उन्होंने अपनी तथा सम्पाति की उत्पत्ति अरुण और श्येनि से बतायी—

रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम् ॥ १४, ५ ॥

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन् ।
तान् मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ १४, ६ ॥

कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम् ।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ १४, ७ ॥

स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः ।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा ॥ १४, ८ ॥

प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः ।
षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥ १४, १० ॥

कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः ।
अदितिं च दितिं चैव दनूमपि च कालकाम् ॥ १४, ११ ॥

ताम्रां क्रोधवशां चैव मनुं चाप्यनलामपि ॥ १४, १२ ॥

कद्रू नागसहस्रं तु विजज्ञे धरणीधरान् ।
द्वौ पुत्रौ विनतायास्तु गरुडोऽरुण एव च ॥ १४, ३२ ॥

तस्माज्जातोऽहमरुणात् सम्पातिश्च ममाग्रजः ।
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिन्दम ॥ १४, ३३ ॥

यदि आप चाहें तो मैं आपकी अनुपस्थिति में आपके घर एवं सीता की रक्षा करूँगा—

सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ।
इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम् ।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ॥ १४, ३४ ॥

श्रीराम ने जटायु का सम्मान एवं आलिंगन बड़ी श्रद्धा एवं स्नेह से किया—

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवाञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ॥ १४, ३५॥

पञ्चवटी में कुटी निर्माण का उपयुक्त स्थान चुनने के लिये श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—(स्थान जहाँ जल, फूल फलादि का सुपास हो)

आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् ।
अयं पञ्चवटी देशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥ १५, २ ॥

सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ।
आश्रमः कतरस्मिन् नो देशे भवति सम्मतः ॥ १५, ३ ॥

रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः॥ १५, ४॥

वनरामाण्यकं यत्र जलरामाण्यकं तथा।
संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम्॥ १५, ५॥

लक्ष्मण ने कहा मैं तो आपका दास हूँ, आप स्थान पसन्द करें और मुझे काम करने का आदेश दें—

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥ १५, ७॥

लक्ष्मण के इस उत्तर से श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए—

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम्॥ १५, ८॥

श्रीराम ने रम्यस्थान चुनकर लक्ष्मण से वहां कुटी बनाने को कहा—

स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ १५, ९॥

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि'॥ १५, १०॥

लक्ष्मण ने श्रीराम के आज्ञानुसार एक बहुत सुन्दर एवं मजबूत पर्णशाला बना डाली—

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम्।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम्॥ १५, २१॥

शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम्।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा॥ १५, २२॥

समीकृततलां रम्यां चकार सुमहाबलः।
निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम्॥ १५, २३॥

पर्णकुटी बना चुकने पर लक्ष्मण ने गोदावरी में स्नान कर कमल के फूल ला देवताओं को वलि दी और उसे श्रीरामजी को दिखाया—

स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान् नदीं गोदवरीं तदा।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः॥ १५, २४॥

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम्॥ १५, २५॥

सीतासहित श्रीराम ने सुन्दर कुटी देखी। वे लक्ष्मण पर बहुत प्रसन्न हुए। प्रेम से उनका अलिंगन किया और कहा, "तुम मेरे भावको समझने वाला कृतज्ञ हो। तुम्हारे रहते मैं समझता हूं, मेरे पिता अभी जीवित हैं"—

स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत् परम्॥ १५, २६॥

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत्॥ १५, २७॥

"प्रीतोऽस्मि ते महत् कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः॥ १५, २८॥

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम"॥ १५, २९॥

इस प्रकार वे वहाँ सुख से रहने लगे—

एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः।
तस्मिन् देशे बहुफले न्यवसत् स सुखं वशी॥ १५, ३०॥

हिम ऋतु में एक दिन तीनों मूर्ति गोदावरी में स्नान करने गये और वहाँ लक्ष्मण, भरत के सद्गुणों का बखान करने लगे। जब गौणरूप में कैकेयी का दोष-वर्णन आया तब श्रीराम ने उन्हें रोकर कर भरत ही का गुणगान करने कहा—

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥ १६, २७॥

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥ १६, २८॥

सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्॥ १६, २९॥

जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते॥ १६, ३३॥

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः॥ १६, ३४॥

इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद् वदति धार्मिके।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत्॥ १६, ३६॥

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥ १६, ३७॥

निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेह संतप्ता बालिशीक्रियते पुनः॥ १६, ३८॥

संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनः प्रह्लादनानि च॥ १६, ३९॥

कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन॥ १६, ४०॥

इस प्रकार का विलाप करते तीनों ने गोदावरी में स्नान कर देवपितृ का तर्पण किया—

इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया॥ १६, ४१॥

तर्पयित्वाथ सलिलैस्ते पितॄन् दैवतानपि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्यं देवताश्च तथानघाः॥ १६, ४२॥

इसके पश्चात् तीनों अपनी कुटी में लौट आये और अनेक विषयों पर बातें करने लगे—

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च।
तस्मात् गोदावरीतीरात् ततो जग्मुः स्वमाश्रमम्॥ १७, १॥

आश्रमं तमुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत्॥ १७, २॥

उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः।
स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया॥ १७, ३॥

विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः॥ १७, ४॥

उनकी बातचीत के अभ्यन्तर ही शूर्पणखा नाम की राक्षसी जो रावण की बहन थी, अकस्मात् वहाँ उनके सामने आ धमकी—

तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया॥ १७, ५॥

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः।
भगिनीं राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम्॥ १७, ६॥

कंदर्पोपम श्रीराम के सौन्दर्य पर वह राक्षसी काम मोहित हो गई—

सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् ।
राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृशप्रभम् ।
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ॥ १७, ८ ॥

राक्षसी शूर्पणखा विपरीतगुण सम्पन्ना थी—

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥ १७, ९ ॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा ।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥ १७, १० ॥
तरुणं दारुणा वृद्धा' दक्षिणं वामभाषिणी ।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ॥ १७, ११ ॥

उस कामाविष्टा राक्षसी ने श्रीराम से उस राक्षससेवितवन में भार्या के साथ आने का कारण पूछा—

शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ।
"जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥ १७, १२ ॥
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम् ।
किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि" ॥ १७, १३ ॥

श्रीराम ने कहा, "मैं अपने छोटे भाई और पत्नी के साथ माता पिता के आदेश से धर्मपालनार्थ वनप्रदेश में वास करने को आया हूं"—

भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान् मामनुव्रतः ।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥ १७, १६ ॥
नियोगात् तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः ।
धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥ १७, १८ ॥

फिर उन्होंने पूछा 'तुम कौन हो ? मुझे तो तुम राक्षसी जान पड़ती हो यहाँ क्यों आई हो—ठीक ठीक सारा बातें बताओ'—

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा ।
त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे ॥ १७, १९ ॥
इह वा किं निमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १७, २० ॥

शूर्पणखा ने अपना ठीक ठीक परिचय दिया और कहा कि तुम्हारे योग्य मैं ही हूं । तुम्हारी भार्या हो सकती हूं । मुझे अपनी भार्या बना लो । इस कुरूपा सीता को तो तुम्हारे भाई के साथ [illegible] खा जाऊंगी—

अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ॥ १७, २० ॥

रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः ।
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः ॥ १७, २३ ॥

प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ।
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वा पूर्वदर्शनात् ॥ १७, २४ ॥
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तम ॥ १७, २६ ॥

चिराय भव भर्त्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥ १७, २७ ॥

विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव ।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥ १७, २८ ॥

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥ १७, २९ ॥

श्रीराम ने कहा "सुन्दरि ! मैं तो विवाहित हूं। मेरी पत्नी साथ है। मेरा छोटा भाई सुन्दर और पराक्रमी है। वही तुम्हारे अनुरूप पति होने योग्य है—"

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम ॥ १८ १ ॥

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः ।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥ १८, ३ ॥
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥ १८. ४ ॥

(राम का मजाक)

तब लक्ष्मण के पास जाकर वह बोली, "तुम मेरे योग्य वर हो मेरे साथ विवाह कर तुम सारे वन में विहार करोगे।"

अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी ।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरष्यसि ॥ १८, ७ ॥

लक्ष्मण ने कहा, 'मैं तो अपने भाई का दास हूं। तुम दासी बनना कैसे पसन्द करती हो ? वही अपना असुन्दरी भार्या को छोड़, तुझ सुन्दरी को भार्यारूप में ग्रहण कर सकते हैं"—(लक्ष्मण का व्यंग)

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि ।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि ॥ १८, ९ ॥

एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥ १८, ११ ॥

इस पर वह श्रीराम की कुटी में जाकर उनसे बोली "मैं अभी इस कुरूपा सीता को खा जाती हूँ और तुम्हारे साथ निर्द्वन्द्व विचरण करूंगी" —

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम् ।
सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत् काममोहिता ॥ १८, १४ ॥

"इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहुमन्यसे ॥ १८, १५ ॥

अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम् ।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्" ॥ १८, १६ ॥

ऐसा कह वह डरी हुई सीता पर टूट पड़ी—

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ।
अभ्यगच्छत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥ १८, १७ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा "भाई इसे शीघ्र विरूपकार डालो" ।

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् ।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥ १८, २० ॥

ऐसी आज्ञा पा लक्ष्मण ने तलवार से उसके नाक-कान काटकर विरूप कर दिया—

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः ।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः ॥ १८, २१ ॥

फिर तो वह घोर क्रन्दन करती हुई भाग ही चली—

निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥ १८, २२ ॥

अपने भाई खर के पास जाकर उसने वनमें राम, लक्ष्मण और सीता के आने का समाचार तथा अपनी विरूपता की कहानी कह सुनाई—

ततस्तु सा राक्षससंघसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं पपात भूमौ गगनाद् यथाशनिः ॥१८, २५ ॥

ततः सभार्यं भयमोहमूर्च्छिता सलक्ष्मणं राघवमागतं वनम् ।
विरूपणं चात्मनि शोणितोक्षिता शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥१८,२६॥

क्रुद्ध खर ने उसे बताने को कहा कि किसने उसे इस प्रकार कुरूपा बना दिया—

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् ।
भगिनीं क्रोध-सन्तप्तः खरः प्रपच्छ राक्षसः ॥ १९, १ ॥

"उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि साम्प्रतम् ।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता ॥ १९, २ ॥

खर के पूछने पर शूर्पणखा ने कहा 'फलमूलभक्षी राजा दशरथ के दो पुत्र जो बड़े वीर हैं,' एक अतीव सुन्दरी स्त्री के साथ आये हुए हैं। उसी स्त्री के कारण उन्हों ने मुझे विरूप कर दिया है, मैं उन तीनों के सफेन पीना खून चाहती हूँ—

फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १९, १५ ॥

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
दृष्ट्वा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥ १९, १७ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम् ।
इमामवस्थां नीताहं यथानाथासती तथा ॥ १९, १८ ॥

तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥ १९, १९ ॥

एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् ।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥ १९, २० ॥

उसके ऐसा कहने पर खर ने चौदह दुर्धर्ष राक्षसों का आदेश दिया, "राम लक्ष्मण और सीता को मार डालो। मेरी बहन उनका रुधिर पीयेगी"—

मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥ १९, २२ ॥

तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ।
इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति ॥ १९, २३ ॥

श्रीराम ने उन राक्षसों को आये देख अपने भाई को सीता के साथ अलग खड़े रहने को कहा, ताकि वह राक्षसों को वध कर डालें—

मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः ।
इमानस्या वधिस्यामि पदवीमागतानिह ॥ २०, ४ ॥

श्रीराम नेशरासन सज्जित कर उन राक्षसों से कहा, "तुम पापी नरहत्यारे को वध करने के लिये ही हम इस वन में आये हैं—"

राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् ।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ॥ २०, ६ ॥

युष्मान् पापात्मकान् हन्तुं विप्रकारान् महाहवे ।
ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः सशरासनः ॥ २०, ९ ॥

कुछ संघर्ष के बाद श्रीराम के बाणों से चौदहो राक्षस धराशायी हुए—

गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् ॥ २०, १९ ॥
मुमोच राघवो बाणान् वज्रानिव शतक्रतुः ॥ २०, १९ ॥
तैर्भग्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः ॥ २०, २० ॥
निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः ॥ २०, २१ ॥

खर के पास जा फिर भी शूर्पणखा ढाढ़ मारकर रोने लगी और कहा कि चौदहो राक्षस मारे गये—

भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत् ।
सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा ॥ २०, २४ ॥
निपातितान् प्रेक्ष्य रणे तु राक्षसान् प्रधाविता शूर्पणखा पुनस्ततः ।
वधं च तेषां निखिलेन रक्षसां शशंस सर्वं भगिनी खरस्य सा ॥ २०, २५ ॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः ।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ २१, १३ ॥

शूर्पणखा ने उसके क्रोध को और बढ़ाया और कहा, "वहां जाकर उन दोनों भाइयों को मार डालो अन्यथा कुलकलंकी बन अपने बन्धुबान्धवों को साथ लेकर जनस्थान से भाग निकलो"—

बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ।
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि महारणे ॥ २१, १६ ॥
शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ॥ २१, १७ ॥
अपयाहि जनस्थानात् त्वरितः सहबान्धवः ।
रामेण यदि ते शक्तिस्तेजो वास्ति निशाचर ।
जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन ॥ २१, १८ ॥

खर ने उसे आश्वसित किया, "अवश्य, आज राम का वध करूंगा और उसका गर्म रक्त पान करोगी"—

बाष्पः संधार्यतामेष सम्भ्रमश्च विमुच्यताम् ।
अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ २२, ४ ॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले ।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ २२, ५ ॥

ऐसा कह खर ने दूषण एवं त्रिशिरादि के साथ चौदह हजार सैनिक ले श्रीराम से जा भिड़ा--

ततस्तद् राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम्।
निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम्॥ २२, ७॥
सा भीमवेगा समराभिकाङ्क्षिणी सुदारुणा राक्षसवीरसेना।
तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता माला ग्रहाणामिव चन्द्रसूर्यौ॥२३, ३४॥

लक्ष्मण के कान्तियुक्त मुखमण्डल को देखकर श्रीराम ने कहा, "लक्ष्मण, शत्रु हमारे निकट आ चले हैं। तुम्हारा मुख देखकर मेरा विश्वास है कि हम अवश्य विजयी होंगे, किन्तु बुद्धिमान को चाहिये कि विपत्ति आने के पहले ही उससे बचने का उपाय सोच ले। सीता को पहाड़ की खोह में ले जाओ—

संनिकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम्।
सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते॥ २४, ८॥
उद्यतानां हि युद्धार्थं तेषां भवति लक्ष्मण।
निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः॥ २४, ९॥
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥ २४, ११॥
तस्मात् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहमाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम्॥ २४, १२॥

श्रीराम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को पर्वत दुर्ग में ले गये—

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत्॥ २४, १५॥

श्रीराम तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित होने लगे। उनके धनुषटंकार से दिशाएँ गूँज उठीं—

स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः।
बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः॥ २४, १७॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्।
सम्बभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः॥ २४, १८॥

उस युद्ध के दर्शकगण, देवता, महर्षि, चारण, असुर, गन्धर्वादि थे। देवगण राम की जय और असुर, खर की जय मना रहे थे--

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सहचारणैः।
समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकाङ्क्षया॥ २४, १९॥
ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षिसत्तमाः।
समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः॥ २४, २०॥

स्वस्ति गोब्राह्मणानां च लोकानां चेति संस्थिताः।
जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् ॥ २४, २१ ॥

इस युद्ध काल में श्रीराम के प्रज्वलित रौद्र मुखमण्डल को देख सभी प्राणी भयभीत हो गये। मानो दक्षयज्ञ को विध्वंस करने को रुद्र आ गये हों—

आविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद् विव्यथिरे तदा ॥ २४, २५ ॥

तं दृष्ट्वा तेजसाऽऽविष्टं प्राव्यथन् वनदेवताः।
तस्य रुष्टस्य रूपं तु रामस्य ददृशे तदा।
दक्षस्येव क्रतुं हन्तुमुद्यतस्य पिनाकिनः ॥ २४, ३५ ॥

राक्षसों ने श्रीराम के अंगों को अपने बाणों से वेध डाला किन्तु श्रीराम किंचित् भी व्यथित नहीं हुए, पर्वत के समान अडिग रहे—

ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन् रक्षसां गणाः।
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनः ॥ २५, १० ॥

तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः।
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ॥ २५, १२ ॥

स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे।
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ॥ २५, १३ ॥

युद्ध में सेनापति दूषण और त्रिशिरा अपने योद्धाओं के साथ मारे गये है। इस पर श्रीराम के पराक्रम देख खर को भी भय हो गया, किन्तु आक्रमण तो किया ही उसने, इससे श्रीराम को बड़ा क्रोध हुआ—

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह।
खरस्याप्यभवत् त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥ २८, १ ॥

श्रीराम ने नाराच द्वारा उसके धनुष, रथ, घोड़े और सारथी को काट डाला, तब वह रथहीन हो हाथ में गदा लेकर भूमि पर कूद पड़ा—

स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम् ॥ २८, २१ ॥

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् भास्करोपमान्।
जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥ २८, २८ ॥

प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥ २८, ३२ ॥

भूमि पर खड़े हुए खर को श्रीराम ने प्रथम तो कोमल फिर कठोर वाणी में उपदेश दिया एवं भर्त्सना की। उनकी वाणी धर्म एवं नीति से युक्त थी—

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम्।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत्॥ २९, १॥

लोभात् पापानि कुर्वाणः कामाद् वा यो न बुध्यते।
हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव॥ २९, ५॥

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः॥ २९, ७॥

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम्॥ २९, ८॥

न चिरात् प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर॥ २९, ९॥

अद्य भित्त्वा मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः।
विदार्य निपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः॥ २९, १०॥

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः।
स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत्॥ ३०, १॥

नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा॥ ३०, ५॥

खर ने श्रीराम से कहा कि कालपाश से बंधे पुरुष की इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं, अतः कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। वही हाल, राम, तेरी है—

कालापाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः॥ ३०, १५॥

श्रीराम के बाणों की मार से खर की देह से प्रचुर रुधिर निकला और वह विकल हो गया—

तस्य बाणान्तराद् रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम्।
गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः॥ ३०, २१॥

विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम्॥ ३०, २२॥

अग्निज्वाला के समान हो उन शराग्नि ने उसके प्राण ले लिये—

ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्।

खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥ ३०, २४ ॥

स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः ।
रामेण धनुरादाय खरस्योरसि चापतत् ॥ ३०, २६ ॥

स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना ।
रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥ ३०, २७ ॥

खर दूषणादि के वध से महर्षियों और देवताओं की प्रसन्नता—इसी बीच सीता सहित लक्ष्मण के गिरिदुर्ग से आश्रम में पहुँचना—

एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ।
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥ ३०, ३६ ॥

स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ।
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ।
गिरिदुर्गाद् विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी ॥ ३०, ३७ ॥

जनस्थान के राक्षसों में से अकम्पन किसी प्रकार जान बचाकर लङ्का पहुँचा और उसीने रावण को जनस्थान के राक्षसों की विनाश कथा सुनायी—

जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः ।
खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः ॥ ३१, २ ॥

पुत्रो दशरथस्यास्ति सिंहसंहननो युवा ।
रामो नाम महास्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः ॥ ३१, ११ ॥

श्यामः पृथुयशाः श्रीमानतुल्यबलविक्रमः ।
हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः ॥ ३१, १२ ॥

रावण ने अकम्पन से पूछा—"क्या देवतासहित इन्द्र के साथ श्रीराम ने जनस्थान पर चढ़ाई की" ?—

स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह ।
उपयातो जनस्थानं ब्रूहि कच्चिदकम्पन ॥ ३१, १३ ॥

अकम्पनने रावण को श्रीराम की महती शक्तिसम्पन्नता का विशद वर्णन सुनाया—

रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ।
दिव्यास्त्रगुणसम्पन्नः परं धर्मं गतो युधि ॥ ३१, १५ ॥

तस्यानुरूपो बलवान् रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनम् ।
कनीयांल्लक्ष्मणो भ्राता राकाशशिनिभाननः ॥ ३१, १६ ॥

स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा।
श्रीमान् राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् ॥ ३१, १७ ॥

येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः।
तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम् ॥ ३१, १९ ॥

इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ ॥ ३१, २० ॥

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥ ३१, २३ ॥

सतारग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत्।
असौ रामस्तु सीदन्ति श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ ३१, २४ ॥

भित्त्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद् विभुः।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥ ३१, २५ ॥

संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशः।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥ ३१, २६ ॥

न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥ ३१, २७ ॥

श्रीराम अवध्य हैं—

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥ ३१, २८ ॥

अकम्पन के विचार से श्रीराम पर विजय का एकमात्र उपाय विश्वसुन्दरी सीता का अपहरण करना था—

भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा।
श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता ॥ ३१, २९ ॥

तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने।
सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति ॥ ३१, ३१ ॥

रावण को यह सलाह अच्छी लगी और प्रसन्न मुद्रा में वह बोला, "कल ही मैं वैदेही को हरण कर इस पुरी में ले आऊंगा"—

बाढं कल्यं गमिष्यामि ह्येकः सारथिना सह।
आनेष्यामि च वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ॥ ३१, ३३ ॥

रथ पर सवार हो रावणका मारीच के आश्रम की ओर जाना—

तदेवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः।
रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ॥ ३१, ३४ ॥

मारीच के लेह्य भोज्य द्वारा रावण का सत्कार करना—

स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत्।
मारीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३१, ३६ ॥

मारीच ने पूछा, "कुशल तो है न ? तुम उतावले में आये हो, इससे शङ्का होती है"—

कच्चित् सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसाधिप।
आशङ्के नाधिजाने त्वं यतस्तूर्णमुपागतः ॥ ३१, ३८ ॥

रावण ने कहा, "श्रीराम ने जनस्थान के आरक्षियों को मार डाला है। मैं उसकी भार्या का हरण करना चाहता हूं। उस काम में तुम मेरा साचिव्य करो"—

आरक्षो मे हतस्तात रामेणाक्लिष्टकारिणः।
जनस्थानमवध्यं तत् सर्वं युधि निपातितम् ॥ ३१, ४० ॥
तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे ॥ ३१. ४१ ॥

मारीच ने रावण से कहा, "जिसने तुम्हें सीता को हरण की सलाह दी है वह तुम्हारा मित्र रूप में शत्रु है, तुम सुख से लङ्का में विहार करो, और श्रीराम वन में"—

आख्याता केन वा सीता मित्ररूपेण शत्रुणा।
त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः ॥ ३१, ४२ ॥
'सीतामिहानयस्वेति' को ब्रवीति ब्रवीहि मे।
रक्षो लोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति ॥ ३१, ४३ ॥

असौ रणान्तः स्थितिसंधिबालो विदग्ध रक्षोमृगहा नृसिंहः ॥
सुप्तस्त्वया बोधयितुं न शक्यः शराङ्गपूर्णो निशितासिदंष्ट्रः ॥ ३१, ४७ ॥
प्रसीद लंकेश्वर राक्षसेन्द्र लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं रामः सभार्यो रमतां वनेषु ॥ ३१, ४९ ॥

मारीच के समझाने पर रावण का लङ्का लौट आना—

एव मुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः।
न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम् ॥ ३१, ५० ॥

मारीच के समझाने पर तो रावण लौट ही गया था पर फिर उसकी बहन शूर्पणखा ने अपनी विरूपिता दिखाई और स्वयं रावण में कई राजगुणों के अभाव दिखलाये। (इससे ज्ञात होता है कि स्वयं शूर्पणखा कितनी अच्छी कूटनीति जानती थी)—

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः ।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥ ३३, २ ॥

तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तं गर्वितं शठम् ।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥ ३३, १५ ॥

अतिमानिनमग्राह्यमात्मसम्भावितं नरम् ।
क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥ ३३, १ ॥

नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च ।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥ ३३, १७ ॥

शुष्ककाष्ठैर्भवेत् कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात् परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद् वसुधाधिपैः ॥ ३३, १८ ॥

उपयुक्त यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा ।
एवं राज्यात् परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥ ३३, १९ ॥

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥ ३३, २० ॥

नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥ ३३, २१ ॥

त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ।
यस्य तेऽविदितैश्चारैरक्षसां सुमहान् वधः ॥ ३३, २२ ॥

शूर्पणखा से कही बातों पर रावण ने अपनी बुद्धि के अनुसार विचार किया और चिन्ता में पड़ गया—

इति स्वदोषान् परिकीर्तितांस्तया समीक्ष्य बुद्ध्या क्षणदाचरेश्वरः ।
धनेन दर्पेण बलेन चान्वितो विचिन्तयामास चिरं स रावणः ॥ ३३, २४ ॥

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवन्तीं परुषं वचः ।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥ ३४, १ ॥

"कश्च रामः कथं वीर्यः किं रूपः किं पराक्रमः ।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥ ३४, २ ॥

आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः ।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३४, ३ ॥

रावण ने शूर्पणखा से श्रीराम के बल को तथा आयुध को पूरी जानकारी देने को कहा—

ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ।
'दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ३४, ५ ॥

कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ।
शक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम् ॥ ३४, ६ ॥

दीप्तान् क्षिपति नाराचान् सर्पानिव महाविषान् ।

श्रीराम के सौन्दर्यगुण, एवं पराक्रम का विवरण सुनाया शूर्पणखा ने—

नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ३४, ७ ॥
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे ॥

सीता के अद्वितीय रूपगुण का विवरण दिया, राक्षसी शूर्पणखा ने । उसने यह भी कहा कि उसी सीता को लाने के प्रयास में वह विरूपा हुई—

रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ३४, १४ ॥

सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी ।
देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा ॥ ३४, १६ ॥

नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी ।
तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥ ३४, १७ ॥

यस्य सीता भवेद् भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् ।
अभिजीवेत् स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् ॥ ३४, १८ ॥

सा सुशीला वपुः श्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः ॥ ३४, १९ ॥

तां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम् ॥ ३४, २० ॥
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज ॥ ३४, २१ ॥

'पूर्व घटना को विचार कर ही जैसा अच्छा हो वैसा करो' शूर्पणखा ने कहा—

निशम्य रामेण शरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगतान् निशाचरान् ।
खरं च दृष्ट्वा निहतं च दूषणं त्वमद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि ॥३४, २३॥

शूर्पणखा की कूटनीतिज्ञता सफल हुई। उसकी बात से कामी रावण बहुत प्रभावित हुआ (कार्यान्वयन के लिये चल पड़ा)—

कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम्।
पिशाचवदनैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः॥ ३५, ६॥

कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः।
विद्युन्मण्डलवान् मेघः सबलाक इवाम्बरे॥ ३५, १०॥

रावण फिर दुबारा मारीच के आश्रम में पहुँचा—

तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम्।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम्॥ ३५, ३८॥

मारीच ने रावण का स्वागत किया—

स रावणः समागम्य विधिवत् तेन रक्षसा।
मारीचेनार्चितो राजा सर्वकामैरमानुषैः॥ ३५, ३९॥

मारीच से रावण ने विनीत भाव से अपना अभिप्राय कह सुनाया और अपने माया-बल द्वारा काञ्चन-मृग बनकर उसकी सहायता करने का आग्रह किया—

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान् हि परमा गतिः॥३६, १॥

वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यसि सदृशस्तव।
उपायतो महान् शूरो महामायाविशारदः॥ ३६, १६॥

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतविन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर॥ ३६, १८॥

त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम्।
'गृह्यतामिति' भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति॥ ३६, १९॥

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव॥ ३६, २०॥

श्रीराम की बात सुनते ही मारीच का मुख सूख गया और वह भयविह्वल हो गया। वह तो श्रीराम के पराक्रम का जानकार था, इसलिये वह रावण से सात्विक बातें कहने लगा, जो उसके हित में थीं—

तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः।
शुष्कं समभवद् वक्त्रं परित्रस्तो बभूव च॥ ३६, २२॥

स रावणं त्रस्तविषण्णचेता महावने रामपराक्रमज्ञः ।
कृताञ्जलिस्तत्त्वमुवाच वाक्यं हितं च तस्मै हितमात्मनश्च ॥३६, २४॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ ३७, १ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ ३७, २ ॥

अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात् ।
परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥ ३८, २६ ॥

भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षसान् ।
मानं वृद्धिं च राज्यं च जीवितं चेष्टमात्मनः ॥ ३८, ३१ ॥

मारीच ने कहा "श्रीराम के साथ वैर ठानने से तुम्हारा विनाश होगा, सीता अपहरण बन्धुबान्धवसहित तुम्हारे नाश कार कारण बनेगा"—

कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च ।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविग्रहम् ॥ ३८, ३२ ॥

निवार्यमाणः सुहृदं मया भृशं प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि ।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो यमक्षयं रामशरास्तजीवितः ॥३८, ३३ ॥

मारीच ने अपनी दशा का वर्णन किया (रावण से राम वैर का परिणाम की दशा बताई)—

वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ ३९, १५ ॥

राममेव हि पश्यामि रहिते राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामि विचेतनः ॥ ३९, १६ ॥

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण ।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे ॥ ३९, १८ ॥

बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनिष्टाः सपरिच्छदाः ॥ ३९, २१ ॥

रामश्च हि महातेजा महासत्त्वो महाबलः ।
अपि राक्षसलोकस्य भवेदन्तकरोऽपि हि ॥

कालपाशबद्ध रावण को मारीच की हितबात अच्छी नहीं लगी । उसने कुपित हो अपनी योजना को कार्यान्वित कराने के लिये जोर [illegible]

मारीचस्य तु तद् वाक्यं क्षमं युक्तं च रावण।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥ ४०, १ ॥

दोष गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि।
अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ४०, ८ ॥

सम्पृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता।
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥ ४०, ९ ॥

वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम्।
उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः ॥ ४०, १० ॥

सावमर्दं तु यद्वाक्यमथवा हितमुच्यते।
नाभिनन्देत तद् राजा मानार्थी मानवर्जितम् ॥ ४०, ११ ॥
पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ ४०, १२ ॥

औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्डं प्रसन्नताम्।
धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर ॥ ४०, १३ ॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजितविन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥ ४०, १७ ॥

प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥ ४०, १८ ॥

त्वां हि मायामयं दृष्टवा काञ्चन जातविस्मया।
'आनयैनमिति क्षिप्रं राम वक्ष्यति मैथिली ॥ ४०, १९ ॥

अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर।
'हा सीते लक्ष्मणेत्येवं' रामवाक्यानुरूपकम् ॥ ४०, २० ॥
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः।
अनुगच्छति सम्भ्रान्तः सौमित्रेरपि सौहृदात् ॥ ४०, २१ ॥

अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम्।
आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥ ४०, २२ ॥

बात नहीं मानने पर रावण ने मारीच को कठोर धमकी दी। उसने उससे कहा कि राम द्वारा मारे जाने में तो सन्देह भी है। यह तो अभी ही मार डालेगा—

प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम्।
लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥ ४०, २५ ॥

नोचेत् करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै ।
एतत् कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ।
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥ ४०, २६ ॥

आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुद्धतः ।
एतद् यथावत् परिगण्य बुद्ध्या यदत्र पथ्यं कुरु तत् तथा त्वम् ॥४०,२७॥

अन्त में मारीच ने रावण के प्रस्ताव को मान लिया, और वह विल्कुल निर्भय होकर भविष्य में होनेवाले विनाश का उसने नग्नचित्र ही उपस्थित कर दिया—

केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना ।
यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥ ४१, ५ ॥

वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण ।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ ४१, ६ ॥

अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथ्यमाश्रितः ।
निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यते ॥ ४१, ७ ॥

राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर ।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥ ४१, १० ॥

राज्यं पालयितु शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर ।
न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥ ४१, ११ ॥

वहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥ ४१, १३ ॥

मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात् त्वां वधिष्यति ।
अनेन कृतकार्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः ॥ ४१, १७, ॥

दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय ।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम् ॥ ४१, १८ ॥

आनयिष्यसि चेत् सीतामाश्रमात् सहितो मया ।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥ ४१, १९ ॥

निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा न मृष्यसे वाक्य मद निशाचर ।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥४१, २० ॥

प्रस्ताव के कार्यान्वयन में अपनी मृत्यु भी उसके सामने थी—

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः ।

गच्छावेत्यब्रवीद् दीनो भयाद् रात्रिचरप्रभोः ॥ ४२, १ ॥

दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा ।
मद्वधोद्यतशस्त्रेण निहतं जीवितं च मे ॥ ४२, २ ॥

नहि रामं पराक्रम्य जीवन् प्रतिनिवर्तते ।
वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ॥ ४२, ३ ॥

रावण के साथ आकर मारीच ने काञ्चन मृग का रूप धारण कर लिया और वह सीता के आश्रम के आसपास विचरने लगा। अपूर्व मृगको देखकर सीता को मोह हो गया—

स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥ ४२, १४ ॥

मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ।
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥ ४२, १९ ॥

अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥ ४२, ३५ ॥

सोने का मृग देख सीता ने चिल्लाकर दोनों भाइयों को आयुध के साथ आने को पुकारा—

प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी ।
भर्तारमपि चाक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥ ४३, २ ॥

उसे देखते ही लक्ष्मण ने कहा, 'मृगरूप में यह राक्षस मारीच है'—

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥ ४३, ५ ॥

विस्मित तथा मोहित सीता ने श्रीराम से कहा, "आर्य, इसे ला दें, यह हमारा क्रीड़ा का साधन बनेगा"—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥ ४३, १० ॥

कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥ ४३, २१ ॥

सीता की प्रेरणा से तथा स्वयं श्रीराम को भी उस विचित्र मृग को देख कर विस्मय हो गया—

बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम् ।
इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् ॥ ४३, २३ ॥

श्रीराम ने कहा, 'लक्ष्मण, यह सुन्दर मृग आँखों के सामने आकर आज जीवित नहीं रह पायगा—इस मृगरत्न को तो प्राप्त करना ही चाहिये। यदि मारीच ही हो तब भी वह आज जीता बचकर नहीं जायगा। सिर्फ तुम यहां वैदेही की रक्षा में सजग रहना—

पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लासितामिमाम् ।
रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥ ४३, २५ ॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥ ४३, ३० ॥
तत् सारमखिलं नृणां धनं निचयवर्धनम् ।
मनसा चिन्तितं सर्वं यथा शुक्रस्य लक्ष्मण ॥ ४३, ३३ ॥
अर्थी येनार्थकृत्येन संव्रजत्यविचारयन् ।
तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाः प्राहुरर्थ्याः सुलक्ष्मण ॥ ४३, ३४ ॥
भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनेव मा गतः ।
इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ॥ ४३, ४६ ॥
प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण ।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः ॥४३, ५१॥

ऐसा कह श्रीराम ने शस्त्र धारण कर मृगा के पीछे धावा किया। मारे जाने पर मारीच ने अपना स्वाभाविक रूप प्रकट किया—

ततस्त्रिविनतं पापमादायात्मविभूषणम् ।
आवध्य च कपालौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥ ४४, २ ॥
संधाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली ।
तमेव मृगमुद्दिश्य श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ ४४, १४ ॥
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ।
शरीरं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥ ४४, १५ ॥
मारीचस्यैव हृदयं विभेदाशनिसंनिभः ।
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत् स भृशातुरः ॥ ४४, १६ ॥

मरते समय उसने श्रीराम के स्वर में, "हा सीते, हा लक्ष्मण" कहकर पुकारा। श्रीराम ने सोचा, "हा, सीते, हा लक्ष्मण" की आवाज सुनकर उन दोनों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा ! वह चिन्तित हो गये—

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम्।
सदृशं राघवस्येव "हा सीते लक्ष्मणेति च" ॥ ४४, १९ ॥

हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम्।
ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥ ४४, २४ ॥

लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥ ४४, २५ ॥

तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम्।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम् ॥ ४४, २६ ॥

अन्य मृगादिकों को मार, उनके मांस को ले श्रीराम शीघ्रता पूर्वक अपने आश्रम की ओर बढ़े —

निहत्य पृषतं चान्यं मांसमादाय राघवः।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुख प्रति ॥ ४४, २७ ॥

सीताने कहा, "लक्ष्मण, तेरे भाई संकट में पड़े हैं, जाकर उन्हें बचाओ"—

आर्तस्वरं तु त भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता "गच्छ जानीहि राघवम् ॥ ४५, १ ॥

आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम" ॥ ४५, ३ ॥

भाई के आदेश पालनार्थ वह वहां से नहीं टले—

न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥ ४५, ४ ॥

सीता लक्ष्मण को कठोर वाक्य-वज्रों से आहत करने लगीं— उन्होंने कहा, "लक्ष्मण, तेरी इच्छा है कि राम संकट में पड़ जायें और तब सीता पर कब्जा कर लिया जाय। सौतेले भाई हो न, पर तेरी कामना कभी भी पूरी नहीं होगी" तुम्हारे सामने राम के बिना अपने प्राण को छोड़ दूँगी एक क्षण भी जीवित न रहूंगी।

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥ ४५, ५ ॥

इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥ ४५, ६ ॥

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन ॥ ४५, २१ ॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।

रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥ ४५, २२ ॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद् भवेत् ।
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥ ४५, २३ ॥
सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि ।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥ ४५, २४ ॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा ।
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम् ॥ ४५, २५ ॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् ।
समक्षं तव सौमित्रे प्राणां त्यक्ष्याम्यसंशयम ॥ ४५, २६ ॥
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥

इतनी कठोर बात सुनकर लक्ष्मण ने उनसे कहा, "श्रीराम अजेय हैं। उन पर कोई संकट नहीं है। आपने ऐसी बातें कहीं हैं, जिनके उत्तर तो हो सकते हैं, पर आप मेरी पूज्या हैं, आपका दोष ही क्या है, नारी का तो यह स्वभाव ही है"—

इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ॥ ४५, २७ ॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः ।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम ॥ ४५, २८ ॥
वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि ।
स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥ ४५, २९ ॥
विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः ।
न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ॥ ४५, ३० ॥
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम् ।

वनवासियों को साक्षी रखकर लक्ष्मण ने सीता से कहा, "मैं अपने गुरु की आज्ञा पालन कर रहा था। अस्तु मैं तो भाई के पास जा रहा हूँ, आप विनष्ट होने चली हैं। शङ्का है, शायद लौटकर आपको श्रीराम के साथ देख भी सकूंगा या नहीं ?

उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ॥ ४५, ३१ ॥
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ।
धिक् त्वमद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे ॥ ४५, ३२ ॥
स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ।
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ॥ ४५, ३३ ॥

निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येय पुनरागतः ॥ ४५, ३४ ॥

इतने में रावण ने आकर सीता का परिचय पूछा और उसने उनके रूप-गुण की प्रशंसा की—

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः ।
स विकाङ्क्षन् भृशं रामं प्रतस्थे नचिरादिव ॥ ४६, १ ॥

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥ ४६, २ ॥

स तां पद्मपलाशाक्षीं पीतकौशेयवासिनीम् ।
अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥ ४६, १३ ॥

दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥ ४६, १४ ॥

ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने ।
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥ ४६, १७ ॥

कासि कस्य कुतश्च त्वं किं निमित्तं च दण्डकान् ।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान् ॥ ४६, ३१ ॥

ब्राह्मण जानकर सीता ने उसका समुचित स्वागत किया और उसे ठहरने को भी आमन्त्रित किया —

द्विजातिवेषेण समीक्ष्य मैथिली समागतं पात्रकुसुम्भधारिणम् ।
अशक्यमुद्द्वेष्टुमुपायदर्शनान्न्यमन्त्रयद् ब्राह्मणवत् तथागतम् ॥४६, ३५॥
निमन्त्र्यमाणः प्रतिपूर्णभाषिणीं नरेन्द्रपत्नीं प्रसमीक्ष्य मैथिलीम् ।
प्रसह्य तस्या हरणे दृढं मनः समर्पयामास वधाय रावणः ॥४६, ३७॥

सीता ने उसे अपना पूरा परिचय दिया और अपने पति का स्वभाव बताया—

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।
सीतानाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया ॥ ४७, ३ ॥

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ॥ ४७, १० ॥

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्नचानृतम् ।
एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं ध्रुवमनुत्तमम् ॥ ४७, १७ ॥

रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा।
स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ ४७, १९ ॥

समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम् ॥ ४७, २२ ॥

रुरून् गोधान् वराहांश्च हत्वाऽऽदायामिषं बहु।

सीता ने तापसरूप रावण का भी नाम गोत्र पूछा—

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ४७, २३ ॥

एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥ ४७, २४ ॥

सीता के प्रश्नोतर पर रावण का अपना पूरा परिचय देना—

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥ ४७, २६ ॥

त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम्।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥ ४७, २७ ॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥ ४७, २९ ॥

सती सीता ने अपने पति के रूप गुण और अप्रमेय बल रावण को बताया और उनकी तुलना में रावण को नीचातिनीच समझा—

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ ४७, ३३ ॥

पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम्।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता ॥ ४७, ३५ ॥

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥ ४७, ३७ ॥

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥ ४७, ४५ ॥

उन काँपती सीता को और भी भयभीत करने के लिये अपनी रौद्रता के वर्णन के साथ ही पूरा परिचय दिया और उन्हें अपने को पतिरूप में स्वीकार करने का प्रलोभन भी दिया—

तां वेपमानामुपलक्ष्य सीतां स रावणो मृत्युसमप्रभावः।
कुलं बलं नाम च कर्म चात्मनः समाचचक्षे भयकारणार्थम् ॥ ४७, ५० ॥

भ्राता वैश्रवणस्याहं सपत्ना वरवर्णिनि ।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ ४८, २ ॥

यस्य देवाः सगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
विद्रवन्ति सदा भीता मृत्योरिव सदा प्रजाः ॥ ४८, ३ ॥

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा ।
सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ४८, १० ॥

तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह ।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि ॥ ४८, १३ ॥

तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा ।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना ॥ ४८, १६ ॥

रावण ने श्रीराम की हीनता और अपनी श्रेष्ठता बताई—

अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः ।
तव भाग्येन सम्प्राप्त भजस्व वरवर्णिनि ॥ ४८, १९ ॥

सीता ने उससे कहा, "किस मुंह से अपने को सर्वदेवनमस्कृत कुबेर का भाई बताते हो जब कि तुम्हारे काम इतने नीच हैं ? मेरे अपहरण से तुम कभी भी जीवित न रहोगे" —

कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ॥ ४८, २१ ॥

अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम् ।
नहि रामस्य भार्यां गामानीय स्वस्तिमान् भवेत् ॥ ४८, २३ ॥

सीता की बात सुनकर रावण ने अपना असल रूप प्रकट किया—

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
हस्ते हस्तं समाहृत्य चकार सुमहद् वपुः ॥ ४९, १ ॥

दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः ।
स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत् ॥ ४९, ८ ॥

मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव ।
नैव चाहं क्वचिद् भद्रे करिष्ये तव विप्रियम् ॥ ४९, १२ ॥

त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम् ।
राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम् ॥ ४९, १३ ॥

कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि ।
यः स्त्रियो वचनाद् राज्यं विहाय ससुहृज्जनम् ॥ ४९, १४ ॥
अस्मिन् व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः ॥ ४९, १४ ॥

इसके बाद रावण ने उन्हें गोद में उठाकर रथपर बिठा लिया—

ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः ।
अंकेनादाय वैदेहीं रथमारोपयत् तदा ॥ ४९, २० ॥

विवशा सीता फूट-फूट कर विलाप करने लगी—

सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता ।
समाक्रन्दद् भयपरा दुःखोपहतया गिरा ॥ ४९, ३७ ॥

सीता ने जटायु को देखकर उन्हें श्रीराम और लक्ष्मण को अपने हरण का समाचार सुनाने की विनती की—

जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा ॥ ४९, ३८ ॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत् सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४९, ४० ॥

औंघाये हुए जटायु ने रावण को और उसके वश में सीता को देखा—

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे ।
निरैक्षद् रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ ५०, १ ॥

जटायु ने बड़े ही संयतभाव से रावण को समझाया कि वह नीति एवं धर्म विरुद्धकार्य न करे। उन्होंने नारी धर्षणा को विगर्हित कार्य बताया। उन्होंने श्रीरामका पराक्रम भी कह सुनाया। अपने सामने ऐसा कुत्सित कार्य उसे नहीं करने देंगे। भला ऐसा चोरी का पापकर्म कौन कर सकता है, ऐसा उनने कह सुनाया—

रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥ ५०, ७ ॥
न तत् समाचरेद् धीरो यत् परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथाऽऽत्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥ ५०,८ ॥
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनु राजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ॥ ५०, ९ ॥
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।

धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥ ५०, १० ॥

कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रमार्जितुम् ।

नहि दुष्टात्मनामार्यमावसत्यालये चिरम् ॥ ५०, १२ ॥

क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा ।

दहेद् दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५०, १६ ॥

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।

तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥ ५०, १९ ॥

यत्कृत्वा न भवेद् धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम् ।

शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत् ॥ ५०, २० ॥

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।

हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥ ५०, २२ ॥

यथा त्वया कृतं कर्म भीरुणा लोकगर्हितम् ।

तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥ ५१, २९ ॥

पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः को नु तत् पुमान् ।

कुर्वीत लोकाधिपतिः स्वयंभूर्भगवानपि ॥ ५१, ३२ ॥

जब रावण ने उनकी बातों को नहीं माना तब उन्होंने उस पर आक्रमण किया और उसे क्षतविक्षत कर धराशायी कर दिया—

एवमुक्त्वा शुभं वाक्यं जटायुस्तस्य रक्षसः ।

निपपात भृशं पृष्ठे दशग्रीवस्य वीर्यवान् ॥ ५०, ३३ ॥

तं गृहीत्वा नखैस्तीक्ष्णैर्विददार समन्ततः ।

अधिरूढो गजारूढो यथा स्याद् दुष्टवारणम् ॥ ५०, ३४ ॥

इस प्रकार राक्षसों के तथा पक्षियों के प्रमुखों में कुछ काल घोर संग्राम हुआ—

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः ।

राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रमुखस्य च ॥ ५०, ४१ ॥

गृद्धराज की थकी दशा में उसने उनके पंख, पैर और छाती तलवार से काट डाले—

तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः ।

पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खडगमुधृत्य सोऽच्छिनत् ॥ ५०, ४२ ॥

फिर तो गृद्धराज को धराशायी देखकर जनकनन्दिनी रोने ही लगी—

ततस्तु तं पत्ररथं महीतले निपातितं रावणवेगमर्दितम् ।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना रुरोद सीता जनकात्मजा तदा ॥५०, ४६॥

सीता का करुण विलाप—

न नूनं राम जानासि महद् व्यसनमात्मनः ।
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ॥ ५२, ५ ॥

अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः ।
शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद् विहंगमः ॥ ५२, ४ ॥

त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना ।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके ॥ ५२, ७ ॥

इसके बाद उसने रोती और कांपती सीता के केश पकड़ कर उठा लिया और सारा जगत् इस अपहरण पर रो पड़ा—

क्रोशन्तीं रामरामेति रामेण रहितां वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः ॥ ५२, १० ॥

प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम् ।
जगत् सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ॥ ५२, ११ ॥

तदा भृशार्तां बहु चैव भाषिणीं विलापपूर्वं करुणं च भामिनीम् ।
जहार पापस्तरुणीं विचेष्टितीं नृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ ५३, २६ ॥

मार्ग में जाती हुई जानकी ने किसी को सहायक न देख, एक पर्वत पर पांच वानरों को बैठे देख अपने कौशेय उत्तरी और कुछ आभरणों को गिरा दिया ताकि वे किसी प्रकार श्रीराम को सूचित कर सकें—

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती ।
ददर्श गिरिश्रृङ्गस्थान् पञ्चवानरपुङ्गवान् ॥ ५४, १ ॥

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ ५४, २ ॥

मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ५४, ३ ॥

सम्भ्रमात् तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ।
पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ५४, ४ ॥

जानकी को लेकर रावण जनस्थान में गुप्तरूप से टिके राक्षसों के साथ लङ्का पहुँचा—

ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसा महार्थमष्टावभिवाद्य रावणम्।
विहाय लङ्कां सहिताः प्रतस्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥५४,२९॥

इस प्रकार सीता को हरण कर पापी रावण ने श्रीराम का घोर वैर मोल ले लिया—

ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणः सुसम्प्रहृष्टः परिगृह्य मैथिलीम्।
प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमं बभूव मोहान्मुदितः स रावणः ॥ ५४,३० ॥

लङ्का जाकर रावण ने सीता को अपना अभूतपूर्व सजा सजाया भवन दिखाया। अपनी समृद्धिका वर्णन कर उसका सर्व सर्वा बताया और सीता को अपनी पत्नी बनने को कहा—

दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम्।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥ ५५, १३ ॥
"दशराक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः।
वर्जयित्वा जरावृद्धान् बालांश्च रजनीचरान् ५५, १४ ॥
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम्।
सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरःसरम् ॥ ५५, १५ ॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥ ५५, १७ ॥

रावण का धोखा देकर सीता को समझाना (सीता तो विवाहिता थीं)—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते।
आर्षोऽयं देवि निष्पन्नो यस्त्वामभिभविष्यति ॥ ५५, ३४ ॥

फिर सीता के पैरों पर अपना माथा टेक दिया, जिसमें वह उसकी बातें मान जाँय। उसने आगे कहा कि रावण ने आज तक किसी स्त्री के पैरों में शिर नहीं झुकाया है। मेरी प्रार्थना निष्फल न जाय—

एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ।
प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते ॥ ५५, ३५ ॥
इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमाणेन भाषिता।
न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्री प्रणमेत ह ॥ ५५, ३६ ॥

रावण की बात सुनकर सीता का निर्भीक प्रत्युत्तर तथा भर्त्सना—

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्षिता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥ ५६, १ ॥

"राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः ।
सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥ ५६, २ ॥

रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥ ५६, ३ ॥

उन्होंने कहा, "यदि श्रीराम के समक्ष तूने मेरा हरण किया होता तो, खर की तरह रणभूमि में तू भी धराशायी हुआ होता—

प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् ।
शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ॥ ५६, ५ ॥

स हि देवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः ।
निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ॥ ५६, १४ ॥

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः ।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः ॥ ५६, १६ ॥

मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम ।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥ ५६, १७ ॥

रावण ने कहा, "बारह मास निश्चित करता हूँ । बात नहीं मानने पर उसके बाद पाचक तुम्हारे माँस काटकर कलेवा तैयार करेंगे—

शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि ।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनी ॥ ५६, २४ ॥
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥ ५६, २५ ॥

उसके बाद उसने राक्षसियों को अशोकवाटिका में घेरकर रखने को कहा—

अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति ।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥ ५६, ३० ॥

राक्षसियों से घिरी सीता सदैव दुःखी चिन्ताग्रस्त होकर अपने पति और देवर के विषय में सोचा करती थीं—

शोकेन महता ग्रस्ता मैथिली जनकात्मजा ।
न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा ॥ ५६, ३५ ॥

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता ।
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं विचेतनाभूद् भयशोकपीडिता ॥५६. ३६ ॥

उधर पञ्चवटी आश्रम में सीता की कठोर वाणी से आहत लक्ष्मण श्रीराम के पास चले । रास्ते में लौटते हुए श्रीराम ने अकेले लक्ष्मण को आते देख उनसे कहा, "लक्ष्मण तुमने मेरी बात न मान, सीता के विना यहाँ चले आये, सम्प्रति सीता अब राक्षसों द्वारा खा न ली गई हो ?

स दृष्टवा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ ५८, १ ॥

प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह ।
क सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥ ५८, २ ॥

ब्रूहि लक्ष्मण वैदेही यदि जीवति वा न वा ।
त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी ॥ ५८, ११ ॥

वे फिर बोले, "राक्षस जब मेरे स्वर में 'हा सीते हा लक्ष्मण कह कर मरा, तभी मुझे यह आशङ्का पैदा हुई थी कि सीता की प्रेरणा से तुम यहाँ अवश्य आ जाओगे । ऐसा कह वे अपने आश्रम में लौट आये—

अतश्च मन्ये वैदेह्या सस्वरः सदृशो मम ।
त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ॥ ५८, १४ ॥

इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सह लक्ष्मणः ॥ ५८, १८ ॥

स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशाननुसृत्य कांश्चित् ।
एतत्तदित्येव निवासभूमौ प्रहृष्टरोमा व्यथितो बभूव ॥ ५८, २० ॥

फिर भी लक्ष्मण से बोले "मैंने विश्वास किया था कि तुम मेरे आदेश पर अडिग रहोगे और इसीलिये उसे तुम पर छोड़ा था"—

तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम् ।
यदा सा तव विश्वासाद् वने विरहिता मया ॥ ५९, २ ॥

लक्ष्मण ने विनीत स्वर में कहा, "भैया, मैं स्वयं नहीं आया । सीता ने ही प्रेरित किया । जब मैं आपकी आज्ञा पर दृढ़ रहा—नहीं टला—तब उन्होंने ऐसी-ऐसी बातें कहीं, जो उन्हें न कहनी चाहिये थीं"—

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः ।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ५९, ६ ॥

आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम् ।
परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिर्गतम् ॥ ५९, ७ ॥

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली ।
'गच्छ गच्छेति' मामाशु रुदती भयविक्लवा ॥ ५९, ८ ॥

श्रीराम से लक्ष्मण ने कहा, "मैंने सीता को कहा कि भैया अपनी रक्षा के लिये किसी से ऐसा आर्त्तवचन नहीं कह सकते, वह तो अजेय हैं"—

विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति ।
'त्राहीति' वचनं सीते यस्त्रायेत् त्रिदशानपि ॥ ५९, ११ ॥

अलं विक्लवतां गन्तुं स्वस्था भव निरुत्सुका ।
न चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान् यो राघवं रणे ॥ ५९, १४ ॥

जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत् ।
अजेयो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः ॥ ५९, १५ ॥

भैया ! इस पर सीता देवी ने मेरे चरित्र पर आशंका प्रकट करती हुई कठोर शब्दों में अशोभनीय आघात पहुँचाया—

भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः ।
विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे ॥ ५९, १७ ॥

रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि ।
राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे ॥ ५९, १९ ॥

लक्ष्मण ने आगे कहा, 'सीता के ऐसा कहने पर मुझे क्रोध आ गया और मैं आपके निकट आ गया'—

एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः ।
क्रोधात् प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः ॥ ५९, २० ॥

श्रीराम ने कहा, 'स्त्री की बात पर रुष्ट होकर उसे अकेली छोड़ यहां चला आना अच्छा नहीं किया । तुम्हारे इस काम से मैं प्रसन्न नहीं हूँ'—

न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदसि मैथिलीम् ।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत् त्वमिहागतः ॥ ५९, २३ ॥

सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत् प्रचोदितः ।
क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम ॥ ५९, २४ ॥

शराहतेनैव तदार्तया गिरा स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम् ।
उदाहृतं तद्वचनं सुदारुणं त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम् ॥ ५९, २७ ॥

फिर दोनों भाइयों ने कुटिया में आकर देखा, वह सीता के बिना शून्य थी—

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः॥ ६०, ३॥

उद्भ्रमन्निव वेगेन विक्षिपन् रघुनन्दनः।
तत्र तत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्य समन्ततः॥ ६०, ४॥

ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा।
श्रिया विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव॥ ६०, ५॥

आश्रम की कुटिया में सीता को न पाकर श्रीराम विलाप करते करते कुछ मूर्छित हो गये। होश आने पर लक्ष्मण से कहा कि बताओ लक्ष्मण! रोती हुई मेरी प्रिया सीता कहाँ गई ?—

दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः।
रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च॥ ६१, १॥

अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः।
उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ॥ ६१, २॥

क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता।
केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया॥ ६१, ३॥

सीतया रहितोऽहं वै न हि जीवामि लक्ष्मण।
वृत शोकेन महता सीताहरणजेन माम्॥ ६१, ४॥
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता।
कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः॥ ६१, ७॥
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः॥ ६१, ८॥
एवं स विलपन् रामः सीताहरणकर्षितः।
दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत्॥ ६१, २७॥

बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः।
'हा प्रियेति' विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः॥ ६१, २९॥

नूनं विनादं कुररीव दीना सा भुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा॥६३, ११॥
गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम्।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि नैकाकिनी याति हि सा कदाचित्॥६३,१३॥
आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ! लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्?।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥६३, १६॥

लक्ष्मण ने उन्हें ढाढ़स बंधाया और चिन्ता त्याग कर साहस धारण करने को कहा—

इतीव तं शोकविधेयदेहं रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम् ।६३,१८।

शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु ॥६३, १९॥

इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं ब्रुवन्तमार्तो रघुवंशवर्धनः।
न चिन्तयामास धृतिं विमुक्तवान् पुनश्च दुःखं महदभ्युपागमत् ।६३,२०।

लक्ष्मण की बातों से श्रीराम को थोड़ी देर के लिए शान्ति तो मिली किन्तु, फिर वे शोकाभिभूत हो गये, तब लक्ष्मण ने उन्हें सीता को ढूंढ़ने की सलाह दी—

उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमातवत्।
'क्व सीतेति' त्वया पृष्टा यथेमे सहसोत्थिताः ॥ ६४, २१ ॥

दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः।
साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम् ॥ ६४, २२ ॥

यदि तस्यागमः कश्चिदार्या वा साऽथ लक्ष्यते।

वे मृगाओं के संकेत पर दक्षिण को बढ़े—

'बाढमित्येव' काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम् ॥ ६४, २३ ॥

थोड़ी दूर पर उन्होंने कुचली गई फूलमाला को देख उसे पहचान कर बोले कि ये फूल अपने सीता ही को दिये थे—

एवं सम्भाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ ॥ ६४, २४ ॥
वसुन्धरायां पतितपुष्पमार्गमपश्यताम्।
पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले ॥ ६४, २५ ॥

उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण ॥ ६४, २६ ॥

अपविद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने।
मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी ॥ ६४, २७ ॥

अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम्।

श्रीराम ने पर्वतों से पूछा, 'क्या तुमने सीता को देखा है ? मुझे शीघ्र बताओ नहीं तो तुम्हें विध्वंस कर डालूंगा'—

कच्चित् क्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ६४, २८ ॥

रामा रम्यवनोद्देशे मया विरहिता त्वया ॥ ६४, २९ ॥
क्रुद्धोऽब्रवीद् गिरिं तत्र सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ६४, ३० ॥
तां हेमवर्णां हेमाङ्गीं सीतां दर्शय पर्वत ।
यावत् सानूनि सर्वाणि न ते विध्वंसयाम्यहम् ॥ ६४, ३१ ॥

इस प्रकार क्रोधाग्नि में जलते हुए श्रीराम ने वहाँ राक्षसों के तथा भागती हुई सीता के भी पदचिह्न देखे—

एवं परुषितो रामो दिधक्षन्निव चक्षुषा ।
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ॥ ६४, ३५ ॥
त्रस्तायाा रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः ॥ ६४, ३६ ॥
राक्षसेनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु ।
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ॥ ६४, ३७ ॥

आगे चल कर उन्होंने सीता के भूषणों के स्वर्णकण, जमीन पर गिरे रक्त-बिन्दु आदि दिखाकर लक्ष्मण से कहा कि अनुमान होता है कि राक्षसों ने उसे टुकड़े-टुकड़े कर खा डाला—

भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम् ।
सम्भ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥ ६४, ३८ ॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकबिन्दवः ।
भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च ॥ ६४, ३९ ॥
तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः ।
आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम् ॥ ६४, ४० ॥
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः ।
भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति ॥ ६४, ४१ ॥

क्रोध में श्रीराम ने कहा, कि मेरा क्रोध देवताओं, दैत्यों, पिशाचों और राक्षसों का विनाश कर संसार को परिवर्तन कर देगा—

नैव देवा न दैतेया न पिशाचा न राक्षसाः ।
भविष्यन्ति मम क्रोधात् त्रैलोक्ये विप्रनाशिते ॥ ६४, ६७ ॥
पुरेव मे चारुदतीमनिन्दितां दिशन्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलीम् ।
सदेवगन्धर्वमनुष्यपन्नगं जगत् सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥ ६४, ७७ ॥

श्रीराम के अभूतपूर्व क्रोध को आविर्भाव देख कर लक्ष्मण ने अञ्जलिबद्ध हो उन्हें समझाने का प्रयत्न किया—

तप्यमानं तदा रामं सीताहरणकर्शितम् ।
लोकानामभवे युक्तं सांवर्तकमिवानलम् ॥ ६५, १ ॥

वीक्षमाणं धनुः सज्यं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
दग्धुकामं जगत् सर्वं युगान्ते च यथा हरम् ॥ ६५, २ ॥

अदृष्टपूर्वं संक्रुद्धं दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥ ६५, ३ ॥

"प्रभो ! आपमें सारे सद्गुण एक साथ संनिविष्ट हैं । किसी एक के अपराध से सृष्टि का ही विनाश कर देना युक्तियुक्त नहीं है । नाथ ! पता लगाकर अपराधियों पर उचित प्रहार किया जायगा—

पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ।
न क्रोधवशमापन्नः प्रकृतिं हातुमर्हसि ॥ ६५, ४ ॥

चन्द्रे लक्ष्मीः प्रभा सूर्ये गतिर्वायौ भुवि क्षमा ।
एतच्च नियतं नित्यं त्वयि चानुत्तमं यशः ॥ ६५, ५ ॥

एकस्य नापराधेन लोकान् हन्तुं त्वमर्हसि ।
नतु जानामि कस्यायं भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ ६५, ६ ॥

नहि वृत्तं हि पश्यामि बलस्य महतः पदम् ।
नैकस्य तु कृते लोकान् विनाशयितुमर्हसि ॥ ६५, ९ ॥

शीलेन साम्ना विनयेन सीतां नयेन न प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेमपुङ्खैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः शरौघैः ॥ ६५, १६ ॥

आगे फिर लक्ष्मण ने नीति एवं धर्मसम्बन्धी शिष्टविचार देकर उनके क्रोध को शमन किया—

महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा ।
राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥ ६६, १ ॥

तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ।
राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥ ६६, ४ ॥

यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ।
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यति ॥ ६६, ५ ॥

आश्वासिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः।
संस्पृशन्त्यग्निवद् राजन् क्षणेन व्यपयन्ति च ॥ ६६, ६ ॥

अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणां तु कर्मणाम्।
नान्तरेण क्रिया तेषां फलमिष्टं च वर्तते ॥ ६६, १६ ॥

मामेव हि पुरा वीर त्वमेव बहुशोऽन्वशाः।
अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद् बृहस्पतिः ॥ ६६, १८ ॥

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषर्षभ।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ ६६, २१ ॥

लक्ष्मण की सारगर्भित बात सुन, सारग्राही श्रीराम ने अपने प्रवृद्ध क्रोध को दबाया और लक्ष्मण से पूछा कि कौन सा उपाय द्वारा सीता को देखा जाय ?—

पूर्वजोऽप्युक्तमात्रस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम्।
सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ ६७, १ ॥

स निगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः।
अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६७, २ ॥

किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण।
केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय" ॥ ६७, ३ ॥

लक्ष्मण ने कहा इसी जनस्थान में सीतान्वेषण करेंगे। इसके बाद आगे चलकर श्रीरामने एक पर्वताकार पक्षी को पड़ा देखा और अनुमान किया कि इसी पक्षीरूप में किसी राक्षस ने सीता को खाया है और वे धनुष लेकर उसकी ओर दौड़ पड़े—

ते तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ६७, ४ ॥

गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः।
आवासाः किन्नराणां च गन्धर्वभवनानि च'. ॥ ६७, ६ ॥

इत्युक्तस्तद् वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः।
क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम् ॥ ६७, ८ ॥

ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम्।
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ ६७, ९ ॥

स दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
'अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः।
गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम्' ॥ ६७, ११ ॥

इत्युक्त्वाभ्यपतद् द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् ।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥ ६७. १३ ॥

गिद्ध ने करुण वाणी में कहा - "वत्स, तुम दोनों की अनुपस्थिति में रावण सीता को हरण कर ले जा रहा था। रोती हुई सीता को देख उसे बचाने के लिये मैंने उससे घोर संग्राम किया और उसे भूमि पर गिरा दिया। सारथी सहित उसके सांग्रामिक रथ एवं सामान नष्ट कर डाले। फिर थके हुए मुझको उसने तलवार से घायल कर दिया और सीता को साथ ले आकाश मार्ग से चलता बना, उसके द्वारा मारे गये मुझे आपको मारना उचित नहीं"—

तं दीनं दीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ ६७, १४ ॥

यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्" ॥ ६७, १५ ॥

त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ ६७, १६ ॥

सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो ।
विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥ ६७, १७ ॥

अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षनिहतो भुवि ।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ॥ ६७, १९ ॥

सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ।
रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ॥ ६७, २० ॥

श्रीराम ने गृध्रराज को पहचान कर और उनकी बात सुन कर शोक से विह्वल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्होंने अपने भाग्य को कोशा और अपने ही वास्ते पक्षिराज को इस दशा में पाया—

रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम् ।
गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ॥ ६७, २१ ॥

निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः ।
द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन् ॥ ६७, २२ ॥

अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः ।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात् ॥ ६७, २७ ॥

जानकी के विषय में पूछ कर राम शोकसे मूर्छित हो भूमि पर पुनः गिर पड़े—

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमागतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौ ॥ ६७, २९ ॥

राम ने फिर उससे पूछा—

जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः ॥ ६८, ४ ॥

जटायु कहने लगे—'जानकी को हर कर विश्रवापुत्र रावण दक्षिण ओर ले गया। आपको सोता के लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसे उसने 'विन्दु' मुहूर्त में हरण किया है। उस मुहूर्त का अपहरितधन उसके स्वामी को शीघ्र मिल जाता है। आप चिन्ता न करें. उसे मारकर आप शीघ्र सीता को पालेंगे'। गृध्रराज ने उपरोक्त बातें कह, प्राण त्याग किया—

सा हृता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
मायामास्थाय विपुलां वातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ६८, ९ ॥

परिक्लान्तस्य मे तात पक्षौ छित्वा निशाचरः।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः ॥ ६८, १० ॥

येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः।
विप्रनष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥ ६८, १८ ॥

बिन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ न च काकुत्स्थ सोऽबुधत्।
त्वत्प्रियां जानकीं हृत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ६८, १३ ॥

न च त्वया व्यथा कार्या जनकस्य सुतां प्रति।
वैदेह्या रंस्यसे क्षिप्रं हत्वा तं रणमूर्धनि ॥ ६८, १४ ॥

विश्रवस पुत्र गृध्रराज ने उपरोक्त बातें कह प्राण त्याग किया—

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।
इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥ ६८, १६ ॥

लक्ष्मण से श्रीराम ने जटायु को उदारता और परोपकारिता की प्रशंसा की—

बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम्।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥ ६८, २० ॥

गृद्धराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत्।
मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥ ६८, २३ ॥

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥ ६८, २४ ॥

रामने कहा, 'गृद्धराज मेरे पूज्यपिता राजा दशरथ के ही समान पूजनीय हैं, उनके संस्कारक्रिया के सम्पादनार्थं लक्ष्मण को लकड़ियाँ लाने को कहा—

राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥ ६८, २६ ॥

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥ ६८, २७ ॥

गृध्रराज को संकेत कर स्वयं श्रीराम ने कहा, "मुझसे संस्कृत होकर पुण्यलोक को जाइये'—

"या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ॥ ६८, २९ ॥

मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज" ॥ ६८, ३० ॥

जलती हुई अग्नि में श्रीराम ने स्वयं बन्धु-बान्धवों जैसी गृध्रराज की दाह-क्रिया की—

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥ ६८, ३१ ॥

पुनः श्रीराम ने यथाविधि गृध्रराज का श्राद्ध किया और पक्षियों को भोज कराया। वह पक्षी दिव्यगति पा गया। बाद वे सीता की खोज मे आगे चले—

रामोऽथ सहसौमित्रिर्वनं गत्वा स वीर्यवान् ।
स्थूलान् हत्वा महारोहीननुतस्तार तं द्विजम् ॥ ६८, ३२ ॥

रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशी कृत्वा महायशाः ।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥ ६८, ३३ ॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना जलं गृध्राय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥ ६८, ३६ ॥

स गृध्रराजः कृतवान् यशस्करं सुदुष्करं कर्म रणे निपातितः ।
महर्षिकल्पेन च संस्कृतस्तदा जगाम पुण्यां गतिमात्मनः शुभाम् ॥ ६८, ३७ ॥

कृतोदकौ तावपि पक्षिसत्तमे स्थिरां च बुद्धिं प्रणिधाय जग्मतुः ।
प्रवेश्य सीताधिगमे ततो मनो वनं सुरेन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥ ६८, ३८ ॥

गृध्रराज की श्राद्धक्रिया कर श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों का दक्षिण की ओर क्रौञ्चवन होते हुए मतङ्गमुनि के आश्रम के बीच घोर जंगल में प्रवेश—

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम् ॥ ६९, १ ॥

व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् ।
सुभीमं तन्महारण्ये व्यतियातौ महाबलौ ॥ ६९, ४ ॥

ततः परं जनस्थानात् त्रिकोशं गम्य राघवौ ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ६९, ५ ॥

ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिकोशं भ्रातरौ तदा ।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रमसन्तरे ॥ ६९, ८ ॥

दृष्ट्वा तु तद् वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् ।
नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ६९, ९ ॥

विकृतमुखी राक्षसी का लक्ष्मण द्वारा विरूपित होना—

आसाद्य तौ नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः ।
ददृशाते महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ॥ ६९, ११ ॥

सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः ।
'एहि रंस्यावहे' इत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम् ॥ ६९, १४ ॥

एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः ।
कर्णनासस्तनं तस्यां निचकर्तारिसूदनः ॥ ६९, १७ ॥

आगे बढ़ने पर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा कि अपने बाहु स्फुरण से आनेवाली विपत्ति की आशंका हो रही है—

स्पन्दते मे दृढं बाहुरुद्विग्नमिव मे मनः ।
प्रायशश्चाप्यनिष्टानि निमित्तान्युपलक्षये ॥ ६९, ११ ॥

तस्मात् सज्जीभवार्य त्वं कुरुष्व वचनं मम ।
ममैव हि निमित्तानि सद्यः शंसन्ति सम्भ्रमम् ॥ ६९, २२ ॥

इतने में ही कबन्ध नामक राक्षस का उनपर आक्रमण हुआ और उसने अपने हाथों से दोनों भाइयों को आबद्ध कर लिया—

आसेदतुश्च तद्रक्षस्तावुभौ प्रमुखे स्थितम् ।
विवृद्धमशिरोग्रीवं कबन्धमुदरे मुखम् ॥ ६९, २७ ॥

भक्षयन्तं　महाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् ।
घोरौ भुजौ विकुर्वाणमुभौ योजनमायतौ ॥ ६९, ३१ ॥
कराभ्यां विविधान् गृह्य ऋक्षान् पक्षिगणान्मृगान् ।
आकर्षन्तं　विकर्षन्तमनेकान् मृगयूथपान् ॥ ६९, ३२ ॥
स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ ।
जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन् बलात् ॥ ६९, ३५ ॥

पीड़ित लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, "भैया, मुझे ही इस राक्षस का शिकार बनने दें, आप किसी प्रकार मुक्त होकर भाग जायँ"—

उवाच च विषण्णः सन् राघवं राघवानुजः !
पश्य मां विवशं वीर राक्षसस्य वशं गतम् ॥ ६९, ३८ ॥
मयैकेन तु निर्मुक्तः परिमुच्यस्व राघव ।
मां हि भूतिबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम् ॥ ६९, ३९ ॥

श्रीराम ने कहा, "लक्ष्मण, हम विपत्तिग्रस्त तो थे ही. फिर यह एक दूसरी भी विपत्ति आ पड़ी । बड़े बड़े शूरवीरों को भी कष्ट उठाना पड़ता है"—

कृच्छ्रात् कृच्छ्रतरं प्राप्य दारुणं सत्यविक्रम ।
व्यसनं जीवितान्ताय प्राप्तमप्राप्य तां प्रियाम् ॥ ६९, ४७ ॥
शूराश्च　बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा बालुकसेतवः ॥ ६९, ५० ॥

लक्ष्मण ने साहस कर श्रीराम से कहा, "भैया, पहले इसके कि यह राक्षस हमें अपने मुँहमें डाल ले, हम उसकी बाहों को तलवारसे काट डालें" बाद ऐसा ही किया गया और वह राक्षस भीषण गर्जन के साथ भूमि पर घायल हो गिर गया—

त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः ।
तस्मादसिभ्यामस्यांशु बाहू छिन्दावहे गुरू ॥ ७०, ४ ॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ ।
अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः ॥ ७०, ८ ॥
स　पपात　महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥ ७०, १० ॥

कबन्ध ने उन्हें पहचान कर स्वागत किया—

स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ।
दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ ॥ ७०, १४ ॥

उसने उन्हें अपने श्रापित होने की कथा सुनाई—मैं एक रूपगुण सम्पन्न दानव था। स्थूलशिरामुनि ने शाप दे मुझे राक्षस बना दिया। उन्होंने शापमोचन आपके द्वारा ही बताया था। सो आज वह हुआ—

एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम्।
स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति ॥ ७१, ५ ॥

अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः।
यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद् विजने वने ॥ ७१, ६ ॥

तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम्।
श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ॥ ७१, ७ ॥

कबन्ध ने कहा, "इन्द्र ने भी मुझे वर दिया था, कि जब श्रीराम और लक्ष्मण तेरी भुजाओं को काट डालेंगे तब तेरा मोक्ष होगा" –

स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः।
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि ॥ ७१, १५ ॥

उसने कहा, "वह श्रीराम आपही हैं, दूसरे द्वारा तो मैं परास्त होता ही, नहीं, अच्छा, तो "मैं भी आपकी बौद्धिक सहायता करूंगा एवं सहायक मित्र बताऊंगा"—

स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव।
शक्यो हन्तुं यथा तत्त्वमेवमुक्तं महर्षिणा ॥ ७१, १८ ॥

अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ।
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना ॥ ७१, १९ ॥

श्रीराम ने उससे अपनी प्रियतमा सीता का रावणद्वारा हरण की बात कही—

रावणेन हृता भार्या सीता मम यशस्विनी।
निष्क्रान्तस्य जनस्थानात् सह भ्रात्रा यथासुखम् ॥७१, २१॥

नाममात्रं तु जानामि न रूपैस्तस्य रक्षसः।

श्रीराम ने कहा, यदि तुम जानते हो कि सीता किससे अपहृत हुई है, तो तत्त्वतः उसे बताओ"—

स त्वं सीतां समाचक्ष्व येन वा यत्र वा हृता।
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः ॥ ७१, २५ ॥

दिव्यमस्ति न मे ज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम्।

कबन्ध ने कहा, "जलाये जाने पर मेरी बुद्धि दिव्य हो जायगी तभी जो उसके बारे में जानता हूँ, मैं बताऊँगा"—

यस्तां वक्ष्यति तं वक्ष्ये दग्धः स्वं रूपमास्थितः ॥ ७१, २७ ॥
योऽभिजानाति तद्रक्षस्तद् वक्ष्ये रामतत्परम् ।

लक्ष्मण द्वारा अग्नि संस्कार किये जाने पर दिव्य शरीरधारी कबंध ने श्रीराम को ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर बुद्धिमान सुग्रीव से मैत्री करने का परामर्श दिया। उसने सुग्रीव के निवास तथा उसके स्वभाव का भी विशद वर्णन सुनाया —

लक्ष्मणस्तु महोल्काभिर्ज्वलिताभिः समन्ततः ।
चितामादीपयामास सा प्रजज्वाल सर्वतः ॥ ७२, २ ॥
स विधूय चितामाशु विधूमोऽग्निरिवोत्थितः ।
अरजे वाससी बिभ्रन्माल्यं दिव्यं महाबलः ॥ ७२, ४ ॥
शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि ॥ ७२, ७ ॥
राम षड् युक्तयो लोके याभिः सर्वं विमृश्यते ।
परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते ॥ ७२, ८ ॥
दशाभागगतो हीनस्त्वं हि राम सलक्ष्मणः ।
यत् कृते व्यसनं प्राप्तं त्वया दारप्रधर्षणम् ॥ ७२, ९ ॥
श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥ ७२, ११ ॥
ऋष्यमूके गिरिवरे पंपापर्यन्तशोभिते ।
निवसत्यात्मवान् वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥ ७२, १२ ॥
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ।
सत्यसन्धो विनीतश्च धृतिमान् मतिमान् महान् ॥ ७२, १३ ॥

कबन्ध द्वारा भवितव्यता की प्रबलता समझना और सुग्रीव की बुद्धिमता एवं बलशालिता का वर्णन कर उसके पास शीघ्र जाकर मैत्री करने को प्रेरित करना—

दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान् महाबलपराक्रमः ।
भ्रात्रा विवासितो वीर राज्यहेतोर्महात्मना ॥ ७२, १४ ॥
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे ।
भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः ॥ ७२, १५ ॥

भवितव्यं हि तच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा।
कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः॥ ७२, १६॥

गच्छ शीघ्रमतो वीर सुग्रीवं तं महाबलम्।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव॥ ७२, १७॥

न तस्याविदितं लोके किंचिदस्ति हि राघव।

वह सुमेरु पर्वत की चोटी या पाताल में, कहीं भी हो वहाँ से असुरों को मार कर सीता को ढूंढ़ आपको समर्पित करेगा—

स मेरुशृङ्गाग्रगतामनिन्दितां प्रविश्य पातालतलेऽपि वाश्रिताम्।
प्लवङ्गमानामृषभस्तव प्रियां निहत्य रक्षांसि पुनः प्रदास्यति॥७२, २७॥

बाद दनुपुत्र ने श्रीराम से पम्पासर का वर्णन सुनाते हुए वहाँ लक्ष्मण द्वारा मारे गये मत्स्याद को खाने का वर्णन किया—

तत्र हंसा प्लवाः क्रौञ्चाः कुरराश्चैव राघव॥ ७३, १२॥

वल्गुस्वरा निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः।
नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः शुभाः॥ ७३, १३॥

पम्पासर में अच्छी मछलियों को खाने के हेतु प्राप्त होने का विवरण—

घृतपिण्डोपमान स्थूलांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथः।
रोहितान् वक्रतुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव॥ ७३, १४॥

पम्पायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्र राम वरान् हतान्।
निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान्॥ ७३, १५॥

तब भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः सम्प्रदास्यति।
भृशं तान् खादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसंचये॥ ७३, १६॥

फिर वह धर्मचारिणी श्रमणी धर्मनिष्ठा एवं राममक्तिपरायणा शबरी का स्वर्गगमन वर्णन—

तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी।
श्रमणी शबरी राम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥ ७३, २६॥

त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम्।
दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोके गमिष्यति॥ ७३ २७॥

इस प्रकार दोनों भाइयों को परामर्श दे कबन्ध स्वर्ग को प्रस्थान किया—

कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ।

स्रग्वी भास्करवर्णाभः खे व्यरोचत वीर्यवान् ॥ ७३, ४२ ॥
गम्यतां कार्यसिद्ध्यर्थमिति तावब्रवीत् स च ।
सुप्रीतौ तावनुज्ञाप्य कबन्धः प्रस्थितस्तदा ॥ ७३, ४५ ॥

कबन्ध के आदेशानुसार चल कर वे दोनों शबरी के आश्रम में आये। उसने उठकर उन दोनों को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और अर्घ्य पाद्य लेकर अभ्यर्थना की—

तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥ ७४, ५ ॥

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ ७४, ६ ॥

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद् यथाविधि ।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥ ७४, ७ ॥

श्रीराम ने उससे पूछा, "क्या तुम्हारी तपस्या, गुरुशुश्रूषा आदि सफल हुई?"—

कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥ ७४, ९ ॥

उसने उत्तर दिया, "आपके दर्शनमात्र से मैं कृतार्थ हो गई" स्वर्गीय महर्षियों ने कहा था कि तुम श्रीराम के दर्शन से अक्षय लाभ पा जाओगी"—

अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥ ७४, १२ ॥

तवाहं चक्षुषा सौम्य पूजा सौम्येन मानद ।
गमिष्याम्यक्षयांल्लोकांस्त्वत्प्रसादररिंदम ॥ ७४, १३ ॥

चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः ।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥ ७४, १४ ॥

तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ।
"आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ ७४, १५ ॥
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ।
तं च दृष्ट्वा वरांल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि" ॥ ७४, १६ ॥

फिर उसने श्रीराम से कहा—मैंने वन के कुछ कन्दमूल फलादि आपके लिए सुरक्षित कर रखे हैं, लीजिये वे प्रस्तुत हैं—

मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ।
तवार्थं पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसंभवम् ॥ ७४, १७ ॥

श्रीराम ने शबरी को महर्षियों के प्रभाव आदि को प्रत्यक्ष दिखाने का आग्रह किया—

एवमुक्तः स धर्मात्मा शबर्या शबरीमिदम्।
दनोः सकाशात् तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनाम् ॥ ७४, १९ ॥

श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि संद्रष्टुं यदि मन्यसे ॥ ७४, २० ॥

इस पर शबरी ने उन्हें उस प्रभावशाली आश्रम को उन्हें दिखा दिया। फिर आग्रह किया, अब इस शरीर को त्याग उन महर्षियों के पास जाना चाहती हूँ—

पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ॥ ७४, २१ ॥
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन।
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते।
जुहवांचक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥ ७४, २२ ॥

कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्येतत् कलेवरम् ॥ ७४, २८ ॥

तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥ ७४, २९ ॥

इसके बाद श्रीराम की अनुमति से शबरी ने चिता जलाई और उसमें अपने शरीर को होम कर दिया। वह जलती अग्नि के समान चमकती हुई दिव्याभरणों से युक्त महर्षियों के पुण्यलोक को प्राप्त हो गई—

इत्येवमुक्त्वा जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा।
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ॥ ७४, ३२ ॥
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह।
दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ७४, ३३ ॥

दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना।
विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ७४, ३४ ॥

यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः।
तत्पुण्यं शबरीस्थानं जगामात्मसमाधिना ॥ ७४, ३५ ॥

शबरी के स्वर्गारोहण और महात्माओं के बारे में चिन्तन करते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—

दिवं तु तस्यां जातायां शबर्यां स्वेन तेजसा।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥ ७५, १ ॥

चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम्।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ ७५, २ ॥

श्रीराम ने कहा—लक्ष्मण, देखो तो सही सभी पशु एक दूसरे पर कितना विश्वास करते है ? किसी से वैर नहीं हैं, ये सब महर्षियों के प्रभाव के ही कारण तो हैं ? उन्होंने सात समुद्रों के जल से पूर्ण तालाब भी निर्माण किया था—

लक्ष्मण! मालूम होता है कि हमारा कष्ट दूर सा हो गया। मेरा चित्त प्रसन्न हैं। अब आगे बढ़ो। देखो यही सुन्दर पम्पासर है। इसी के निकट ऋष्यमूक पर्वत पर ऋक्षराज के सुपुत्र सुग्रीव रहते हैं--

दृष्टो मयाऽश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम्।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥ ७५, ३ ॥

सप्तानां च समुद्राणां तेषां तीर्थेषु लक्ष्मण।
उपविष्टं च विधिवत् पितरश्चापि तर्पिताः ॥ ७५, ४ ॥

प्रणष्टमशुभं यत्नः कल्याणं समुपस्थितम्।
तेन त्वेतत् प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ॥ ७५, ५ ॥

हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति।
तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥ ७५, ६ ॥

अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः।
ऋष्यमूक इति ख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ ७५, २५ ॥

हरेऋक्षरजो नाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः।
अध्यास्ते तु महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः ॥ ७५, २६ ॥

इत्युवाच पुनर्वाक्यं लक्ष्मणं सत्यविक्रमः।
'कथं मया विना सीतां शक्यं लक्ष्मण जीवितुम् ॥ ७५, २८ ॥

लक्ष्मण के साथ बन को देखते हुए नानाविध पक्षियों एवं जंगलों से व्याप्त पम्पासरोवर को श्रीराम ने देखा—

क्रमेण गत्वा प्रविलोकयन् वनं ददर्श पम्पां शुभदर्शकाननाम्।
अनेकनानाविधपक्षिसंकुलां विवेश रामः सह लक्ष्मणेन ॥७५, ३०॥

इत्यार्षे संक्षिप्तबाल्मीकिरामायणे अरण्यकाण्डम्

किष्किन्धाकाण्डम्

पम्पा सरोवर के निकट प्राकृतिक सौन्दर्य को देख शोकपीडित श्रीराम का शोक (सीता वियोगजन्य) उन्मुक्त हो फूट पड़ा और वे लक्ष्मण को सम्बोधित कर विलाप करने लगे। सीता के साथ रहने पर जो जो वस्तु उन्हें आनन्द बढ़ाने वाली थीं, वे ही उनके अभाव में कष्टदायक प्रतीत होने लगी। अयोध्या पहुँचने पर माता कौसल्या द्वारा सीता के विषय में पूछे जाने पर मैं क्या बताऊँगा ? तुम जाओ भरत को देखो, मैं जानकी के विरह में अब जीवित नहीं रह सकूँगा''—

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्फुल्लझषाकुलाम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः॥ १, १॥

पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव॥ १, ११॥

मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः॥ १, १५॥

एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे।
प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण॥ १, २४॥

श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया।
मामाहूय प्रमुदिताः परमं प्रत्यनन्दत॥ १, २५॥

मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया।
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया॥ १, ४०॥

शक्यो धारयितुं कामो भवेदभ्यागतो मया।
यदि भूयो वसन्तो मां न हन्यात् पुष्पितद्रुमः॥ १, ६९॥

यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे।
तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना॥ १, ७०॥

पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण॥ १, ७१॥

प्राप्य दुःखं वने श्यामा मां मन्मथविकर्शितम्।
नष्टदुःखेव हृष्टेव साध्वी साध्वभ्यभाषत।

किं नु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मजा।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्ति कथं चापि मनस्विनीम्॥ १, ११२॥

गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम्।
न ह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम्॥ १, ११३॥

लक्ष्मण ने अपने दुःखी भाई को उत्साहवर्धक बातें जो नीति और धर्म से ओत-प्रोत थीं—कहीं, और उत्साह की महत्ता बताई। उन्होंने कहा "आप जैसे व्यक्ति के लिए इतना शोकातुर होना कभी उचित नहीं है। साहस बटोरिये, हम साहस और उत्साह के बूते से जानकी को अवश्य प्राप्त करेंगे"—

संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम्॥ १, ११५॥

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने।
अतिस्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्तिरार्द्रापि दह्यते॥ १, ११६॥

स्वास्थ्यं भद्रं भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः।
अर्थो हि नष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते।
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥ १, १२१॥

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम्॥ १, १२२॥

त्यज्यतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे॥ १, १२३॥

लक्ष्मण की बातों से श्रीराम ने शोक और मोह को त्याग दिया—

एवं सम्बोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः।
त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत्॥ १, १२६॥

उद्विग्नचित्त श्रीराम ने भाई के साथ दुःखी होकर झरनाओं और कन्दराओं से युक्त जंगल को देखते हुए प्रस्थान किया—

निरीक्षमाणः सहसा महात्मा सर्वं वनं निर्झरकन्दरं च।
उद्विग्नचेताः सह लक्ष्मणेन विचार्य दुःखोपहतः प्रतस्थे॥ १, १२४॥

श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों को देख सुग्रीव की घबराहट और भय से किसी दूसरे शिखर का आश्रय लेना—

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत्॥ २, १॥

एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् ।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥ २ ६॥

ततः सुग्रीवसचिवा दृष्ट्वा परमधन्विनौ ।
जग्मुर्गिरितटात् तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ २, ७॥

हनुमान् जी ने सुग्रीव को अपनी घबराहट और भय को त्यागने की सलाह दी और कहा कि ऋष्यमूक पर बाली का कोई भय नहीं है। आगे कहा–चित्त को स्थिर कर बुद्धि विज्ञानसम्पन्न होकर ही सब प्राणियों का शासक राजा होता है, अन्यथा नहीं—

ततस्तु भयसंत्रस्तं वालिकिल्बिषशङ्कितम् ।
उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥ २, १३॥

"सम्भ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् ।
मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥ २, १४॥

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम ।
लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ ॥ २, १७॥

बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इङ्गितैः सर्वमाचर ।
न ह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि" ॥ २, १८॥

सुग्रीव ने हनुमान् जी से कहा, "बाली बुद्धिमान् है। उसका सम्बन्ध दूसरे राजाओं से हो सकता है और उनके द्वारा मेरे नाश का उपाय हो सकता है। ये कुमार छद्मवेष में है. पर हैं बड़े तेजस्वी और शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हैं, भला इनसे भय कैसे न हो"?—

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः ।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥ २, १९॥

'दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ ।
कस्य न स्याद् भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥ २, २०॥

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः ।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥ २, २२॥

कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः ।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥ २, २३॥

सुग्रीव ने श्रीराम के पास हनुमान् से जाकर पता लगाने को कहा'—

तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम ।
इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥ २, १४ ॥
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम ।
व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः ॥ २, २७ ॥

तदनुसार हनूमान् श्रीराम के निकट गये—

तथेति संपूज्य वचस्तु तस्य कपेः सुभीतस्य दुरासदस्य ।
महानुभावो हनुमान् ययौ तदा स यत्र रामोऽतिबली स लक्ष्मणः ॥२,२६॥

भिक्षुक रूप में हनुमान् जी श्रीराम लक्ष्मण के सामने जा उपस्थित हुए और उन्हों ने उनसे पाण्डित्यपूर्ण मधुर भाषा में उनका परिचय एवं उस निर्जन वन में आने का कारण पूछा। सुग्रीव का परिचय देते हुए उन्होंने अपना भी परिचय दिया—

आबभाषे च तौ वीरौ यथावत् प्रशशंस च ।
संपूज्य विधिवद् वीरौ हनुमान् वानरोत्तमः ॥ ३, ४ ॥
उवाच कामतो वाक्यं मृदुसत्यपराक्रमौ ।
'राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ॥ ३, ५ ॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ।
त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः ॥ ३, ६ ॥
पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः ।
इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ॥ ३, ७ ॥
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चारवाससौ ।
निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः ॥ ३, ८ ॥
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः ।
राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥ ३, ११ ॥
एवं मां परिभाषन्तं कस्माद् वै नाभिभाषतः ।
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद् वानरपुङ्गवः ।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः ॥ ३, २० ॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान् नाम वानरः ॥ ५, २१ ॥

हनुमान जी ने कहा, "सुग्रीव आपसे मैत्री करना चाहते हैं। मैं सुग्रीव के हित के ही लिये भिक्षु का रूप धारण कर आपके निकट आया हूँ—

युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥ ३, २२ ॥

भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकारणम्।
ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम् ॥ ३, २३ ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण को कहा, "यह महा दुर्धष पण्डित एवं ज्ञानसम्पन्न हनुमान् सुग्रीव के सचिव हैं। उनकी विद्वत्ता को प्रशंसा करते हुए कहा कि जिसके सचिव इन महानुभाव जैसे हों उनके कार्य की सिद्धि निश्चित है। लक्ष्मण इनसे बातें करो'—

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥ ३, २६ ॥
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥ ३, २७ ॥

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ ३, २८ ॥

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥ ३, २९ ॥

न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥ ३, ३० ॥

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥ ३, ३१ ॥

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥ ३, ३२ ॥

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥ ३, ३३ ॥

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।
सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥ ३, ३४ ॥

श्रीराम के कहने पर लक्ष्मण ने हनुमान जो से कहा—"हमें सुग्रीव के गुण विदित हैं। हम उन्हीं की खोज में आये हुए हैं। जैसा आप कहते हैं, हम वैसा ही करेंगे; अर्थात्–मित्रता करेंगे'—

विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥ ३, ३७ ॥

यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह।
तत् तथा हि करिष्यावो वचनात् तव सत्तम ॥ ३, ३८ ॥

लक्ष्मण की बात से प्रसन्न हो कपि ने दोनों में मित्रता स्थापित कराने की बात ठान ली—

तत्तस्य वाच्यं निपुणं निशम्य प्रहृष्टरूपः पवनात्मजः कपिः ।
मनः समाधाय जयोपपत्तौ सख्यं तदा कर्तुमियेष ताभ्याम् ॥

उनका चित्त अपने हित साधन के लिये, सुग्रीव की बात पर गया—

ततः प्रहृष्टो हनुमान् कृत्यवानिति तद्वचः ।
श्रुत्वा मधुरभावं च सुग्रीवं मनसा गतः ॥ ४, १ ॥

हनुमान् ने श्रीराम से वन आने का कारण पूछा—

किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् ।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४, ४ ॥

नके प्रश्न के उत्तर में लक्ष्मण ने उन्हें अपना पूरा परिचय दिया और वन आने के कारण भी विस्तारपूर्वक सुनाया—

राजा दशरथो नाम द्युतिमान् धर्मवत्सलः ।
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ॥ ४, ६ ॥

न द्वेष्टा विद्यते तस्य न तु द्वेष्टि न कंचन ।
स तु सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ॥ ४, ७ ॥

शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः ।
ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः ॥ ४, ९ ॥

राजलक्षणसयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा ।
राज्याद् भ्रष्टो मया वस्तुं वने सार्धमिहागतः ॥ ४, १० ॥

भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी ।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥ ४, ११ ॥

अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः ।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥ ४, १२ ॥

रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा ।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य वा हृता ॥ ४, १४ ॥

दनुर्नाम दितेः पुत्रः शापाद् राक्षसतां गतः ।
आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः ॥ ४, १५ ॥

स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् ।
एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राज्यमानो दिवं गतः ॥ ४, १६ ॥

लक्ष्मण ने सारी बातें सुना कर कहा कि हम दोनों भाई सुग्रीव की शरण में आये हैं, वे हमारी सहायता अपने यूथों के साथ करें--

एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः।
अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ॥ ४, १७॥

शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते।
कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः॥ ४, २४॥

हनुमान ने कहा, ऐसे महापुरुष को तो सुग्रीव को देखना चाहिये ही था और सौभाग्य से ये आप स्वयं ही आ गये हैं। वे भी भाई से त्रस्त हैं, वे हमारे साथ आपकी पत्नी की खोज में सहायक होंगे—

ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः॥ ४, २६॥

स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना।
हृतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम्॥ ४, २७॥

करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे॥ ४, २८॥

इस प्रकार मधुर वाणी में उन्होंने लक्ष्मण से सुग्रीव के पास चलने को कहा—

इत्येवमुक्त्वा हनुमान्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
बभाषे साधु गच्छामः सुग्रीवमिति राघवम्॥ ४, २९॥

हनुमान के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा,—'चलें, आपका काम सिद्ध हो गया—'

एवं ब्रुवन्तं धर्मात्मा हनूमन्तं स लक्ष्मणः।
कृत्यवान् सोऽपि सम्प्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघवम्॥ ४, ३०॥

हनुमान ने अपना भिक्षुरूप त्याग कर वानररूप में उन दोनों को पीठ पर चढ़ा कर ले चले—

भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥ ४, ३४॥

ऋष्यमूक से मलय पर्वत पर जाकर हनुमान् ने श्रीराम के बारे में सुग्रीव को सारा परिचय सुनाया और उनकी समुचित अभ्यर्थना करने को कहा—

ऋष्यमूकात तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम्।
आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ॥ ५, १॥

अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥ ५, २ ॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः ।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः ॥ ५, ३ ॥
भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रगृह्य चानयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥ ५, ७ ॥

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा,–"हनुमान् ने आपके बारे में सारी बातें कही हैं। आपको स्वागत है, यदि आप मेरी मैत्री चाहते हैं तो यह मेरा हाथ फैला है और उसे आप थाम लें, मर्यादा में आबद्ध कर लें"—

भवान् धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः ।
आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥ ५, ९ ॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो ।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥ ५, १० ॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः ।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥ ५, ११ ॥

श्रीराम ने प्रसन्नता पूर्वक उनसे हाथ मिलाया । फिर अग्नि की साक्षी दे मैत्री को दृढ़ किया । दोनों एक दूसरे को प्यार की दृष्टि से देखते रहे—

सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ।
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पाडितम् ॥ ५, १२ ॥
ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ ॥ ५, १५ ॥
ततः सुप्रीतमनसा तावुभौ हरिराघवौ ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः ॥ ५, १६ ॥

सुग्रीव ने कहा, "आप हमारे मित्र हैं । हमारे दोनों का सुख-दुःख एक है । मैं इस वन में भयभीत रहता हूँ । आप मेरे भय को दूर कर दें—

त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे ह्येक दुःखं सुखं च नौ ।
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् ॥ ५, १७ ॥
अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः ।
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमे तदुपाश्रितः ॥ ५, २१ ॥

वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु।
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद् यथा॥ ५, ३३॥

श्रीराम ने कहा—"मैं तुम्हारी भार्या के हरण करने वाले का बध करूँगा"—

उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे!।
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्॥ ५, २५॥

सुग्रीव ने कहा—"आपकी कृपा से मुझे प्रियतमा के साथ राज्य मिल जायगा, पर ऐसा करें कि अबआगे वह मुझे नहीं सताये"—

तव प्रसादेन नृसिंहवीर प्रियां च राज्यं च समाप्नुयामहम्।
तथा कुरु त्वं नरदेव वैरिणं यथा न हिंस्यात् स पुनर्ममाग्रजम्॥५, ३०॥

जिस समय श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री हुई उस समय वाली रावण और सीता की बायीं आँखें एक साथ ही फड़कने लगीं। (बायीं आँख का फड़कना स्त्री के लिये तो शुभ होता है, किन्तु पुरुष के लिये अशुभ)—

सीता कपीन्द्रक्षणदाचराणां राजीवहेमज्वलनोपमानि।
सुग्रीवरामप्रणयप्रसङ्गे वामानि नेत्राणि समं स्फुरन्ति॥ ५, ३१॥

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा, "आपकी भार्या को विषयुक्त अन्न के समान कोई पचा नहीं सकता। मैं उसे चाहे वह जहाँ भी हो लाकर ही रहूंगा।" उन्होंने अनुमान के आधार पर सीताहरण का पता भी दिया और वहाँ सीता के द्वारा गिराये गये वस्त्र भूषण को भी दिखाया—

इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव।
न शक्या सा जरयितुमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥ ६, ७॥
तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा।
त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते॥ ६, ८॥
अनुमानात् तु जानामि मैथिली सा न संशयः।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा॥ ६, ९॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा॥ ६, १०॥
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम्।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च॥ ६, ११॥

सुग्रीव के द्वारा लाये गये वस्त्रभूषणों को देख श्रीराम की आँखें आँसुओं से अवरुद्ध हो गयीं—

ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च ।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ ६, १६ ॥

वस्त्राभूषण पा श्रीराम ने लक्ष्मण को उन्हें देखने और पहचानने को कहा—

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया ।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च ॥ ६, २० ॥

लक्ष्मण ने कहा—और भूषणों को तो मैं पहचानता ही नहीं, केवल नित्य चरण वन्दना के कारण नूपुर (पाय) को पहचानता हूँ—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ ६, २२ ॥

श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा, "सखे, यह तो बताओ कि मेरी प्रिया किस ओर ले जायी गई है । हरण करने वाले को मैं आज ही यमसादन पहुँचा दूँगा"—

ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया ।
रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥ ६, २४ ॥
मम दयिततरा हृता वनाद् रजनिचरेण विमथ्य येन सा ।
कथय मम रिपुं तमद्य वै प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि ॥ ६, २७ ॥

शोकाकुल अपने मित्र श्रीराम को सुग्रीव ने सुहृद एवं विनीतभाव से निवेदन किया कि वह शोक को सर्वथा त्याग दें । शोकाकुल व्यक्ति के लिये जीवन भी दूभर हो जाता है । आप मुझ पर विश्वास करें, और शोक को त्याग दें—

न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः ।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥ ७, २ ॥
सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम ।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ ७, ३ ॥
व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे ।
विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान् नावसीदति ॥ ७, ९ ॥
बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते ।
स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले ॥ ७, १० ॥
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् ।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ७, १२ ॥
शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः ।
स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम् ॥ ७, १३ ॥

हितं वयस्यभावेन ब्रूहि नोपदिशामि ते।
वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ७, १४ ॥

सुग्रीव द्वारा सान्त्वना दिये जाने पर श्रीराम ने अपने आँसू पोंछ डाले, और दोनों मित्र एकान्त में अपने सुख दुःख की कथा कहने लगे—

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयन् ॥ ७, १५ ॥

एवमेकान्तसम्पृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ।
उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥ ७, २४ ॥

सुग्रीव ने श्रीराम को अपना मित्र पाकर अपने भाग्य की सराहना की। उसने श्रीराम से कहा कि धीरे-धीरे मेरे सद्गुणों का भी पता उनको लग जायगा, एवं उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति को मित्र के लिये अविभक्त माना है—

सर्वथाहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः।
उपपन्नो गुणोपेतः सखा यस्य भवान् मम ॥ ८, २ ॥

अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञायसे शनैः।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान् गुणान् ॥ ८, ५ ॥

रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥ ८, ७ ॥

सुख हों अथवा दुःख, धनी हो अथवा दरिद्र, मित्र सभी दशा में साथ रहता है—

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥ ८, ८ ॥

धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वाऽनघ।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा यथाविधम् ॥ ८, ९ ॥

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा, "मैं अपने, भाई से सर्वदा त्रस्त रहता हूँ। कृपाकर मेरा भय दूर कर दें"—

अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः।
ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥ ८, १७ ॥

वालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर।
ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ८, १९ ॥

श्रीराम का उत्तर—'तुम्हारे शत्रु को आज ही कर डालूँगा'—

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ।
अद्यैव तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥ ८, २१ ॥

श्रीराम की बात सुनकर सुग्रीव को अतीव हर्ष हुआ—

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ८, २२ ॥

उसके बाद फिर श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव किष्किन्धा आये। (श्रीराम लक्ष्मण शस्त्रसज्जित हो वालिवध के निमित्त आये थे)—

ततस्तु रामानुजरामवानराः प्रगृह्य शस्त्राण्युदितोग्रतेजसः ।
पुरीं सुरेशात्मजवीर्यपालितां बधाय शत्रोः पुनरागतास्त्विह ॥ १३, ३०॥

सुग्रीव की ललकार सुन बाली उठ खड़ा हुआ। तारा ने उसे समझाया—'सुग्रीव से सलाह कर उसे यौवराज्य दे दो। श्रीराम से मैत्री स्थापित कर लो। श्रीराम से बैर का फल बुरा होगा'—

यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ।
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा ॥ १५, २२ ॥

अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ।
सुग्रीवेण च सुप्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः ॥ १५, २४ ॥

प्रसीद पथ्यं शृणु जल्पितं हि मे न रोषमेवानुविधातुमर्हसि ।
क्षमो हि ते कोसलराजसूनुना न विग्रहः शक्रसमानतेजसा ॥ १५, ३० ॥

बाली ने कहा, "मैं किसीकी ललकार बरदास्त नहीं कर सकता। श्रीराम की चिन्ता मत कर, वे धर्मज्ञ हैं, वे पाप कर्म कैसे करेंगे?"—

अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥ १६, ३ ॥

न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ १६, ४ ॥

बाली सुग्रीव की लड़ाई में जब सुग्रीव छीजने लगा तब श्रीराम ने अतितीक्ष्ण बाण का प्रहार किया और बाली इन्द्रध्वज की भाँति धराशायी हो गया—

ताडितस्तेन तं क्रुद्धः तमभिक्रम्य वेगतः ।
अभवच्छोणितोद्गारो सोत्पीड इव पर्वतः ॥ १६, २२ ॥

हीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरः ।

प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥ १६, ३१ ॥

ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम् ।
पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकम् ॥ १६, ३३ ॥

मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः ।
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥ १६, ३५ ॥

अथोक्षितः शोणिततोयविस्रवैः सुपुष्पिताशोक इवानिलोद्धतः ।
विचेतनो वासवसूनुराहवे प्रभ्रंशितेन्द्रध्वजवत् क्षितिं गतः ॥ १६, ३९ ॥

वाली के गले में इन्द्रप्रदत्त काञ्चनी माला थी जो उसके आहत होने पर भी उसके तेज और प्रभाव को सुरक्षित किये थी —

स भूमौ न्यस्तसर्वाङ्गस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
अपतद् देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः ॥ १७, २ ॥

शक्रदत्ता वरा माला काञ्चनी रत्नभूषिता ।
दधार हरिमुख्यस्य प्राणांस्तेजः श्रियं च सा ॥ १७, ५ ॥

बाली के गिरजाने पर श्रीराम उसके पास आये और बाली ने किंचित् रूखे स्वर में उनकी भर्त्सना की, किन्तु युक्तिपूर्वक ढंग से—

त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रथितः प्रियदर्शनः ।
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः ।
यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥ १७, १६ ॥

दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्यं पराक्रमः ।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥ १७, १९ ॥

भूमिर्हिरण्यं रूपं च विग्रहे कारणानि च ।
तत्र कस्ते वने लोभो मदीयेषु फलेषु वा ॥ १७, ३१ ॥

नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि ।
राजवृत्तिरसंकीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः ॥ १७, ३२ ॥

त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः ।
राजवृत्तेषु संकीर्णः शरासनपरायणः ॥ १७, ३३ ॥

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चौरः प्राणिवधे रतः ।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥ १७, ३६ ॥

सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः ।
लोकं पापात्मनामेते गच्छन्ति नात्र संशयः ॥ १७, ३७ ॥

पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव।
शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः ॥ १७, ३९ ॥

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा।
प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥ १७, ४२ ॥

शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥ १७, ४३ ॥

दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥ १७, ४७ ॥

सुग्रीव प्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया।
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान् भवेः ॥ १७, ४९ ॥

राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम्।
कण्ठं बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥ १७, ५० ॥

युक्तं यत्प्राप्नुयाद् राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥ १७, ५२ ॥

इतना कह शराघात से पीड़ित वाली चुप हो गया—

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघाताद् व्यथितो महात्मा।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं तूष्णीं बभूवामरराजसूनुः ॥ १७, ५२ ॥

श्रीराम ने वाली को धर्मार्थसंगत बातें कहते हुए अपने कृत्यका औचित्य निरूपित किया, उन्होंने बताया कि धर्म कागूढ रहस्य समझना सरल नहीं हैं। बड़े भाई, पिता और गुरु एक श्रेणी में आते हैं। उसी प्रकार छोटा भाई, शिष्य और पुत्र एक श्रेणी में हैं, छोटे भाई की पत्नी, स्नुषा और बहिन का स्थान बराबर है। तुमने छोटे भाई की पत्नी 'रुमा' के साथ पत्नीवत् व्यवहार किया है। अतः इस अपराध का दण्ड वध है और वही तुम्हें मिला। भरत जैसे धर्मवत्सल न्यायी राजा के राज्य में यह अधर्म चल नहीं सकता। अपराधी उचित दण्ड पाकर पाप से मुक्त हो जाता है। यदि राजा उचित दण्ड नहीं दे तो वह नरकभागी बनता है—

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम्।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥ १८, ४ ॥

नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन् सत्यं च सुस्थितम्।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥ १८, ८ ॥

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ॥ १८, ९ ॥

ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथिवर्तिनः ॥ १८, १३ ॥

यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥ १८, १४ ॥

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥ १८, १५ ॥

चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः ।
जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन् प्रेक्षसे नु किम् ॥ १८, १६ ॥

तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वां मया हतः ।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ १८, १८ ॥

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥ १८, १९ ॥

तद् व्यतीतस्य ते धर्मात् कामवृक्षस्य वानर ।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन् दण्डोऽयं प्रतिपादितः ॥ १८, २० ॥

न च मे मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः ।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ॥ १८, २२ ॥
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥ १८, २३ ॥

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ १८, ३१ ॥
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते ।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् ॥ १८, ३२ ॥

कष्टावस्था में प्रयुक्त परुष बातें कहने के लिए बाली ने श्रीराम से क्षमा माँगी—

प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयाम् ।
यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद् वाक्यमप्रियम् ॥ १८, ४७ ॥

तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ।
त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ च प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥ १८, ४९ ॥

बाली को श्रीराम के हाथ से मृत्यु की आकाङ्क्षा—

त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया।
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः॥ १८, ५८॥

श्रीराम ने कहा 'उचित दण्ड देने वाला तथा दण्ड पाकर अपराधी दोनों मुक्त हो जाते हैं"—

दण्डेयः पातयेद् दण्डं दण्ड्यं यश्चापि दण्ड्यते।
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदति॥ १८, ६१॥

बाली ने अपनी अचेतनावस्था में जो श्रीराम को कटु बातें कही थीं, उसके लिये क्षमा मांगी—

शराभितप्तेन विचेतसा मया प्रभाषितस्त्वं यदजानता विभो।
इदं महेन्द्रोपमभीमविक्रम प्रसादितस्त्वं क्षम मे नरेश्वर॥ १८, ६६॥

शोक कर्षिता तारा को हनुमान्‌जीने अनेक उपदेशों द्वारा सान्त्वना दी और अङ्गद को राज्य दे सुखी होने को कहा। संसार में किसी का कोई नहीं है। सबों को अपना कर्मफल भोगना पड़ता है—

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात्।
शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः॥ २१, १॥

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मं फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥ २१, २॥

शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥ २१, ३॥

जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम्॥ २१, ५॥

ताविमौ शोकसंप्रौ शनैः प्रेरय भामिनी।
त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शास्तु मेदिनीम्॥ २१, ९॥

तारा ने जबाब दिया, "अङ्गद जैसे सैकड़ों बेटे से भी इस मृत पति का अलिङ्गन बढ़कर है"—

अङ्गदप्रतिरूपाणां पुत्राणामेकतः शतम्।
हतस्याप्यस्य वीरस्य गात्रसंश्लेषणं वरम्॥ २१, १३॥

न चाहं हरिराजस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः॥ २१, १४॥

न ह्येषा बुद्धिरास्थेया हनुमन्नङ्गदं प्रति।
पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम ॥ २१, १५ ॥

तारा ने कहा, 'शूरों को बेटी नहीं देनी चाहिये शूर को बेटी देने से मेरी ही जैसी गति दूसरों की भी हो सकती है, पुत्रवती रहने पर भी पतिविहीन नारी विधवा ही कही जाती है'—

शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता।
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम् ॥ २३, ८ ॥

पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी।
धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते जनैः ॥ २३, १२ ॥

इसके बाद तारा ने अपने मृत पति से कहा, 'पतिदेव आपने मेरी बात नहीं सुनी आपके साथ साथ मैं भी श्री विहीन हो गयी'—

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं न चास्मि सक्ता हि निवारणे तव।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥ २३,३० ॥

सुग्रीव का मनस्ताप—

पाप्मानमिन्द्रस्य मही जलं च वृक्षाश्च कामं जगृहुस्त्रियश्च।
को नाम पाप्मानमिमं सहेत शाखामृगस्य प्रतिपत्तुमिच्छेत् ॥ २४, १४ ॥

तारा का श्रीराम से निवेदन—श्रीराम ! मुझे भी उसी बाण से मारकर मेरे प्रियतम वाली के पास पहुँचा दें, जिस बाण से आपने उसे मारा था। इससे आपको कोई पाप नहीं होगा। आप तो भुक्तभोगी हैं। भला मेरे वियोग में बाली की क्या दशा होती होगी ? नारी प्रदान से आपको पुण्य ही होगा'—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः ॥ २४, ३१॥

येनैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मां विना वीर रमेत वाली ॥ २४, ३३ ॥

त्वं वेत्थ तावद् वनिताविहीनः प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः।
तत्त्वं प्रजानञ्जहि मां न वाली दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥ २४, ३६ ॥

यच्चापि मन्येत भवान् महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम्।
आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र ॥ २४,३७॥

शास्त्रप्रयोगाद् विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः।
दारप्रदानाद्धि न दानमन्यत् प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥ २४, ३८

त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे धर्ममवेक्ष्य वीर ।
अनेन दानेन न लप्स्यसे त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥ २४, ३९ ॥

श्रीराम ने सभी कामों में विधिविधान को ही प्रबल बताया—

तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं लोकोऽब्रवीत् तेन कृतं विधात्रा ।
त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ॥२४, ४२॥

श्रीराम के आश्वासन से तथा उनके तेज से तारा आश्वस्त हुई—

आश्वासितो तेन महात्मना तु प्रभावयुक्तेन परंतपेन ।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन सुवेषरूपा विरराम तारा ॥२४, ४४॥

श्रीराम द्वारा नियति की प्रधानता का प्रतिपादन— सुग्रीव अङ्गद और तारा को सान्त्वनार्थ उन्होंने उनसे कहा कि विश्वकी सारी क्रियायें कालाधीन हैं—

नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥ २५, ४ ॥
न कर्ता कस्य चित् कश्चिन्नियोगेनापि चेश्वरः ।
स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम् ॥ २५, ५ ॥
न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते ।
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते ॥ २५, ६ ॥
न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः ।
न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः ॥ २५, ७ ॥
किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥ २५, ८ ॥
इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् ।
सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः ॥ २५, ९ ॥

श्रीराम ने सुग्रीव को वाली की दाहक्रिया करने का आदेश दिया सुग्रीव ने आदेशानुसार समस्त कार्य सम्पादन किया—

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् ।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥ २५, १३ ॥
सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः ।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥ २५, ५३ ॥

दाह क्रिया समाप्त कर सुग्रीव श्रीराम के पास आ पहुँचे—

ततोऽथ तं वालिनमग्र्यपौरुषं प्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणा हतम् ।
प्रदीप्य दीप्ताग्निसमौजसं तदा सलक्ष्मणं राममुपेयिवान् हरिः ॥ २५, ५४॥

सुग्रीव के अभिषेकार्थ आग्रह पर हनुमान् जी से श्रीराम ने कहा, 'पिता की आज्ञा पालन में चौदह वर्षों तक किसी गाँव या नगर में प्रवेश नहीं करूँगा''।
उन्होंने आगे कहा, "हनुमान् ! तुम युवराज पद पर अंगद का अभिषेक कराना''—

चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमान् पितुर्निर्देशपालकः ॥ २६, ९ ॥

वृत्तज्ञो वृत्तसम्पन्नमुदारबलविक्रमम ।
इममप्यङ्गदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय ॥ २६, १२ ॥

श्रीराम की बात पर सुग्रीव ने अंगद को आलिंगन कर युवराजपद पर अभिषिक्त किया--

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २६, ३८ ॥

गाने-बजाने नाचने के कोलाहल सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि निश्चय ही राज्यश्री पाकर सुग्रीव अपने सुहृद मित्रों के साथ उल्लास मना रहा है। फिर उनका अपना शोक प्रकट हुआ—

गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर ।
नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह ॥ २७, २७ ॥

लब्ध्वा भार्यां कपिवरः प्राप्य राज्यं सुहृद्वृतः ।
ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः सम्प्राप्य महतीं श्रियम् ॥ २७, २८ ॥

स्वयं दुखी लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, "भैइया, शोक को दूर करें और कार्य स्थिर करें। आप तो तीनों लोक को जीत सकते हैं, रावण की क्या हस्ती है, किंतु चार मास तो प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी''—

समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरो कुरु ।
ततः सपरिवारं तं राक्षस हन्तुमर्हसि ॥ २७, ३७ ॥

पृथिवीमपि काकुत्स्थ ससागरवनाचलाम् ।
परिवर्तयतुं शक्तः किं पुनस्तं हि रावणम् ॥ २७, ३८ ॥

यथोक्तमेतत् तव सर्वभीप्सितं नरेन्द्रकर्ता न चिरात्तु वानरः ।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवान् जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः ॥ २७, ४७ ॥

नियम्य कोपं परिपाल्यतां शरत् क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ।
वसाचलेऽस्मिन् मृगराजसंविते सेवर्तयञ्शत्रुवधे समर्थः ॥२७, ४८॥

शोकाभिभूत श्रीराम को सुग्रीव की अकर्मण्यता जानकर उसपर किञ्चित् क्रोध आ गया। उन्होंने लक्ष्मण कोसुग्रीव की प्रतिज्ञा की बात याद दिलानेको कहा और यह भो कहने को कहा, "सुग्रीव ! पूर्वोपकारी व्यक्ति को वचन दे उसको नहीं पालना भीषण दोष है। क्या तुम वाली के पथ पर ही जाना चाहते हो ? वाली तो केवल अकेले मारा गया पर तुम तो बन्धुबान्धवों के साथ ही जाओगे। मेरे तीक्ष्ण वाण अभी कुण्ठित नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त जो भी अच्छा समझना, कहना"—

चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः ।
मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥ ३०, ६४ ॥
अनाथो हृतराज्योऽहं रावणेन च धर्षितः ।
दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः ॥ ३०, ६७ ॥
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुङ्गवम् ।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥ ३०, ७० ॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥३०, ७१ ॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ३०, ७३ ॥
कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान् नोपभुञ्जते ॥ ३०, ७३ ॥
नूनं काञ्चन पृष्ठस्य विकृष्टस्य मया रणे ।
द्रष्टुमिच्छसि चापस्य रूपं विद्युद्गणोपमम् ॥ ३०, ७४ ॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥ ३०, ८१ ॥
एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया ।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥ ३०, ८२ ॥
यदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ ।
तत् तत् ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः ॥ ३०, ८३ ॥

अपने भाई के दुःख से दुखी होने के कारण लक्ष्मण को क्रोध का पारा चढ़ गया और उन्होंने सुग्रीव को वधकर अंगद को ही गद्दी पर बैठाने को ठाना––

न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते न मन्यते कर्मफलानुषङ्गान्।
न भोक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीं तथा हि नातिक्रमतेऽस्य बुद्धिः ॥३१, २॥

न धारये कोपमुदीर्णवेगं निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु ॥ ३१, ४ ॥

लक्ष्मण के वास्तविक क्रोध को देख श्रीराम ने उनसे कहा––'तुझ जैसे पुरुष ऐसा पाप नहीं करते, लक्ष्मण! तू उसे मीठी वाक्यों द्वारा कार्य याद दिला देना'––

समात्तबाणासनमुत्पतन्तं निवेदितार्थं रणचण्डकोपम्।
उवाच रामः परवीरहन्ता स्ववीक्षितं सानुनयं च वाक्यम् ॥ ३१, ५ ॥

न हि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत्।
कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ३१, ६ ॥

सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्।
वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये ॥ ३१, ८ ॥

भाई के आज्ञानुसार लक्ष्मण किष्किन्धा पहुँचे, क्रोध की मुद्रा में––

सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थो यथावत् पुरुषर्षभः।
प्रविवेश पुरीं वीरो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ३१, ९ ॥

प्लक्ष और प्रभाव नामक वानरों ने जाकर सुग्रीव से कहा, "बेटे और बन्धुओं के साथ जाकर लक्ष्मण को नतमस्तक हो प्रणाम कीजिये और उनके क्रोध को शमन कीजिये"––

सत्यसंधौ महाभागौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
मनुष्यभावं सम्प्राप्तौ राज्यार्हौ राज्यदायिनौ ॥ ३१, ४५ ॥

तयोरेको धनुष्पाणिर्द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः।
तस्य भीताः प्रवेपन्तो नादान् मुञ्चन्ति वानराः ॥ ३१, ४६ ॥

तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः सहबान्धवः।
गच्छ शीघ्रं महाराज रोषो ह्यद्योपशाम्यताम् ॥ ३१, ५० ॥

सुग्रीव ने कहा, "श्रीराम और लक्ष्मण से तो मुझे कोई भय नहीं है, किन्तु उनका कुपित हो जाना घबराहट की बात अवश्य है। मित्रता करना आसान है पर उसका निभाना कठिन है"––

न खल्वस्ति मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात् ।
मित्रं स्वस्थानकुपितं जनयत्येव सम्भ्रमम् ॥ ३२, ६ ॥

सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम् ।
अनित्यत्वात् तु चित्तानां प्रीतिरल्पोऽपि भिद्यते ॥ ३२, ७ ॥

हनुमान् जी ने राजहित के लिये निर्भय हो सुग्रीव वैसे कहा--

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम् ।
इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ॥ ३२, १८ ॥

हनुमान् ने कहा, "श्रीराम क्रोधित होने पर देवासुरादि सभी को जीतकर वशवर्ती बना सकते हैं। महाराज, प्रणिपात हो उन्हें प्रसन्न कीजिये और अपनी बात को पूरा कीजिये"--

अभिक्रुद्धः समर्थो हि चापमुद्यम राघवः ।
सदेवासुरगन्धर्वं वशे स्थापयितुं जगत् ॥ ३२, १९ ॥

न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत् ।
पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः ॥ ३२, २० ॥

तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः ससुहृज्जनः ।
राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे ॥ ३२, २१ ॥

सुग्रीव ने तारा को किसी यत्न से कुमार को प्रसन्न करने को कहा। उसे स्वयं ही जाकर अपने मधुर वचन से उन्हें उनके क्रोध को शमन करने का अनुरोध किया, क्योंकि महापुरुष स्त्रियों पर क्रोध नहीं करते--

ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् ।
उवाच हितमव्यग्रस्त्राससम्भ्रान्तमानसः ॥ ३३, ३१ ॥

यद्यस्य कृतमस्माभिर्बुध्यसे किंचिदप्रियम् ।
तद् बुद्ध्या सम्प्रधार्याशु क्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥ ३३, ३४ ॥

अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि ।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि ॥ ३३, ३५ ॥

त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति ।
नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम् ॥ ३३, ३६ ॥

सुग्रीव के निर्देशानुसार तारा लक्ष्मण के निकट पहुँची--

सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्बकाञ्चीगुणहेमसूत्रा ।
सुलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥ ३३, ३८ ॥

सुग्रीवपत्नी तारा पर दृष्टि पड़ते ही लक्ष्मण ने मुँह नीचे कर लिया और उदासीन भाव से खड़े रहे—

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीनतया महात्मा ।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः स्त्रीसंनिकर्षाद् विनिवृत्तकोपः ॥ ३३, ३९ ॥

मधुर वाणी में तारा ने पूछा —"कुमार ! कोप का क्या कारण है ?"—

किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे ।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः ॥ ३३, ४१ ॥

लक्ष्मण ने कहा, "भामिनि, तुम अपने पति को क्यों नहीं समझाती कि वह मद्यपान में इतना क्यों तल्लीन रहता और अपने पूर्वोपकारी के कार्य को भुला देता है" । मद्यपान का दोष भी लक्ष्मण ने बताया । गुणवान् मित्र के विपरीत होने पर कितना अनिष्ट हो सकता, वह नहीं जानता है—

स तस्या बचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितः ।
भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३३, ४२ ॥

किमयं कामवृत्तस्ते लुप्तधर्मार्थसंग्रहः ।
भर्ता भर्तृहिते युक्ते न चैनमवबुध्यसे ॥ ३३, ४३ ॥

नहि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते ।
पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते ॥ ३३, ४६ ॥

धर्मलोपो महांस्तावत् कृते ह्यप्रतिकुर्वतः ।
अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान् ॥ ३३, ४७ ॥

मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम् ।
तद् द्वयं तु परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम् ॥ ३३, ४८ ॥

तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम् ।
तत् कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे त्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥ ३३, ४९ ॥

लक्ष्मण की बात सुनकर तारा ने मधुर वाणी मे कहा, "कुमार ! आपके कार्यों को जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि आपका कोप क्यों है"—

ताराने आगे कहा, "कुमार, कामवृत्ति बड़ी प्रबला है । वानर तो प्रकृतितः कामी, भी होते ही हैं, इसे कालज्ञान कैसे रह सकता ? बड़े बड़े महर्षियों को भी काम से पाशित होने पर कालज्ञान लोप हो जाता है"—

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम् ।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः ॥ ३३, ५० ॥

जानामि कोपं हरिवीरबन्धोर्जानामि कार्यस्य च कालसङ्गम्।
जानामि कार्यं त्वयि यत्कृतं नस्तच्चापि जानामि यदत्र कार्यम् ॥३३,५३॥

न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः।
न देशकालौ हि यथार्थधर्मावेवेक्षते कामरतिर्मनुष्यः ॥ ३३, ५५॥

तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम्।
क्षमस्व तावत् परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम् ॥ ३३, ५६॥

महर्षयो धर्मतपोऽभिरामः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः।
अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ॥ ३३, ५७॥

ताराने पुनः कहा, 'कुमार ! आपने चरित्र रक्षा की, दूसरे की स्त्री का अवलोकन नहीं किया, किन्तु निश्छल भाव से दूसरी स्त्रियों का देखना अधर्म नहीं है, आइये"--

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम।
कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥ ३३, ५९॥

तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥ ३३, ६१॥

अन्दर जाने पर सुग्रीवको कामासक देख लक्ष्मण कोप पुनः उभड़ आया। उन्होंने परुष वचन द्वारा उसे सम्बोधित कर कहा, "सुग्रीव, पूर्वोपकारी व्यक्ति को दिये वचन को भुला दिया। जिस मार्ग से वाली गया वह अभी संकुचित नही हुआ है। क्या उसकी ही गति को अपनाना चाहते हो ? अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहो और उस मार्ग को नहीं अपनाओ''—

दिव्याभरणमाल्याभिः प्रमदाभिः समावृतम्।
संरब्धतररक्ताक्षो बभूवान्तकसंनिभः ॥ ३३, ६२॥

रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम्।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा ॥ ३४, ६॥

"सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीपते ॥ ३४, ७॥

शतमश्वानृते हन्ति सहस्त्रं तु गवानृते।
आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ३४, ९॥

पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर ॥ ३४, १० ॥

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ३४, १२ ॥
न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥ ३४, १८ ॥

लक्ष्मण के परुष वचन सुन तारा ने उनसे कहा, "कुमार ! सुग्रीव वानरों का राजा है, वह कठोर बचन सुनने की आशा नहीं करता और विशेष कर आपसे। आपने उसके कार्य जाने विना ही बड़ी कठोर बातें कह डालीं। वह तो आप लोगों के निमित्त सारे राज्य को, रुमा को, मुझको और अंगद को भी त्याग सकता है, ऐसी मेरी धारणा है। आज ही आपके पास करोड़ों भालू बन्दर पहुँचेगे। आप क्रोध को त्याग दीजिये"—

नैव लक्ष्मण ! वक्तव्यो नायं परुषमर्हति।
हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वाक्याद् विशेषतः ॥ ३५, २ ॥
स दुःखशापितः पूर्वं प्राप्येदं सुखमुत्तमम्।
प्राप्तकाले न जानीते विश्वामित्रो यथा मुनिः ॥ ३५, ६ ॥
न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण।
निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा ॥ ३५, १० ॥
रुमां मां चाङ्गद राज्यं धनधान्यपशूनि च।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥ ३५, १३ ॥
ऋक्षकोटिसहस्राणि गोलाङ्गूलशतानि च।
अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिंदम।
कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां दीप्ततेजसाम् ॥ ३५, २२ ॥

सुग्रीव ने विनम्रभाव से लक्ष्मण को कहा—"राम के उपकार का बदला कौन चुका सकता है ? वह सीता को अपने तेज से प्राप्त करेंगे, हम तो सहायक मात्र रहेंगे। यदि मुझसे कुछ अपराध वन गया हो तो उसे युझे दास जानकर क्षमा करें"—

कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥ ३६, ६ ॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥ ३६, ७ ॥
यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात् प्रणयेन वा।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ३६, ११ ॥

लक्ष्मण ने सुग्रीव की नम्रता और शिष्टता के लिये प्रशंसा की और कहा कि समर्थ होते हुए भी मेरे बड़े भाई एवं आपके अतिरिक्त कौन इतना विनीत हो सकता है ? श्रीराम के शोक के कारण जो मैंने कटुवचन कहे, उन्हें क्षमा करेंगे"—

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥ ३६, १२ ॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः
उपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥ ३६, १६ ॥
दोषज्ञः सति सामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति।
वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥ ३६, १७ ॥
यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत् क्षमस्व सखे ! मम ॥ ३६, २० ॥

यह सब हो जाने पर लक्ष्मण के साथ स्वर्णनिर्मित शिविकारूढ़ हो सुग्रीव श्रीरामजी के पास पहुँचे—

परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः।
स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ॥ ३८, १५ ॥
अवातरन्महातेजाः शिविकायाः सलक्ष्मणः।
आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ ३८, १८ ॥

श्रीरामजी हाथ जोड़े हुए सुग्रीव को आलिंगन कर बोले—

परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत्।
निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत् ततः ॥ ३८, १९ ॥

श्रीराम ने सुग्रीव से कहा—"मित्र ! धर्म, अर्थ और काम का सेवन ठीक ठीक निश्चित समय में ही होना चाहिये, जो इसके विपरीत आचरण करता उसका फल विपरीत ही होता है"—

धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम ॥ ३८, २० ॥
हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥ ३८, २१ ॥
अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः।
त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते ॥ ३८, २२ ॥

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा--"महावाहो ! आपके समक्ष अभी करोड़ों विशाल-काय वानर भालू आयेंगे"--

अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चान्त्यैश्च वानराः ।
समुद्राश्च परार्धाश्च हरयो हरियूथपाः ॥ ३८, ३१ ॥

आगमिष्यन्ति ते राजन् महेन्द्रसमविक्रमाः ।
मेघपर्वतसंकाशा मेरुविन्ध्यकृतालयाः ॥ ३८, ३२ ॥

इसे सुनकर श्रीराम ने सुग्रीव का गाढ़ आलिंगन किया--

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः ।
बाहुभ्यां सम्परीष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥ ३९, १ ॥

वानरोंके आजाने पर सुग्रीव ने श्रीराम जी से कहा, 'प्रभो ! मुझे, आपके सारे काम तो ज्ञात हैं ही, पर आप जैसा चाहें उन्हें आज्ञा दें''--

आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामरूपिणः ।
वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥ ४०, २ ॥

काममेषामिदं कार्यं विदित मम तत्त्वतः ।
तथापि तु यथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ४०, ९ ॥

श्रीराम ने कहा, "सुग्रीव, इस काम में तुम्ही प्रवीण हो और इस काम का मालिक भी''—

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४०, १० ॥

"नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः ।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥ ४०, १२ ॥

सुग्रोव ने हनुमान् जी से कार्य सम्बन्धी बातें विशेष रूप से कीं--

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् ।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ ४४, १ ॥

श्रीराम ने निश्चयार्थ अभिप्राय जानकर हनुमान् जी को सीता के पहचानस्वरूप अपनी अंगूठी दी--

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥ ४४, १२ ॥

हनुमान् जी ने अंगूठी को सुरक्षित रख श्रीराम जी को प्रणाम कर प्रस्थान किया—

स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥ ४५, १५ ॥

ढूंढ़ते हुए वानरों के थक जाने पर अंगद ने उन्हें ढाढ़स बढ़ाते हुए कहा, 'कर्म का फल अवश्य मिलता है। कार्यरत व्यक्तियों को आँखें नहीं लगती, साहस कर पुनः सीता की खोज में लग जाओ''—

अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः ।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेव विचिन्वताम् ॥ ४९, ७ ॥

अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
परं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम् ॥ ४९, ८ ॥

अंगद ने जब कालात्यय हो जाने पर सुग्रीव के पास वापस जाना नहीं चाहा, और उसके मुख पर विद्रोह की आशंका देखी तब हनुमान् ने उनसे कहा "अंगद ! जिस बिलको तुम त्राणस्थान समझते हो उसका विदारण लक्ष्मण के बाण के लिये एक खेल हैं।" उसे भय दिखा कर राह पर लाने के लिये यह युक्ति दी--

विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसः ।
आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥ ५४, १२ ॥

यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद् बिलमिति श्रुतम् ।
एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत् कार्यं विदारणम् ॥ ५४, १३ ॥

सम्पाती ने वानरों से कहा, "गन्धर्व तीक्ष्ण कामी होते, सर्प तीक्ष्ण कोपी, मृग तीक्ष्ण भयभीत और गृध्र तीक्ष्ण क्षुधार्त होते हैं"—

तीक्ष्णकामास्तु गन्धर्वास्तीक्ष्णकोपा भुजङ्गमाः ।
मृगाणां तु भयं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णक्षुधा वयम् ॥ ५९, ९ ॥

नहि सामोपपन्नानां प्रहर्ता विद्यते भुवि ।
नीचेष्वपि जनः कश्चित् किमङ्ग बत त्वद्विधः ॥ ५९, १७ ॥

वानरों से सम्पाती का सद्वचन—"वचन और बुद्धि से मैं आपकी सहायता करूंगा। आप जैसे लोग व्यर्थ में समय नहीं बिताते। राम लक्ष्मण के बाण तीनों लोक के रक्षण एवं विनाश के लिये समर्थ है, आप लोग निश्चित बुद्धि का आश्रय ले कार्य आरम्भ कर दें"—

वाङ्मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः ।
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः ॥ ५९, २४ ॥

रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः ।
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ॥ ५९, २६ ॥

तदलं कालसंगेन क्रियतां बुद्धिनिश्चयः।
नहि कर्मसु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ५९, २८ ॥

समुद्र पार करने की शक्ति में अंगद के सिवा सभी असमर्थ रहे, और अंगद को नेता होने के कारण जामवन्त ने समुद्र पार जाने से रोका—

मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदां नयः।
मूले हि सति सिध्यन्ति गुणाः सर्वे फलोदयाः ॥ ६५, २५ ॥

तब जामवन्त ने इस कार्य के लिये हनुमान् जी को प्रेरित किया—

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठमेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥ ६५, ३५ ॥

जामवन्त के द्वारा बल का स्मरण दिलाने पर अंगड़ाई ले बलवान् हनुमान् जो सौ योजन विस्तृत समुद्र पार करने के लिये तैयार हो गये। ऐसा देख सभी वानरवृद्ध हर्षोत्फुल्ल हो उठे—

तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम्।
वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ ६७, १ ॥
सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः।
विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ ६७ २ ॥

सभी बानरों से प्रशंसित हो हनुमान जी ने अपने शरीर को बढ़ा लिया और वानरों के बीच खड़े होकर बोले—'सौ योजन क्या, मैं अपने वायुवेग से हजारों योजन का छलांग कर जाऊंगा''—

संस्तूयमानो हनुमान् व्यवर्धत महाबलः।
समाविद्ध्य च लाङ्गूलं हर्षाद् बलमुपेयिवान् ॥ ६७, ४ ॥
हरीणामुत्थितो मध्यात् सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
अभिवाद्य हरीन् वृद्धान् हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ६७, ८ ॥
मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥ ६७, २७ ॥

फिर जामवन्त ने हनुमान् से कहा, "वीर पवन कुमार ! तुमने अपने ज्ञातिवर्ग के शोक को दूर किया। जब तक तुम नहीं लौट आवे, हम सब एक पेड़ पर खड़े तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे'—

वीर केसरिणः पुत्र वेगवन् मारुतात्मज ।
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः ॥ ६७, ३१ ॥
स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् ॥ ६७, ३४ ॥

शत्रुसंहारक वीरवर हनुमन्तलाल ने अपने मन में छलांग मारने की योजना में स्थिर होकर लङ्का चले गये—

स वेगवान् वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता ।
मनः समाधाय महानुभावो जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी ॥ ६७, ४१ ॥

इत्यार्षे संक्षिप्तश्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे किष्किन्धाकाण्डम्

सुन्दरकाण्डम्

हनुमान् जी ने उपस्थित वानरों से कहा, "मैं इसी वेग से श्रीराम के बाणों की गति के समान लङ्का पहुचूँगा और यदि वहाँ सीता जी को नहीं पाऊंगा तो देवलोक में जाकर उन्हें ढूढूँगा। वहां भी उन्हें नहीं पाने पर रावण को बाँध कर लेते आऊँगा"—

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ॥ १, ३९ ॥

नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम्।
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ॥ १, ४० ॥

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः।
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ॥ १, ४१ ॥

एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः ॥ १, ४३ ॥
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥ १, ४४ ॥

समुद्र में छिपा हुआ मैनाक पर्वत ने मनुष्यरूप धारण कर हनुमान् जी से कहा, 'आप जैसे अतिथि पूजा योग्य हैं"—

वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥ १, ११८ ॥

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता।
धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ॥ १, ११९ ॥

सिंहिका के वध पर चारणों ने हनुमान् जी को बधाई दी और कहा—"जिसके धैर्य, दृष्टि, बुद्धि और पटुता आपके समान हैं, वह किसी कर्म में खेद नहीं पाता"—

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर ॥ १, २०० ॥

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥ १, २०१ ॥

लङ्का पहुँच कर हनुमान् जी ने वनसमूह को देखा—

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन्।

योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥ १, २०३ ॥

प्रदोषकाल में हनुमान् जी का अत्यन्त लघु रूप में लंका प्रवेश—

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः ।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ २, ४९ ॥

प्रदोषकाले हनूमांस्तूर्णमुत्प्लुत्य वीर्यवान् ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथम् ॥ २, ५० ॥

नारीरूप में स्वयं लंका से हनुमान् जी की भेंट हुई । लङ्का ने कहा, "मैं स्वयं सर्वतः नगर की रक्षा करती हूँ ? फिर उसने घोर शब्द करती हुई उन्हें चाटा मारा—

अहं हि नगरीं लङ्कां स्वयमेव प्लवङ्गम ।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥ ३, ३० ॥

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम् ।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥ ३, ३८ ॥

इससे क्रोधित हो हनुमान् जी ने भी बायें हाथ से उसे चोट पहुँचायी, स्त्री समझ अधिक क्रोध तो नहीं किया, पर उस प्रहार से भी वह व्याकुल हो सहसा भूमि पर गिर पड़ी—

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः ।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३, ४० ॥

स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ॥ ३, ४१ ॥

लंका ने हनुमान् जी से प्राणदान की भीख माँगी और ब्रह्मा का वरदान कह सुनाया—"जब कोई वानर तुम्हें विवश कर डालेगा, तब समझ लेना राक्षसों पर भय आगया"—

प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम ।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥ ३, ४४ ॥

यदा त्वां वानरः कश्चिद् विक्रमाद् वशमानयेत् ।
तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥ ३, ४७ ॥

उसने और भी कहा—"रावण सीता के निमित्त सभी राक्षसों का नाश करेगा । वीरवर ! आप लंका प्रवेश कर सुखपूर्वक सीता की खोज करें"

सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः।
रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः॥ ३, ४९॥
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि॥ ३, ५०॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वरः पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम्।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम्॥ ३, ५१॥

उसके बाद नगरप्रवेश कर उन्हों ने मानो शत्रु के माथे पर वाम पाद रख दिया। रावण के प्रत्यक्ष एश्वर्य को देख कर हनुमान् चकित से रह गये। उन्हें मालूम पड़ा मानो यही स्वर्ग है—

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि॥ ४, ३॥
या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने।
सा रावणगृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी॥ ९, ८॥
या च राज्ञः कुवेरस्य यमस्य वरुणस्य च।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह॥ ९, ९॥
स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत्।
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः॥ ९ ३०॥

रावण के अन्तःपुर की स्त्रियों को देखकर हनुमान् जी का अनुमान—

न तत्र काश्चित् प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा विना वरार्हां जनकात्मजां तु॥ ९, ७०॥
बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य यदीदृशी राघवधर्मपत्नी।
इमा महाराक्षसराजभार्याः सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः॥ ९, ७२॥

सीता को ढूंढ़ते हुए हनुमान् ने रावण की भुजाओं का वर्णन किया (दो भुजाओं का उल्लेख)—

ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव॥ १०, २१॥
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः॥ १०, २२॥

तमाम ढूँढ़ने के बाद सीताजी को न पा हनुमान् जी खेदित और हतोत्साहित हो विविधरूप से विचारने लगे—

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो लतागृहांश्चित्रगृहान् निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रतिदर्शनोत्सुको न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥१२, १॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः ।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ १२, ६ ॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् ।
ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने ॥ १२, ८ ॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च वा ।
गतं पारसमुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥ १२, ९ ॥

कुछ देर हताश रहने के बाद फिर हनुमान जी ने सोचा "हताशा बुरी चीज है। उत्साह से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। मैं फिर से उन उन स्थानों में भी जानकी जी को ढूढूँगा जहाँ अब तक नहीं ढूँढ़ पाया हूँ"—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ १२, १० ॥

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ १२, ११ ॥

तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् ।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान् ॥ १२, १२ ॥

सीता जी को न पाने का समाचार श्रीराम से कहने और न कहने में भी संकट मालूम पड़ता है, ऐसा हनुमान् जी ने सोचा—

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥ १३, १७ ॥

निवेद्यमाने दोषः स्याद् दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥ १३, १८ ॥

अन्त में अपना संक्षिप्त रूप बना हनुमान् जी साहस बटोर कर और सभी देवताओं को नमस्कार कर अन्वेषण कार्य में फिर जुट गये और तत्पश्चात् अशोक वाटिका में पहुँचे—

विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ॥ १३, ४७॥

ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जरः ।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ॥ १३, ४९ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १३, ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः ॥१३, ५९॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्य सुग्रीवाय च मारुतिः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति ॥ १३, ६० ॥

संक्षिप्तोऽयं मयाऽऽत्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥ १३, ६४ ॥

हनुमान् जी ने सघन पत्तों में छिपकर सोचा—'यदि सीता जो जीवित होंगी तो यहां वह अवश्य आयेंगी और वह वहीं उनकी प्रतीक्षा करने लगें—

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ १४, ५१ ॥

एवं तु मत्वा हनुमान् महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ १४, ५२ ॥

राक्षसियों से घिरी दुबली पतली पीतैकवस्त्रा, शोकमग्ना, अलंकाररहिता, दीना, गरमसाँस लेने वाली दुबली सीता को हनुमान् जी ने अशोकवाटिका में देखा—

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १५, १८ ॥

उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥ १५, १९ ॥

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥ १५, २१ ॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥ १५, २४ ॥

सीताजी के जो जो चिह्न श्रीराम ने हनुमान् जी को बताये थे वे ही चिह्न उन्होंने उनमें पाया और उन्हें निश्चय हो गया कि यही सीता हैं। सीता जी को देखकर हनुमान् जी को प्रसन्नता हुई, और मनही मन प्रभु श्रीराम की उन्होंने प्रशंसा की—

श्यामानि चिरयुक्तत्वात् तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥ १५, ४३ ॥

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥ १५, ४४ ॥

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ १५, ४९ ॥

स्त्रीप्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नीनष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ १५, ५० ॥

एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसंभवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥ १५, ५४ ॥

सीता को देख हनुमान् का दुःख—"हा! जिनकी रक्षा करनेवाले श्रीराम लक्ष्मण थे, उन्हीं की रक्षा ये राक्षसियाँ कर रही है" हनुमान् ने निश्चितरूप से सीताजी को पहचान लिया—

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥ १६, १९ ॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ १६, ३२ ॥

उस अवस्था में सीता का रूपवर्णन—

मलमण्डनदिग्धाङ्गी मण्डनार्हाममण्डनाम् ।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ १९, ६ ॥

कामी रावण अपनी मृत्यु से प्रेरित हो वहाँ आकर सीताजी को लोभ द्वारा वश करने का प्रयास करने लगा—

समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥ १९, २२ ॥

स तां पतिव्रतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ २०, २ ॥

"कामये तु विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ २०, ३ ॥

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ २०, ५ ॥

यत् यत् पश्यामि ते गात्र शीतांशुसदृशानने।
तस्मिन् तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥ २०, १५

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसाऽपि वा ॥ २०, ३४ ॥

सीता ने रावण की प्रार्थना को अयोग्य और पापपूर्ण बताया और उसे उससे विरत होने की सलाह दी। उन्होंने उसे अनीति और अनाचार के दुष्परिणाम भी बताये—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः ॥ २१, १ ॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत्।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ २१, ४ ॥

साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ॥ २१, ७ ॥

आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ २१, ८ ॥

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तते।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ २१, ९ ॥

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥ २१, ११ ॥

स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शनः।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥ २१- १३ ॥

सीताने श्रीराम की तुलना में रावण को निकृष्ट बताया। अपना दृढ़ पातिव्रत तत्व एवं अपने पतिका पराक्रम भी बतलाया। रावण को श्रीराम से मैत्री कर लेने का भी सुझाव दिया—

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥ २१, २० ॥

वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम्।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥ २१, २३ ॥

क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥ २१, ३३ ॥

सीता की बातों से रावण को क्रोध हुआ। दो महीने का और समय दिया, जिसके बीच वह उसके प्रस्ताव को मान ले, अन्यथा समय पूरे होने पर उसके रसोइये उसे टुकड़े-टुकड़े कर कलेवा तैयार कर दे—

संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ २२, ३ ॥

वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते ।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ २२, ४ ॥

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ २२, ६ ॥

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ २२, ८ ॥

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥ २२, ९ ॥

सीता ने कहा, "क्या यहाँ कोई ऐसे नहीं हैं जो इसे बुरे कर्म से रोके? रावण! यदि तू पराक्रमी ही था, तो सूने में मेरा हरण क्यों किया ? चोरी क्यों की ? मैं तो स्वयं तुझे भस्म कर डालती, पर तू तो श्रीराम का आखेट हैं उन्हींके हाथ मरेगा"—

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसे स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात् ॥२२, १३॥

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २२, २० ॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥ २२, २१ ॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ २२,२२ ॥

इस पर रावण ने क्रोधित होकर उसी समय सीता को मार डालना चाहा—

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ॥ २२, ३१ ॥

धान्यमालिनी ने रावण को सीता को वध करने से रोक कर समझाया—

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ।
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥

मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया।
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ॥ २२, ४० ॥

अकामं कामयानस्य शरीरमुपतप्यते।
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥ २२, ४२ ॥

दृढव्रती सीता को धमका कर रावण अपने भवन में चला गया—

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ॥२२, ४६॥

राक्षसियों द्वारा अनेक भय दिखाने, रामको हीन बतानेपर भी सीताने कहा—
'कुछ भी हो राम में ही मैं अनुरक्त हूं'—

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ २४, ९ ॥

रावण के चले जाने पर राक्षसियों के त्रास सुनकर सीता ने किसी प्रकार भो हो, अपने प्राण त्याग को बुद्धि करने लगीं, पर कोई ऐसा साधन वहां उपलब्ध नहीं था—

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ २४, १२ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत् परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥ २४, २० ॥

दृश्यमाने भवेत् प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥ २६, ४१ ॥

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥ २६, ४७ ॥

प्रियान्न सम्भवेद् दुःखमप्रियादधिकं भवेत्।
ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ २६, ४८ ॥

साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥ २६, ४९ ॥

हनुमान् जी ने अशोक वृक्ष के ऊपर से राक्षसियों की डाँट तथा त्रिजटा से, की गई राक्षसियों को फटकार आदि सब कुछ सुना—

हनूमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जितम् ॥ ३०, १ ॥

हनुमान् जी सोचने लगे, 'जिसे ढूंढ़ने के लिये हजारों हजार वानर सभी दिशाओं में गये हुए हैं, वह देवी मुझे मिल गई, अब प्रश्न बात करने की विधि की रही, वह विधि भी उन्होंने निश्चित कर ली—

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३०, ३ ॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ ३०, १८ ॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥ ३०, १९ ॥

उन्होंने सीता जी के मन में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये ऐसी कथा आरम्भ की जिसमें सीता की रुचि पैदा हो और किसी प्रकार की दुःशङ्का भी पैदा नहीं हो—

विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः ।
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ॥ ३०, ३३ ॥

कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ।
यं तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥ ३०, ३४ ॥

असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससंशयम् ॥ ३०, ३५ ॥
भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३०, ३७ ॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ३०, ३८ ॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥ ३०, ४३ ॥

हनुमान् जी ने श्रीराम की कथा संक्षेप में कह सुनाई और दण्डकारण्य की घटना तथा सीताहरण का व्योरा सुनाया। उनकी खोज में सारी पृथ्वी छान ली गई है। मैं स्वयं सम्पाती की बात मान कर सौयोजन विस्तृत समुद्र पार कर आया हूं। सीता जी के रूप, वर्ण-कान्ति के बारे में जैसा रामजी से सुना था वैसा ही रूप गुण वर्णादि मैं यहां पाता हूं"—

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ ३१, २ ॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ ३१, ६॥

तस्य सत्याभिसंधस्य वृद्धस्य वचनात् पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम्॥ ३१, ८॥

जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु॥ ३१, १०॥

सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः।
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः॥ ३१, ११॥

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम्।
तस्य हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान् प्लुतः॥ ३१, १४॥

यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम्।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया॥ ३१, १५॥

हनुमान् जी की बात सुनकर सीता को प्रसन्नता—

निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती॥ ३१, १८॥

सीता की उत्कण्ठा के कारण हनुमान् जी पेड़ से उतर कर उन्हें प्रणाम किया। तब सीता जी ने उनसे कहा—"अब केवल दो मास और जीवन धारण करूँगी यही अवधि निर्धारित है—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः॥ ३३, २५॥

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ ३३, ११॥

पहले हनुमान् पर रावण होने का संदेह हुआ। उसे दूर होने पर विश्वस्तरूप से बातें होने लगी—

सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः।
प्रति-संहृष्ट-सर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत्॥ ३४, ५॥

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम्।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥ ३४, ६॥

हनुमान् जी ने कहा "देवि, तीनों लोक रघुनाथ जी के आश्रित हैं। जिसने

उन्हें अलग हटाकर शून्य आश्रम से आपका अपहरण किया है, वह इसका फल अवश्य भोगेगा''—

बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः।
अपक्रम्याश्रमपदान् मृगरूपेण राघवम् ॥ ३४, ३१ ॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम्।

हनुमान् जी ने कहा—''देवि ! आपकी प्राप्ति के लिये श्रीराम न तो रात में सोते हैं और न समय पर भोजन ही करते हैं, सदैव इसी यत्न में व्यस्त रहते हैं कि किस प्रकार आप उन्हें मिलेंगी''—

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥ ३६, ४१ ॥
अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ॥ ३६, ४४ ॥
स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥ ३६, ४६ ॥

सीता देवी ने कपिवर से विश्वस्त रूप से बातें कर वह बोलीं—''कोई सुखी हो अथवा दुःखी, काल मानो उसी रस्सी से बाँध कर उसे घसीट रहा हो, ऐसा लगता है। कालही ने मुझे, श्रीराम को और लक्ष्मण को इस गति में पहुँचाया है। रावण को मेरा लौटाना रुचता ही नहीं''—

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३७, ३ ॥
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥ ३७, ४ ॥
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशं गतः ॥ ३७, १० ॥

घबराती हुई सीता को हनुमान् जी ने इस प्रकार कहा—'देवि ! अधिक घबराहट की क्या आवश्यकता ? आप मेरी पीठपर चढ़ें और मैं आज ही श्रीराम से आपको मिला दूँ। मुझमें उतनी शक्ति है कि रावणसहित लंका को भी उठा कर साथ लेता चलूँ''—

इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम्।
अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान् कपिः ॥ ३७, १९ ॥

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम्॥ ३७, २०॥

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात्।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते॥ ३७, २१॥

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम्॥ ३७, २२॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी॥ ३७, २६॥

हनुमान् जी उस समय वहाँ अल्प शरीरस्थ थे। उनका छोटा देह देख, सीता ने आश्चर्य चकित हो कहा—तुम इस अल्पकाय से किस प्रकार से ले जा सकते हो? ऐसा कहना तो तुम्हारी बानरी बुद्धि का ही परिचायक मालूम होता हैं'—

हनूमन् दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप॥ ३७, ३१॥
कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि।

सीता जी नहीं जानती थीं कि हनुमान् कामरूप है। वे आग सरीखे जाज्वल्यमान विशाल शरीर बनाकर उनके सम्मुख खड़े हो गये और बोले—"पर्वत, वन नगर सहित सारी लंका को उठाकर मैं ले जा सकता हूं; ऐसी मेरी शक्ति है'—

इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः।
दर्शयामास सीतायाः स्वरूपमरिमर्दनः॥ ३७, ३५॥

मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः॥ ३७, ३७॥

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम्।
लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे॥ ३७, ३९॥

जानकी जी ने हनुमान् जी के तेजस्वी बल पौरुष को देख कर चकित और प्रसन्न हो गई, किन्तु उनकी पीठ पर चढ़कर न जाने की कारण युक्त अपनी इच्छा बताई। उन्होंने दलबल सहित श्रीराम को लङ्का लाकर युद्ध में रावण को बन्धु बान्धवों सहित मार कर मुझे अपने साथ ले जायँ वह तभी उनके योग्य काम होगा। ऐसा ही आप करें—

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम्॥ ३७, ४२॥

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत् तव ॥ ३७, ४५ ॥

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥ ३७, ६२ ॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ ३७, ६३ ॥

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ३७, ६४ ॥

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय।
चिराय रामं प्रतिशोककर्षितां कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम् ॥ ३७, ६८ ॥

हनुमान् जी ने कहा, "देवि! आपनें जो कुछ कहा वह आप ही के योग्य है। मैंने भी केवल श्रीराम को प्रिय करने की इच्छा से ही वैसा प्रस्ताव किया था"—

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ ३८, २ ॥

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत् समुदीरितम् ॥ ३८, ७ ॥

सीता ने कपिवर से श्रीराम को कहने का संवाद दिया, हे प्रभो! एक साधारण अपराध के लिये कौए पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था, फिर इसे क्यों क्षमा कर रहे हैं? जो आपके पास से मुझे हर लाया है—

मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम्।
कस्माद् यो माहरत् त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ॥ ३८, ३७ ॥

हनुमान्जी ने कहा—"देवि! रावण को सबन्धु-बान्धव मारकर श्रीराम आपको अपने नगर ले जायँगे—

हत्वा च समरक्रूरं रावणं सहबान्धवम्।
राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रतिनेष्यति ॥ ३८, ५१ ॥

सीता ने कहा, "मैं विशेष क्या कहूँ, जिसमें रघुनाथजी कार्यरत हो जायं वैसा यत्न कराओ। उनसे मेरी ओर से कहना "सत्य कहती हूँ, नाथ! सिर्फ महीने भर अपने को जीवित रखूँगी, उसके बाद प्राणत्याग करूँगी'—

त्वमस्मिन् कार्यनिर्वाहे प्रमाणं हरियूथप।
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ॥ ३८, ६३ ॥

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज॥ ३८, ६४॥
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते। ३८, ६४॥

सीता जी ने फिर वस्त्र में बंधे चूड़ामणि निकाल कर रघुनाथ जी को देने के लिये कहा—

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्॥
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥ ३८, ६६॥

उस मणि रत्न को लेकर हनुमान् जी ने सीताजी को प्रदक्षिणा की और मणि को सुरक्षित रख चलने की तैयारी की—

मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः॥ ३८, ६८॥

मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात्।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे॥ ३८, ७०॥

सीता ने कहा, "हनुमन्! इस समुद्र को पार करने की शक्ति तो केवल वायु गरुड़ और तुमको ही है, फिर समुद्र पार कैसे किया जायगा? ऐसे तो तुम अकेले ही इस कार्यके लिये पर्याप्त हो, किन्तु इस विजय का सारा श्रेय तो तुम्हारा ही होगा। यदि तुम इन लोगों के साथ मिलकर श्रीराम के द्वारा रावण पर विजय प्राप्त करो तो यह काम श्रीराम के योग्य होगा"—

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने।
शक्तिः स्याद् वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा॥ ३९, २६॥
तदस्मिन् कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः॥ ३९, २७॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः॥ ३९, २८॥
बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वपुरं यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ ३९, २९॥

हनुमान् जी ने सीताजी को ढाढ़स बधाया और आश्वासन दिया कि उनके जाते ही और समाचार पाते ही श्रीराम सुग्रीवादि योद्धाओं के साथ आकर राक्षसों को वधकर उन्हें (सीताजी को) अपनी पुरी अयोध्या ले जायेंगे—

देवि हर्यक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः।
सुग्रीवः सत्यसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः॥ ३९, ३३॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीव संनिधौ ॥ ३९, ३८ ॥

क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि।
रावणं चैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं बलात् ॥ ३९, ४३ ॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ॥ ३९, ५४ ॥

सीताजी से विदा लेकर और रावण का अत्याचार देख हनुमान् जी ने विचार किया कि वापस जाने के पूर्व रावण की वाटिका को विध्वंस कर डाला जाय और जब राक्षसों के योद्धा सामने आजायँ तब उन्हें भी मार डाला जाय। इस प्रकार रावण के बल का भी परिचय मिल जायगा—

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ ४१, २ ॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते ॥ ४१, ३ ॥

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ४१, ५ ॥

नह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ४१, ६ ॥

इहैव तावत् कृतनिश्चयो ह्यहं व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम्।
परात्मसम्मर्दविशेषतत्त्ववित् ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ४१, ८ ॥

अहं च तैः संयति चण्डविक्रमैः समेत्य रक्षोभिरभङ्गविक्रमः।
निहत्य तद् रावणचोदितं बलं सुखं गमिष्यामि हरीश्वरालयम् ॥ ४१, १३ ॥

इसके बाद उन्होंने प्रमदावन को विध्वंस कर वहाँ के रक्षकों को मार डाला—

ततस्तद्धनुमान् वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ४१, १५ ॥

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च सादितैर्व्यालैर्मृगैरार्तरवैश्च पक्षिभिः।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः प्रणष्टरूपं तदभून्महद् वनम् ॥ ४१, १९ ॥

ततः स कृत्वा जगतीपतेर्महान् महद्व्यलीकं मनसो महात्मनः।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः ॥ ४१, २१ ॥

वह वानर कौन हैं? ऐसा राक्षसियों के पूछने पर सीताजी ने कहा—"मुझे क्या मालूम कि वह कौन हैं? साँपके पदचिह्न को साँप ही जानता है। राक्षसी माया को राक्षस ही जानते हैं—

यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद् वा करिष्यति।
अहिरेव ह्यहेः पादान् विजानाति न संशयः॥ ४२, ९॥

अहमप्यतिभीतास्मि नव जानामि को ह्ययम्।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम्॥ ४२, १०॥

राक्षसियों ने जाकर रावण से कहा—"राजन् एक वानर ने जो जानकी से बातें की थीं, प्रमदावन को उजाड़ दिया है, किन्तु जानकी जहाँ हैं, वह सुरक्षित ही हैं। उसे आप दण्ड दें"—

अशोकवनिकामध्ये राजन् भीमवपुः कपिः।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः॥ ४२, १३॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः।
यत्र सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः॥ ४२, १७॥

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि।
सीता सम्भाषिता येन वनं तेन विनाशितः॥ ४२, २०॥

बहुतेरे सैनिकों के मारे जाने के बाद रावण ने हनुमान जी से लड़ने के लिये जाते समय पांच सेनापतियों को अपनी रक्षा के लिए सलाह दी—

तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे।
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला॥ ४६, १६॥

हनुमान् जी ने इन पांच सेनापतियों को भी सदलबल वध कर डाला—

ततः कपिस्तान् ध्वजिनीपतीन् रणे निहत्य वीरान् सबलान् सवाहनान्।
तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये॥४६, ४१॥

रावण के कुमार अक्ष हनुमान् जी से युद्ध के लिये आया। उसके युद्धकौशल से कपिवर हनुमान् जी बहुत प्रभावित हुए, किन्तु उसके बढ़ते हुए हौसले को देख उन्होंने उसे शीघ्र अन्त कर डाला—

तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा जगाम चिन्तां स च मारुतात्मजः॥४७,२४॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते।
प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः॥४७, २८॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात् पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥४७, ३५॥
निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥४७, ३८॥

तब मेघनाद का आना हुआ । हनुमान् जी और मेघनाद में घमासान युद्ध हुआ । कोई किसी से पराजित नहीं हुआ—

इन्द्रजित् स रथं दिव्यमाश्रितश्चित्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥ ४८, २५ ॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोऽधिपतेस्तनूजः सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥४८, २६॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥४८, ३१॥

अन्त में इन्द्रजित ने जान लिया कि हनुमान् को जतोना असंभव है । अतः उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया । हनुमान् ने अपनी इच्छा से ही बन्धन को स्वीकार कर लिया । उन्हें भी ब्रह्माजी का अनुग्रह प्राप्त था । थोड़ी देर में वह स्वयं मुक्त हो जाते थे । राक्षसों ने उन्हें दूसरी रस्सियों से बाँध रावण के पास उपस्थित किया—

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने शरेष्वमोघेषु च सम्पतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥ ४८, ३४ ॥

ततः पितामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
संदधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥ ४८, ३६ ॥

स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥ ४८, ४२॥

ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम् ।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहते ॥ ॥ ४८, ४६ ॥

राक्षसों ने हनुमान् जी को बाँधकर रावण की राजसभा में उपस्थित किया—

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ ४८, ५४ ॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥ ४८, ४८ ॥

दरवार में जिस क्रम से उन्हें प्रश्न किया गया उसी क्रम से उन्होंने रावण को उत्तर दिया—

यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ४८, ६१ ॥

हनुमान् जी सोचने लगे कि यदि रावण में अधर्म नहीं रहता तो यह देवताओं का भी रक्षक और शासक होता—

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥ ४९, १८ ॥

हनुमान् जी से प्रहस्त ने प्रश्न किया—"यहाँ आने वन उजाड़ने और राक्षसों के मारने का क्या कारण है? सच बताओ, नहीं तो अपना जीना भी दुर्लभ है"—

यदि तावत् त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम्।
तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद् भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ५० १८ ॥

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च।
चाररूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ५०, ९ ॥

विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा।
नहि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम ॥ ५०, १० ॥

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदश्चापि दुर्लभं तव जीवनम् ॥ ५०, ११ ॥

हनुमान् ने जी क्रमबद्ध यथार्थ उत्तर दिया कि, मैं इन्द्र, वरुण आदि से नहीं भेजा गया हूँ आपनी जातीय स्वभाव से आया हूँ। वस्तुतः अमितौजा राम का दूत हूँ। वानरेन्द्र सुग्रीव का सन्देश लाया हूँ, उसे सुनिये—

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नाभिचोदितः ॥ ५० १३ ॥

जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया ॥ ५०, १४ ॥

वनं राक्षस राजस्य दर्शनार्थे विनाशितम्।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ताः बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ५०, १५ ॥

रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धं देवासुरैरपि ॥ ५०, १६ ॥

पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः।
राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥ ५०, १७॥

विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवेदितः।
केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ ५०, १८॥

दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥ ५०, १९॥

अहं सुग्रीव संदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके।
राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ ५१, २॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः।
धर्मार्थसहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ५१, ३॥

रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः।
तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सीतेति विश्रुता ॥ ५१, ६॥

वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ५१, ७॥

मार्गमाणस्तु तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः।
ऋष्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च संगतः ॥ ५१, ८॥

हनुमान् ने सुग्रीव की मैत्री, वाली का वध, श्रीराम की अलौकिक शक्ति, वध आदि का वर्णन किया और सीताजी को लौटा देने का परामर्श दिया —

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम्।
सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितुम् ॥ ५१, ९॥

ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम्।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥ ५१, १०॥

त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुङ्गवः।
स तेन निहतः संख्ये शरेणैकेन वानरः ॥ ५१, ११॥

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ५१, १५॥

समुद्रं लङ्घयित्वैव त्वां दिदृक्षुरिहागतः।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥ ५१, १६॥

तद् भवान् दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः।
परदारान् महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ ५१, १७॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन् विद्येत कश्चन।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात्॥ ५१, २०॥

तत् त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम्॥ ५१, २१॥

अवध्यतां तपोभिर्या भवान् समनुपश्यति।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान्॥ ५१, २६॥

सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः।
मानुषो राघवो राजन सुग्रीवश्च हरीश्वरः।
तस्मात् प्राणपरित्राणं कथं राजन् करिष्यसि॥ ५१, २७॥

न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम्।
तदैव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशने॥ ५१, २८॥

सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥ ५१, ३९॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे॥ ५१, ४३॥

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥ ५१, ४७॥

हनुमान् की धर्मयुक्त बातें सुन रावण ने उन्हें बध कर डालने की आज्ञा दी—

स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः समादिशत् तस्य वधं महाकपेः॥ ५१, ४५॥

विभीषण ने तर्कद्वारा रावण को वध की आज्ञा से विरत कराया। रावण ने उन्हें विरूप करना ही ठीक समझा—

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः॥ ५२, ५॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम्।
न दूतवध्या प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः॥ ५२, १४॥

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान् वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥ ५२, १५॥

साधुर्वा यदि वा साधुः परैरेषः समर्पितः।
ब्रुवन् परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति॥ ५२, २१॥

रावण ने कहा—'वानरों को पूँछ बहुत प्यारी होती है, इसे ही जला दी जाय'—

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ५३, ३ ॥

राक्षसों ने शीघ्र रावण की आज्ञा का पालन किया—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः ।
वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ५३, ६ ॥

श्रीरामजी के प्रिय करने के लिये ही हनुमान् जी सारे कष्ट तथा अपमान सहते रहे, नहीं तो उन सबों के विध्वंस के लिये वे अकेले ही पर्याप्त थे—

सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ।
किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ॥ ५३, १३ ॥

अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ।
कामं बध्नन्तु मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ॥ ५३, १५ ॥

पीडां कुर्वन्ति रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः ॥ ५३, १५ ॥

जब सीताजी को मालूम हुआ कि हनुमान् जी की पूँछ में आग लगा दी गई है तब उन्होंने अग्निदेव की उपासना की, उसमें हनुमान् जी के लिये वह शीतल हो जायं, उन्हें कष्ट नहीं हो—

मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ ५३, २६ ॥

"यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥ ५३, २७ ॥

यदि किंचिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ॥ ५३, २८ ॥

यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ॥ ५३, २९ ॥

यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसंगरः ।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः" ॥ ५३, ३० ॥

हनुमान् जी ने अपने बन्धन को दूर कर दिया और पास खड़े राक्षसों को बध कर सारी लंका जला डाली—

ततश्छित्वा च तान् पाशान् वेगवान् वै महाकपिः ।
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ॥ ५३, ३९ ॥

स भूत्वा शैलसंकाशः क्षणेन पुनरात्मवान्।
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् ॥ ५३, ४१ ॥

विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान् पुनः पर्वतसंनिभः ॥ ५३, ४१ ॥

बहुत से बड़े बड़े राक्षसों को तो उन्होंने मार ही डाला था, वन को भी नाश कर डाला और अब लंकादहन कर उसके दुर्ग को भी विनाश का विचार किया और उसे कर ही डाला—

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ५४, ३ ॥

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत् सुखपरिश्रमम्।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन् मम स्यात् सफलः श्रमः ॥ ५४, ४ ॥

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं तस्थौ हनूमान् पवनात्मजः कपिः ॥५४,४३॥

स राक्षसांस्तान् सुबहूंश्च हत्वा वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा ॥ ५४, ४४ ॥

लंका को दग्ध करने के बाद उन्होंने समुद्र में जा निर्वापण किया—(पूंछ बुझाई)—

लङ्कां समस्तां सम्पीड्य लाङ्गुलाग्निं महाकपिः।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः ॥ ५४, ४९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥ ५४, ५० ॥

"लंका दग्ध करते समय क्या सीता जी को भी मैंने क्रोध में आकर जला तो न दिया ? क्रोधी व्यक्ति क्या क्या नहीं कर डालता है। मुझे तो विश्वास है कि सीता जी में अग्नि को भी दग्ध करने की शक्ति है, तब भला उन्हें अग्निदेव कैसे जला सकते हैं। बाद प्रत्यक्षरूप से सीताजी को देखकर श्रीराम के पास जाने का विचार किया—

तस्याभूत् सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत।
लङ्कां प्रदहता कर्म किंस्वित् कृतमिदं मया ॥ ५५, २ ॥

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ५५, ३ ॥

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ५५, ४ ॥

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ५५, ५ ॥

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ५५, ६ ॥

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् ।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥ ५५, ७ ॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ ५५, ११ ॥

धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम् ।
ईश्वरेणापि यद् रागान्मया सीता न रक्षिता ॥ ५५, १६ ॥

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ ५५, २८ ॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥ ५५, ३५ ॥

लङ्का दहन के पश्चात् हनुमान् जी ने जाकर सीता जी से भेंट की—

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् ।
अभिवाद्याब्रवीद् दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ ५६, १ ॥

सीताजी ने बड़े दुःख से कहा—"वीरवर, यहाँ से जाकर जब तक तुमलोग फिर आओगे तब तक शायद ही मैं जीवित रह सकूँगी'—

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तुः स्नेहान्विता वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥ ५६, २ ॥

'गते हि हरिशार्दूल पुनः सम्प्राप्तये त्वयि ।
प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुङ्गव' ॥ ५६, ६ ॥

हनुमान् जी ने उन्हें उत्साहित किया और शीघ्र श्रीराम लक्ष्मण आदि के साथ लेकर आने का विश्वास दिलाया—

'क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्छोकं व्यपनयिष्यति' ॥ ५६, २१ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥ ५६, २२ ॥

हनुमान् जी सीता जी से विदा लेकर दक्षिण से उत्तर की ओर आकाश मार्ग से चल पड़े—

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥ ५६, ४१ ॥
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम्।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥ ५६, ५१ ॥

मार्ग में आते हुए हनुमान् जी अपनी पूँछ हिलाते हुए भीषण हर्षनाद कर रहे थे—

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनः पुनः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ५७, ८ ॥
स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः।
ननाद सुमहानादं लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् ॥ ५७, १६ ॥

जाम्बवन्त ने कहा, "हनुमान् जी को अवश्य सफलता मिली है, इसीसे यह हर्षध्वनि है"—

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान् नात्र संशयः।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥ ५७, २६ ॥

हनुमान् जी ने अंगद को प्रणाम कर उनसे आदृत होकर कहा—"मैंने देवी को देख लिया"—

ततस्तु वेगवान् वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः।
निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ॥ ५७, २९ ॥
हनूमांस्तु गुरून् वृद्धान् जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥ ५७, ३५ ॥
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
'दृष्टा देवीति' विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥ ५७, ३६ ॥

अङ्गद ने हनुमान् से कहा कि आपकी शक्ति की तुलना किसी में नहीं है, क्योंकि शतयोजन समुद्र को लाँघकर पुनः आ गये—

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ॥ ५७, ४५ ॥

फिर भी सब मिलकर यह शुभ समाचार सुनाने को श्रीराम जी के पास चले। रास्ते में सुग्रीव के रक्षित मधुवन में मधुपान करने लगे—

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः।
महेन्द्राग्रात् समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः॥ ६१, २॥
प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम्॥ ६१, ७॥

ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः॥ ६१, ११॥
ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान् कपीन्।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे॥ ६१, १२॥

अंगद ने प्रसन्नता में फलों को खाते बानरों को रोकने पर अपने मधुवन में नाना दधिवल को पीटा—

स वृक्षं तं महाबाहुमापतन्तं महाबलम्।
वेगवन्तं विजग्राह बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः॥ ६१, २५॥
मदान्धो न कृपां चक्रे आर्यकोऽयं ममेति सः।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगेन वसुधातले॥ ६१, २६॥

खिन्न होकर वनपाल दधिबल सुग्रीव के पास पहुँच कर कहा कि हमारे मना करने पर भी मधुबन के फल खाते हनूमदादिक वानरों ने अनेक प्रकार से मुझे मारकर कष्ट पहुँचाया है—

एवमुक्त्वा दधिबलो वनपालान् महाबलः।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः॥ ६२, ३४॥
स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत्॥ ६२, ३८॥
नैवर्क्षरजसा राजन् न त्वया न च वालिना।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः॥ ६३, ५॥
न्यवारयमहं सर्वान् सहैभिर्वनचारिभिः।
अचिन्तयित्वा मां हृष्टा भक्षयन्ति पिबन्ति च॥ ६३, ६॥
पाणिभिर्निहताः केचित् केचिज्जानुभिराहताः।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं दैवमार्गं च दर्शिताः॥ ६३, ११॥

लक्ष्मण जी ने सुग्रीव से पूछा—'यह वनपाल क्या कहता है—

किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः।
किं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥ ६३, १४॥

वनपाल की बात सुनकर बुद्धिमान् सुग्रीव को अतिप्रसन्नता हुई । उन्होंने उनसे कहा, 'कुमार का काम अवश्य हो गया। सीता का पता लग गया और वह भी निश्चितरूप से हनुमान् के ही द्वारा'—

आर्य लक्ष्मण सम्प्राह वीरो दधिमुखः कपिः ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ ६३, १६ ॥
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद् व्यतिक्रमः ।
वनं यदभिपन्नास्ते साधितं कर्म तद्ध्रुवम् ॥ ६३, १७ ॥
दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥ ६३, १९ ॥

सुग्रीव ने दधिमुख को ही वनपाल के स्थान पर बने रहने की आज्ञा दी और जाम्बवन्तादि सभी वानरों को शीघ्र भेजने को कहा—

श्रुत्वा दधिमुखस्यैवं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ ६३, २९ ॥
प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ।
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ॥ ६३, ३० ॥
गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान् हनुमत्प्रमुखान् कपीन् ॥ ६३, ३१ ॥

दधिमुख ने अंगद से, पहले उन्हें रोकने के अपराध के लिये क्षमा माँगी और फिर उनको राजा सुग्रीव के पास जाने को कहा—

मौर्ख्यात् पूर्वं कृतो रोषस्तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ।
यथैव हि पिता तेऽभूत् पूर्वं हरिगणेश्वरः ॥ ६४, ८ ॥
तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम ॥ ६४, ८ ॥
प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः ॥ ६४ ११ ॥

सभी वानरों से अंगद ने अनुमति ली, इस नम्रता के लिये सभी उनसे प्रसन्न थे, सबके सब चल पड़े और आकर शुभ समाचार सुनाया—

एवं वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् वानरर्षभ ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ ६४, १९ ॥
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः ।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ॥ ६४, ४० ॥

तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः ।
निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥ ६४, ४१ ॥

हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः ।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ॥ ६४, ४२ ॥

श्रीराम ने हनुमान् जी के मुख से सीता जी को देखने की बात जानकर लक्ष्मण सहित बड़े प्रसन्न होकर उन्हें सत्कार दृष्टि से देखा—

दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम् ।
आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ॥ ६४, ४३ ॥

निश्चितार्थं ततस्तस्मिन् सुग्रीवं पवनात्मजे ।
लक्ष्मणः प्रीतिमान् प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥ ६४, ४४ ॥

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परवीरहा ।
बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥ ६४, ४५ ॥

श्रीराम ने हनुमान् जी से सीता जी के जीवनचर्या (लंका) के विषय में वर्णन करने को कहा—

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते ।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानर ॥ ६५, ५ ॥

श्रीराम जी के पूछने पर हनुमान् जी ने सारी बातें तत्त्वतः सुना दीं और अभिज्ञान के रूप में वायस सम्बन्धी चित्रकूट में घटित गुप्त कथा भी सुनाई (जिसे सीताजी ने सुनाई थी)—

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान् मारुतात्मजः ।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ६५, ७ ॥

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ६५, ८ ॥

दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ६५, ८ ॥
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ ६५, १० ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।
तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥ ६५, ११ ॥

त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राममनोरथम् ।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ६५, १२ ॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा॥ ५, १४॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव॥ ६५, २०॥

सीता जी का संवाद :—"प्रियतम जी ! एक मास तक जीवित रहूँगी, उसके बाद जीवित नहीं रहूँगी"—

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता॥ ६५, २५॥

हनुमान् जी ने कहा 'देव ! मैंने सारा समाचार यथावत् कह सुनाया। अब समुद्र पार करने की योजना बनानी है—

एतदेव मयाऽऽख्यातं सर्वं राघव यद् यथा।
सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम्॥ ६५, २७॥

हनुमान् जी ने कहा—लंका से प्रयाण करते समय सीता जी ने मेरे मङ्गल के हेतु शान्ति पाठ किया—

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणो शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा तवापि शोकेन तथातिपीडिता।६८,२८।

इत्यार्षे संक्षिप्तबाल्मीकिरामायणे सुन्दरकाण्डम्।

लङ्काकाण्डम्

श्रीराम ने सेवकों के भेद बताते हुए हनुमान् जी के सीता अन्वेषण कार्य की भूरि भूरि सराहना की—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ १, २ ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ १, ७ ॥

यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम्।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ १, ८ ॥

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद् यः समाहितः।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १, ९ ॥

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥ १, १० ॥

इस शुभ समाचार सुनाने के प्रतिरूप कोई पुरस्कार न देने के कारण श्रीराम को कसक थी। हर्षोत्फुल हृदय से श्रीराम जी ने हनुमान् जी का आलिंगन किया—

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ १, १२ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम् ॥ १, १४ ॥

अब समुद्र पार लाने की चिन्ता से श्रीराम व्यग्र हो उठे—

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥ १, १७ ॥

यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥ १, १८ ॥

सुग्रीव ने श्रीराम जी को चिन्ता दूर करने तथा उत्साहित होने की सलाह दी। उत्साह से सारे काम सिद्ध हो जाते हैं। काम अवश्य सिद्ध होगा। ऐसा शकुन भी कहता है—

किं त्वया तप्यते वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा।
मैवं भूस्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ २, २ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् ।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥ २, ५ ॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वथा व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ २, ६ ॥

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥ ६, ६ ॥

मन्त्रस्त्रिभिर्हि संयुक्तः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाधिकैः ॥ ६, ७ ॥

सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान् प्रवर्तयेत् ।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ६, ८ ॥

एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यम नरम् ॥ ६, ९ ॥

गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति यं कार्यमुपेक्षेत् स नराधमः ॥ ६, १० ॥

ऐक्यमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥ ६, १२ ॥

बह्वयोऽपि मतयो भूत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णये ।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥ ६, १३ ॥

अन्योन्यं मतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
नचैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ॥ ६, १४ ॥

रावण मन्त्रियों से नगर तथा सेना के हित के निमित्त सलाह मांगी—

तस्मात् सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः ।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तमेतत् कृत्यं मतं मम ॥ ६, १५ ॥

समुद्रमुच्छोषयति वीर्येणान्यत् करोति वा ।
तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम ॥ ६, १८ ॥

अज्ञानी राक्षस योद्धाओं और सभासदों ने रावण से माहेश्वर यज्ञ करें तो आप राम पर विजय अवश्य पायेंगे, ऐसा कहा —

राजन् परिघशक्त्यष्टिशूलपट्टिशकुन्तलम् ।
सुमहन्नो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान् ॥ ७, २ ॥

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित् क्षपयिष्यति ॥ ७, १८ ॥

अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम्।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥ ७, १९ ॥

राजन्नापद्युक्तेयमागता प्राकृताज्जनात्।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ ७, २५ ॥

राक्षसगण समुद्र पार कैसे करेंगे ? एक वानर ने लङ्का जला दी, अब क्या करना चाहिए ? ऐसा मन्त्रियों से रावण ने पूछा—

कथं सागरमक्षोभ्यं तरिष्यन्ति वनौकसः।
बहुसत्त्वझषाकीर्णं तौ वा दशरथात्मजौ ॥ १२, २० ॥

अथवा कपिनैकेन कृतं नः कदनं महत् ॥ १२, २१ ॥

दुर्ज्ञेयाः कार्यगतयो ब्रूत यस्य यथा मतिः।
मानुषान्नो भयं नास्ति तथापि तु विमर्श्यताम् ॥ १२, २२ ॥

कुम्भकर्ण द्वारा नीतियुक्त से रावण को फटकार—

सर्वं एतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ १२, २९ ॥

न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन।
न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ १२, ३० ॥

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ १२, ३१ ॥

यः पश्चात् पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥ १२, ३२ ॥

चपलस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम्।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ १२, ३३ ॥

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम्।
दिष्ट्या त्वां नावधीद् रामो विषमिश्रमिवामिषम् ॥ १२, ३४ ॥

बहुत सी नीची ऊंची मूझ की बात कहने के पश्चात् कुम्भकर्ण ने उसे आश्वासन दिया कि सब कुछ ठीक हो जायगा। श्रीराम और लक्ष्मण वानरों के साथ ही मार डाले जायँगे, तब सीता भी आपके वश में आ ही जायगी—

तस्मात् त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः ।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥ १२, ३५ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य महापरिघयोधिनः ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाद् वै पुरन्दरः ॥ १२, ३७ ॥

पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति ।
ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस ॥ १२, ३८ ॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः ।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥१२,४०॥

महापार्श्व ने रावण को सीता पर बलात्कार करने की सलाह दी—

यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालनिषेवितम् ।
न पिबन् मधु सम्प्राप्य स नरो बालिशो भवेत् ॥ १३, २॥

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हणः ।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु ॥ १३, ३ ॥

रावण ने ब्रह्मा के शाप से अपनी विवशता बतायी—

अथ संकुपितो वेधा मामिदं वाक्यमब्रवीत् ।
अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि ॥
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ १३, १४ ॥

इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम् ।
नारोहये बलात् सीतां वैदेहीं शयने शुभे ॥ १३, १५ ॥

इन्द्रजित् को विभीषण की फटकार—

त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च स चापि वध्यो य इहानयत् त्वाम् ।
बालं दृढं साहसिकं च योऽद्य प्रावेशयन्मन्त्रकृतां समीपम् ॥ १५, ११ ॥

विभीषण ने रावण को नीति और धर्मयुक्त बातें बताई थीं, किन्तु कालवश रावण ने सभा के बीच उनका घोर अपमान किया। यह भी कहा कि जैसी बात उसने कही है वैसी कोई दूसरा कहता तो उसी समय उसे जान से हाथ धोना पड़ता—

वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ १६, २ ॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ १६, ३ ॥

प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च॥ ६, ४॥
नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः॥ १६, ५॥
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः॥ १६, ७॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः।
कृत्स्नाद् भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः॥ १६, ८॥
विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः॥ १६, ९॥
योऽन्यस्त्वेवं विधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक् कुलपांसन॥ १६, १६॥

विभीषण को वह तिरस्कार सहन नहीं हुआ, वह तुरत अपने चार सचिवों के साथ आकाश मार्ग से श्रीराम के पड़ाव की ओर चल पड़ा, पर जाते समय भी नीतियुक्त बातें ही कहीं—

इत्युक्तः परुष वाक्यं न्यायवादी विभीषणः।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः॥ १६, १७॥
स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन् ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः॥ १६, १८॥
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते।
सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः॥ १६, २०॥
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १६, २१॥
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा बालुकसेतवः॥ १६, २४॥
निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते ते वचनं निशाचर।
परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्॥ १६, २६॥

शीघ्र ही विभीषण निर्दिष्ट स्थान पर आ गये। सुग्रीव ने उन्हें शस्त्रास्त्र सज्जित देख यह समझा कि वे उन्हें वध करने की आकांक्षा से आये हुए हैं—

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मण॥ १७, १॥

ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः।
तेऽपि वर्मायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिताः॥ १७, ३॥

तमात्मापञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान्॥ १७, ५॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान् हन्तुं न संशयः॥ १७, ७॥

वानरों की बात सुनकर विभीषण ने अपना परिचय देते हुए कहा कि हमारे आने की सूचना श्रीराम को दें दें—

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः॥ १७, १२॥

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्।
साधु निर्यात्यतां सीतां रामायेति पुनः पुनः॥ १७, १४॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥ १७, १६॥

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥ १७, १७॥

सुग्रीव ने श्रीरामलक्ष्मण को नीतियुक्त परामर्श दिया—

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम्।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः॥ १७, २१॥

मित्राटविबलं चैव मौलभृत्यबलं तथा।
सर्वमेतद् बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम्॥ १७, २४॥

वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः॥ १७, २९॥

सुग्रीव की बात सुन श्रीराम ने अन्यान्य प्रमुख सचिवों के विचार पूछे—

सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा।
समर्थेनोपसंदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता॥ १७, ३३॥

सचिवों ने उनसे कहा—"प्रभो ! आपके लिये कोई वस्तु अज्ञात तो है नहीं, सिर्फ हमें आदर देने के लिये विचार पूछते हैं—

अज्ञातं नास्ति ते किंचित् त्रिषु लोकेषु राघव ।
आत्मानं पूजयन् राम पृच्छस्यस्मान् सुहृत्तया ॥ १७, ३५ ॥

गुण-दोषों में गुणों का संग्रह करने के लिए अङ्गद की सलाह—

अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद् दोषतस्तु विसर्जयेत् ॥ १७, ४१ ॥
यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान् वापि बहून् ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥ १७, ४२ ॥

कई सचिवों के बोल जाने पर मतिमान् एवं परम बुद्धिमान् हनुमान् जी ने अग्रवक्ताओं के विचार में दोष दिखाते हुए विभीषण को अपनालेने का तर्कसंगत विचार देते हुए श्रीराम से उचित निर्णय करने का आग्रह किया—

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥ १७, ५० ॥
न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥ १७, ५१ ॥
न वादान्नापि संहर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।
वक्ष्यामि वचन राजन् यथार्थं रामगौरवात् ॥ १७, ५२ ॥
अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया न ह्युपपद्यते ॥ १७, ५३ ॥
ऋते नियोगात् सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा विनियोगोऽपि दोषवान् प्रतिभाति मे ॥ १७, ५४ ॥
पृच्छमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान् वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥ १७, ६० ॥
अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।
न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ १७, ६३ ॥
आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ १७, ६४ ॥
देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर ।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥ १७, ६५ ॥

उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् ।
बालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥ १७, ६६ ॥

राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य संग्रहः ॥ १७, ६७ ॥

यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्याजेवं प्रति ।
प्रमाणं त्वं हि शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥ १७, ६८ ॥

तब श्रीरामजी, हनुमान् जी की बात सुनकर अपना विचार प्रस्तुत करने की अनुमति माँगी और उसे मित्रभाव से आने के कारण ग्रहण करने योग्य बताया—

अथ राम प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितः ॥ १८, १ ॥

ममापि च विवक्षास्ति काचित् प्रति विभीषणम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥ १८, २ ॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥ १८, ३ ॥

इसे सुनकर सुग्रीव ने फिर भी विभीषण के ग्रहण के विरुद्ध अपना तर्क उपस्थित किया—

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ १८, ४ ॥

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥
को नाम स भवेत तस्य यमेष न परित्यजेत् ॥ १८, ५ ॥

मुस्कुराते हुए श्रीराम जी ने सुग्रीव से कहा—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधा ॥ १८, १५ ॥

तब और मीठी वाणी में सुग्रीव ने पुनः नीतियुक्त बातें कहीं और सचिव सहित उसे बध कर डालने का विचार दिया—

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि निशाचरम् ।
तस्याहं विग्रहं मन्ये क्षम क्षमवतां वर ॥ १८, १७ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते विश्वस्ते मयि वानघ ॥ १८, १८ ॥

लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ १८, १९ ॥

भक्त एवं सुहृद सुग्रीव से श्रीराम ने अपना दृढ़ विचार व्यक्त किया जो तर्कपूर्ण तथा धर्मसंगत था। श्रीराम को अपनी शक्ति पर निर्भ्रान्त भरोसा था। उन्होंने किसी भी तरह शरणागत एवं आत्मनिर्णय करने वाले विभीषण को शरण देना नितान्त आवश्यक ठहराया—

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममाप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥ १८, २२ ॥

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥ १८, २३ ॥

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥ १८, २७ ॥

आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ १८, २८ ॥

स चेद् भयाद् वा मोहाद् वा कामाद् वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत् पापं लोकगर्हितम् ॥ १८, २९ ॥

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥ १८, ३० ॥

एवं दोषो महानत्र प्रसन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥ १८, ३१ ॥

करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात् तु फलोदये ॥ १८, ३२ ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ १८, ३३ ॥

सुग्रीव ने भी श्रीराम जी के विचार का सहर्ष अनुमोदन किया और विभीषण को अपने सखा बनाने के लिये प्रस्तुत हुए—

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिरोमणे ।
यत् त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्ववान् सत्पथे स्थितः ॥ १८, ३६ ॥

तस्मात् क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ १८, ३८ ॥

ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्धरीश्वरेणाभिहित नरेश्वरः।
विभीषणेनाशु जगाम संगमं पतत्रिराजेन यथा पुरंदरः॥ १८, ३९॥

विभीषण जी आकाश से नीचे उतर कर श्रीराम के चरणों पर गिर गये और अपना परिचय एवं आने का कारण बतलाया—

खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह।
स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः॥ १९, २॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः।
अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः॥ १९, ३॥
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम्।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः॥ १९, ४॥
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।

विभीषण ने कहा, "मैं लङ्का तथा वहां की समृद्धि को त्याग आपकी शरण में आया हूं"—

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च॥ १९, ५॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च'॥ १९, ५॥

विभीषण की बात सुन श्रीराम ने विभीषण को राक्षसराज रावण के बला-बल को पूरी तरह जानकारी देने को कहा—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव॥ १९, ६॥
आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम्॥ १९, ७॥

श्रीराम के कहने पर विभीषण ने जानकारी दी कि रावण, ब्रह्मा जी के वरदान से अवध्य है, कुम्भकर्ण इन्द्रतुल्य है, कैलास को पराजित करनेवाला उसका सेनापति प्रहस्त है, दस करोड़ राक्षस के साथ उसने लोकपालों को जीत लिया है—

एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ १९, ८॥
अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम्।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात् स्वयम्भुवा॥ १९, ९॥
रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान्।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि॥ १९, १०॥

राम ! सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः ।
कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥ १९, ११ ॥

दशकोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।
मांसशोणितभक्ष्याणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १९, १५ ॥

स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानयोधयत् ।
सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन दुरात्मना ॥ १९, १६ ॥

श्रीराम ने विभीषण से कहा—मैं सबों के साथ रावण को मार कर तुम्हें राजगद्दी पर बिठाऊँगा--

यानि कर्मपदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥ १९, १८॥

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥ १९, १९ ॥

फिर श्रीराम ने आगे कहा--'रावण अपने को कहीं भी जाकर अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा ।'

रसातलं वा प्रविशेत् पातालं वापि रावणः ।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ १६, २० ॥

विभीषण ने भी लङ्का पर चढ़ाई करने एवं युद्ध में जीवन लगाकर सहायता करने का वचन दिया--

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ १९, २३ ॥

श्रीराम ने प्रसन्न हो विभीषण के अभिषेक के लिये लक्ष्मण को समुद्र से जल मँगाने को कहा—

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥ १९, २४ ॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ १९, २५ ॥

लङ्का के राजपद पर लक्ष्मण ने विभीषण का अभिषेक किया--

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥ १९, २६ ॥

हनुमान्, सुग्रीव तथा लक्ष्मण ने समुद्र पार जाने का उपाय विभीषण से पूछा--

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ॥ १९, २८ ॥

सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम् ।
उपायैरभिगच्छाम यथा नदनदीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ॥ १९, २९ ॥

यह सुन विभीषण ने समुद्र की शरण में जाने की सलाह दी—

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः ।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हसि ॥ १९, ३० ॥

यह सलाह श्रीराम को पसन्द आई उन्होंने लक्ष्मणादि से भी राय ली—

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ॥ १९, ३५ ॥

सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान् मन्त्रविचक्षणः ।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्थं रोचते यत् तदुच्यताम् ॥ १९, ३६ ॥

उन सबों ने अनुमोदन किया कि विभीषण जी ने जो कुछ कहा वैसा हीं करना चाहिये—

किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचयति राघव ।
विभीषणेन यत् तूक्तमस्मिन् काले सुखावहम् ॥ १९, ३८ ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन् वरुणालये ।
लङ्कानासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ १९, ३९ ॥

श्रीराम जी ने कुशास्तरण बिछा समुद्र की उपासना की--

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः ।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥ १९, ४१ ॥

धरना देते हुए श्रीराम की तीन रात बीत गई पर समुद्र ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया--

ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः ।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ २१, १ ॥

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः ।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥ २१, ११ ॥

न च दर्शयते रूपं मन्दो रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥ २१, १२ ॥

समुद्र की अवहेलना से क्रुद्ध हो श्रीराम ने लक्ष्मण से इस प्रकार कहा कि प्रशम, क्षमा आदि असमर्थ व्यक्ति के लिए हैं, समर्थ व्यक्ति के लिए तो दुष्ट व्यक्ति के साथ दण्ड उठाने से ही काम चलेगा—

अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यः स्वयम् ।
प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ॥ २१, १४ ॥

असामर्थ्यफला ह्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ।
आत्मप्रशंसिनः दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ॥ २१, १५ ॥

सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः सत्कुरुते नरम् ।
न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ॥

प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि ॥ २१, १६ ॥

फिर क्या था, श्रीराम ने धनुषबाण हाथ में ले समुद्र को दण्डित करने को उद्यत हो गये और बाण छोड़ दिया । सभी जलजन्तु व्याकुल हो उठे—

एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन ॥ २१, २५ ॥

सम्पीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुग्रान् वज्रानिव शतक्रतुः ॥ २१, २६ ॥

ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तथा ।
विन्ध्यमन्दरसंकाशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ २१, ३१ ॥

आघूर्णिततरङ्गौघः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः ।
उद्वर्तितमहाग्राहः सघोषो वरुणालयः ॥ २१, ३२ ॥

कुपित श्रीराम ने समुद्र को सम्बोधित कर कहा, "आज तुम्हें अपने बाणों से सुखा ही डालता हूं, मेरी सेना सूखे मार्ग से लङ्का जायगी।" और ब्रह्मास्त्र प्रयोगार्थ उद्यत हुए। तब समुद्र दिव्य रूप में प्रकट हुआ और श्रीराम से क्षमा याचना करते हुए सेना पार होने का वचन दिया—

अथोवाच रघुश्रेष्ठः सागरं दारुणं वचः ।
"अद्य त्वां शोषयिष्यामि सपातालं महार्णव ॥ २२, १ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम् ।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः ॥ २२, ५ ॥

ततो मध्यात् समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः।
उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः॥ २२, १७॥
सागरः समुपक्रम्य पूर्वमामन्त्र्य वीर्यवान्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम्॥ २२, २५॥
पृथिवी-वायुराकाशमापोज्योतिश्च राघव।
स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः॥ २२, २६॥
विधास्ये येन गन्तासि विषहिष्ये ऽप्यहं तथा।
न ग्राहा विधमिष्यन्ति यावत्सेनां तरिष्यति।
हरीणां तरणे राम करिष्यामि यथास्थलम्"॥ २२, २९॥

श्रीराम ने समुद्र से कहा, 'यह बाण तो अमोघ है, 'इसे कहां छोड़ा जाय ?'

तमब्रवीत् तदा रामः शृणु मे वरुणालय।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन् देशे निपात्यताम्॥ २२, ३०॥

समुद्र ने आग्रह किया कि इसे उत्तर कुक्षिप्रदेश में छोड़ा जाय जहाँ आभीर दस्यु रहते हैं—

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित् पुण्यतरो मम।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान्॥ २२, ३२॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम॥ २२, ३३॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः।
अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः॥ २२, ३४॥

श्रीराम ने समुद्र के अनुरोध पर ऐसा ही किया, फिर समुद्र ने नल द्वारा सेतु निर्माण कराने को कहा और उसमें अपनी सहायता का भी वचन दिया—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात्॥ २२, ३५॥
तस्मिन् दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः।
राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत्॥ २२, ४४॥
अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान् प्रीतिमान् विश्वकर्मणः॥ २२, ४५॥

श्रीराम के आक्रमण के पहले ही सीता को श्रीराम के पास लौटा दीजिये या उनके साथ लड़ने का निर्णय कीजिये ऐसा शुक ने कहा—

पुरा प्रकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु।
सीतां चास्मै प्रायच्छाशु युद्धं वापि प्रदोयताम् ॥ २४, ३४ ॥

शुक की बात सुन कर क्रुद्ध हो रावण ने कहा कि देव, दानव गन्धर्व आदि यदि मेरे साथ लड़ेंगे तो लड़ूंगा पर सीता को समर्पित नहीं करूंगा—

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ २४, ३५ ॥
"यदि मां प्रतियुद्धेरन् देवगन्धर्वदानवाः
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि" ॥ २४, ३६ ॥

रावण ने शुक और सारण दोनों से कहा कि यह आश्चार्य है कि दुस्तर समुद्र का बानर लोग पुल बनाकर पार गये। आप दोनों वहां जांय और पता करें कि श्रीराम और लक्ष्मण वानरादि में वास्तविक रूप में कितनी ताकते है—

सुबेले सागरं तीर्णे रामे दशराथात्मजे।
अमात्यो रावणः श्रीमानब्रवीच्छुक-सारणौ ॥ २५, १ ॥
समग्र सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम्।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥ २५, २ ॥
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथंच न।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥ २५, ३ ॥
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हसि ॥ २५, ७ ॥

वानररूप में दोनों ने श्रीराम की सेना में प्रवेश किया विभीषण ने उन दोनों को पकड़ कर श्रीराम के पास लाकर कहा कि ये रावण के भेदिये और मन्त्री भी हैं—

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ २५, ९ ॥
ततस्तद् वानरं सैन्यमचिन्त्य लोमहर्षणम्।
संख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकशारणौ ॥ २५, १० ॥
तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः।
आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ २५, १३ ॥

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरंजय ॥ २५, १४ ॥

उन दोनों ने डरते हुए स्वीकार किया कि वे सेना की संख्या आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिये रावण द्वारा भेजे गये हैं—

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ।
परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन ॥ २५, १६ ॥

श्रीराम ने कहा 'यदि तुम लोगोंने अपना काम पूरा कर लिया है तो, अब चले जाओ'—

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥ २५, १८ ॥

श्रीरामने रावण से संवाद कहने को कहा कि, जिस बल के घमण्ड में तुम ने मेरी सीता का हरण किया है, वह बल कल से दिखाना—

यद् बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि।
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥ २५, २३ ॥

श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥ २५, २४ ॥

शुक सारण ने लङ्का आकर रावण से श्रीराम की बड़ी प्रशंसा की और सीता जी को लौटा देने को कहा—

यादृशं तद्धि रामस्य रूपं प्रहरणानि च।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥ २५, ३१ ॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ २५, ३२ ॥

प्रहृष्टयोधाध्वजिनीमहात्मना वनौकसां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम्।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥ २५, ३३ ॥

उनकी बातों से रावण को घोर क्रोध हुआ और कटु बातों के साथ साथ राजनीति का विचार देते हुए उन्हें दरबार से निकल जाने का आदेश दिया—

न तावत् सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहे प्रग्रहे प्रभोः ॥ २९, ७ ॥

रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम्।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥ २९, ॥

आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः ।
सारं यद् राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥ २९, ९ ॥

अग्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः ।
राजदण्डपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥ २९, १२ ॥

हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रसंशिनौ ।
यदि पूर्वोपकारैर्मे क्रोधो न मृदुतां व्रजेत् ॥ २९, १३ ॥

अपध्वंसत नश्यध्वं सन्निकर्षादितो मम ।
न हि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम् ॥
हतावेव कृतघ्नौ द्वौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ ॥ २९, १० ॥

फिर शार्दूल ने जाकर रामसेना का पूर्ण विवरण रावण को देकर कहा कि अब आप जैसा चाहें करें—

इति सर्वं समाख्यातं तथा वै वानरं बलम् ।
सुवेलेऽधिष्ठितं शैले शेषकार्ये भवान् गतिः ॥ ३०, ३५ ॥

इधर रावण ने सीता को धोखा देने के लिये एक चाल चली । मायावी विद्युद् जिह्व नामक राक्षस द्वारा श्रीराम का माया निर्मित शिर काट कर सीता के सामने रखकर कहा कि, सोये हुए राम को प्रहस्त ने प्रहार कर मार डाला—

तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ ३१, २१ ॥

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥ ३१, ३६ ॥

रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदिति ब्रुवन् ॥ ३१, ४३ ॥

इदं तत् तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमावृतम् ।

मायिक कटे हुए श्रीराम के शिर एवं धनुष आदि को पहचान कर सीता को मर्मान्तक दुःख हुआ और वह कैकेयी को कोसने लगी एवं फूट फूट कर विलाप करती हुई कहने लगी कि स्त्रियों के लिए पहले स्वामी का मरना अच्छा नहीं, श्रीराम समुद्र पार कर गोष्पद में सोये कैसे मारे गये—

इह प्रहस्तेनानीतं तं हत्वा निशि मानुषम् ॥ ३१, ४४ ॥

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता ॥ ३२, १ ॥

पतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता।
विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा॥ ३१, ३॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया॥ ३१, ४॥

प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते।
सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः॥ ३२, ९॥

मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः।
रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान् गोष्पदे हतः॥ ३२, २८॥

इसी बीच एक राक्षस ने आकर रावण से निवेदन किया कि 'सभा में प्रहस्त आप से किसी आवश्यक काम से मिलना चाहते हैं।" और वह अशोक वाटिका से चला गया--

नूनमस्ति महाराज राजभावात् क्षमान्वित।
किंचिदात्यायिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु॥ ३२, ३७॥
एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम्।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ॥ ३२, ३८॥

उसके जाते ही वह मायामय श्रीराम का शिर और धनुष भी अन्तर्धान हो गया—

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम्।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम्॥ ३२, ४०॥

सभा में जा रावण ने सामरिक बाजाओं को बजाने तथा सैनिकों को तैयार होने की आज्ञा दी—

अविदूरस्थितान् सर्वान् बलाध्यक्षान् हितैषिणः।
अब्रवीत् कालसदृशं रावणो राक्षसाधिपः॥ ३२, ४२॥

शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम्॥ ३२, ४३॥

माया मोहित सीता के पास उन की प्रियसखी 'सरमा' ने उन्हें आश्वासन दिया, श्रीराम को कोई भी नहीं मार सकता श्रीराम तो अजेय हैं। तुम रावण के माया से मोहित होने के कारण विकल हो रही हो। देखो रावण को यहां से हटते ही वह शिर और धनुष तिरोहित हो गये—

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी।
आससादाशु वैदेहीं प्रियां प्रणयिनीं सखीम्॥ ३३, १॥

सा ददर्श सखी सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु ॥ ३३, ४ ॥

स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः ।
तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ३३, ७ ॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन् नैवोपपद्यते ॥ ३३, ८ ॥

न त्वेवं वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ ३३, ९ ॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान् महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी संनहनोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥ ३३, १० ॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुलीनो नयशास्त्रवित् ॥ ३३, ११ ॥

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान् सीते शत्रुनिबर्हणः ॥ ३३, १२ ॥

श्रीराम तो ससैन्य समुद्र पार कर समुद्र के दक्षिण किनारे टिके हुए हैं—

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानर-सेनया ।
संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥ ३३, १५ ॥

सामरिक वादनध्वनि को सुनकर सरमाने पुनः सीता से कहा 'पधारे हुए श्री राम विजय पाकर तुम्हें सम्मानपूर्वक अपने साथ ले जायँगे और तुम उनके साथ आनन्दित रहोगी—

संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वनम् ॥ ३३, २१ ॥

आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कागतां सतीम् ।
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते ॥ ३३, ३२ ॥

सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना ।
सुवर्णेन समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ३३, ३७ ॥

मन्त्रियों की सभा में रावण के नाना माल्यवान् ने राजनीति युक्त हित की बातें बताते हुए श्रीराम से सन्धि करलेने को कहा और सीता को सम्मानपूर्वक श्रीराम को लौटा देने की भी सलाह दी, तथा बुरे कर्मों से उसे विरत करने का

प्रयास करते हुए श्रीराम को विष्णु का अवतार बताया—

विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन् नयानुगः।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥ ३५, ७ ॥

संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह।
स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन् महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ३५, ८ ॥

हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा संधिः समेन च।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम् ॥ ३५, ९ ॥

तन्मह्यं रोचते संधिः सह रामेण रावण।
यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥ ३५, १० ॥

धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम्।
अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस ॥ ३५, १३ ॥

धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं यदा कृतमभूद् युगम्।
अधर्मो ग्रसते धर्मं यदा तिष्यः प्रवर्तते ॥ ३५, १४ ॥

तत् त्वया चरता लोकान् धर्मोऽपि निहतो महान्।
अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद् बलिनः परे ॥ ३५, १५ ॥

विष्णु मन्यामहे रामं मानुषं रूपमास्थितम।
न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ॥ ३५, ३५ ॥

कालवश रावण ने उनकी बातें भी नहीं मानी, बल्कि कठोर बातें कहकर अपमान करते देख लज्जित हो माल्यवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया—

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ ३६, १ ॥

रक्षसामीश्वरं मां च देवानां च भयंकरम्।
हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः ॥ ३६, ५ ॥

वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः।
त्वयाहं परुषाण्युक्तो परप्रोत्साहनेन वा ॥ ३६, ६ ॥

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३६, ११ ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम्।
व्रीडितो माल्यवान् वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ३६, १४ ॥

तब मन्त्रियों से विदा ले रावण अन्तः पुर में चला गया--

बिसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो विवेश सोऽन्तः पुरमृद्धिमन्महत् ।३६, २२॥

इधर श्रीराम जी ने लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषणादि से सलाह कर सुवेल पहाड़ पर चढ़ वहीं रात बिता के सीता के अपहरण करने वाले एक के पाप से राक्षसों के कुल का विनाश होगा—

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ ३८, १ ॥

विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ ३८, २॥

सुवेलं साधु शैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम ।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥३८, ३॥

लङ्कां चालोकयिष्यामो बिलयं तस्य रक्षसः ।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना ॥ ३८, ४ ॥

तस्मिन् मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥ ३८, ६ ॥

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापराधेन कुलं तेन विनश्यति ॥ ३८, ७ ॥

श्रीराम ने सुवेल के शिखर पर यथासुख डेरा डाला—

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जिता ।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तते ॥ ३८, १९ ॥

ततः स रामो हरिवाहिनीपतिर्विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंयुतः सुवेलपृष्ठे न्यवसद् यथासुखम् ॥ ३८, २० ॥

उस रात में सुवेल शिखर पर ही वे सब वन तथा नगर की शोभा देखने में बिताते रहे । बाद रत्नपूर्ण अट्टालिकाओं से युक्त अपने सैनिकों के साथ लङ्का नगरी को श्रीराम ने देखा—

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ ३९, १ ॥

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥ ३९, २ ॥

चम्पकाशोकबकुलशालतालसमाकुला ।
तमालवनसंछन्ना नागमालासमावृता ॥ ३९, १ ॥

नानाविहगसंघुष्टां नानाराक्षससेविताम् ।
नानाकुसुमसम्पन्नां नानामृगनिषेविताम् ॥ ३९, २ ॥

नगरीं त्रिदिवप्रख्यां विस्मयं प्राप वीर्यवान् ॥ ३९, २७ ॥

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानां प्रसादमालाभिरलंकृतां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्यां ददर्श रामो महता बलेन ॥ ३९, २८ ॥

इतने में वहाँ से एका एक सुग्रीव छलांग मार कर रावण की सभा में अकेले चले गये और अपना परिचय देते हुए उस से द्वन्द्वयुद्ध एवं मल्लयुद्ध करके फिर रामजी के बगल में आ बैठे—

पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः ।
दर्शनाद् राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः ॥ ४०, ७ ॥

क्रोधवेगेन संयुक्तः सत्वेन च बलेन च ।
अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले ॥ ४०, ८ ॥

स्थित्वा मुहूर्त्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना ।
तृणीकृत्य च तद् रक्षः सोऽब्रवीत् परुषं वचः ॥ ४०, ९ ॥

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तजेसा ॥ ४०, १० ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने ।
मार्जाराविव भक्षार्थेऽवतस्थाते मुहुर्मुहुः ॥ ४०, २२ ॥

अथ हरिवरनाथः प्राप्तसंग्रामकीर्ति-
निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गगनमतिविशालं लंघयित्वार्कसूनु-
र्हरिगणबलमध्ये रामपार्श्वं जगाम ॥ ४०, २९ ॥

श्रीराम जी ने सुग्रीव को उस कार्य के लिये किये हुए कष्टकारी साहस की प्रशंसा की—

अथ तस्मिन् निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सुग्रीवं सम्परिष्वज्य रामो वचनमब्रवीत् ॥ ४०, १ ॥

"असम्मन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् ।
एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः ॥ ४०, २ ॥

संशये स्थाय मां चेदं बलं चेमं विभीषणम्।
कृष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय ॥ ४१, ३ ॥

श्रीराम ने कहा कि सुग्रीव ! यदि आप लंका से न लौटते तो मैं पुत्रादिकों के साथ रावण को मारकर लंका में विभीषण को, अयोध्या में श्रीभरत को राज्याभिषेक करके अपना शरीर त्याग कर देता—

त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः।
जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१, ६ ॥
हत्वाहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम्।
अभिषिच्य च लङ्कायां बिभीषणमथापि वा ॥ ४१, ७ ॥
भरते राज्यमारोप्य त्यक्ष्ये देहं महाबल।

श्रीलक्ष्मण को श्रीराम ने सेना की व्यूह रचना कर आदेश दिया कि आज वानरों के साथ हम सब चलेंगे और लङ्कापुरी कौआ, बाज, गृद्धादिकों से सेवित हो मांसशोणित से पङ्कवाली हो जायगी—

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम्।
मर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रममात्मनः ॥ ४१, ९ ॥
परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठाम लक्ष्मण ॥ ४१, ११ ॥
काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च।
शिवाश्चाप्यशुभा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥ ४१, २० ॥
शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विमुक्तैः कपिराक्षसैः।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ ४१, २१ ॥
क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ ४१, २२ ॥

इन बातों के पश्चात् श्रीराम ने पर्वत से उतर कर अपनी महती सेना को देखा—

इत्येवं तु वदन् वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥ ४१, २३ ॥
अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात् स राघवः।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ ४१, २४ ॥

विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् आदि के साथ श्रीराम का युद्ध के लिये प्रस्थान—

संनह्य तु स सुग्रीवः कपिराजबलं महत्।
कालज्ञो राघवः काले सयुगायाभ्यचोदयत्॥ ४१, २५॥

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम्॥ ४१, २६॥

तं विभीषणसुग्रीवौ हनुमाञ्जाम्बवान् नलः।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा॥ ४१, २७॥

ततः पश्चात् सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम्।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयातिस्म राघवम्॥ ४१, २८॥

वानरों के विविध आयुध—

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान्।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः॥ ४१, २९॥

थोड़ी देर में सेनासहित दोनों भाई लङ्कापुरी के किलेके पास आ पहुँचे—

तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिंदमौ॥ ४१, ३०॥

लंका के उत्तर द्वार पर स्वयं श्रीराम जी अपने भाई के साथ डट गये, चूंकि वहाँ रावण के मोकाबले के लिये कोई दूसरा समर्थ नहीं था—

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम्।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च॥ ४१, ३३॥

उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः।
नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम्॥ ४१, ३५॥

पूर्व द्वार पर सेनापति नील थे—

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः।
अतिष्ठत् सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान्॥ ४१, ३८॥

दक्षिणद्वार पर अङ्गद थे—

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च॥ ४१, ३९॥

पश्चिम द्वार पर हनुमान् जी थे—

हनूमान् पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान् कपिः।
प्रमाथि-प्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः॥ ४४, ४०॥

मध्यगुल्म की रक्षा में स्वयं सुग्रीव थे, जहां ३६ करोड़ प्रख्यात सेनायें पास में थीं —

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णपवनोपमैः ॥ ४१, ४१ ॥

वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोटयः प्रख्यातयूथपाः ।
निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ ४१, ४२ ॥

श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण और विभीषण के हर द्वार पर करोड़ करोड़ सेनाओं का अद्‌भुत सगम था—

शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ।
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटिर्न्यवेशयत् ॥ ४१, ४३ ॥

अद्‌भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत्तु संगमः ।
तत्र वानरसैन्यानां शलभानामिवोद्‌गमः ॥ ४१, ४९ ॥

महती वानरी सेना को देख राक्षसों को विस्मय हुआ—

राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाभिनिपीडिताः ।
वानरैर्मेघसंकाशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ४१, ५४ ॥

विभीषण के परामर्श से श्रीराम जी ने अङ्गद को दूत बनाकर रावण के निकट भेजा और उन को निर्भीक हाकर रावण से सवाद कहने को कहा—

विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ।
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ४१, ५९ ॥

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात् कपे ॥ ४१, ५९ ॥
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः ।
भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षोनष्टचेतनम् ॥ ४१, ६१ ॥

यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः ।
दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ॥ ४१, ६४ ॥

वलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रमयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ४१, ६६ ॥

धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥ ४१, ६८ ॥

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम्।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम्॥ ४१, ७२॥

अङ्गद ने अपना पूरा परिचय दे श्रीराम का संवाद ज्यों का त्यों रावण को सुना दिया—

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम्।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह॥ ४१, ७४॥

ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुङ्गवः।
दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः॥ ४१, ७५॥

तद् रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम्।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मनमात्मना॥ ४१, ७६॥

दूतोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः॥ ४१, ७७॥

आह त्वां राघवो रामः कौशल्यानन्दवर्धनः।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंसपुरुषो भव॥ ४१, ७८॥

हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम्।
निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि॥ ४१, ७९॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम्॥ ४१, ८०॥

विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि।
न चेत् सत्कृत्य वैदेही प्रणिपत्य प्रदास्यति॥ ४१, ८१॥

अङ्गद के परुष वचन सुन कर क्रोधित हो रावण ने अपने मन्त्रियों को उसे पकड़ने तथा बध कर डालने के लिए बार बार कहा—

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः॥ ४१, ८२॥

ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा।
गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत्॥ ४१, ८३॥

रावण की बात सुन कर चार राक्षसों ने अङ्गद को पकड़ लिये—

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निमिव तेजसा।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः॥ ४१, ८४॥

जो विकल चार राक्षस उन्हें पकड़े हुए थे, उन सबों को लेकर अगद ऊपर छत पर चले गये और वे राक्षस भूमि पर रावण के सामने हा गिर पड़े, इस प्रकार अंगद ने अपने बल का परिचय दिया —

ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् ।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥ ४१, ८५ ॥

स तान् बाहुद्वयासक्तानादाय पतगानिव ।
प्रासादं शैलसंकाशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ॥ ४१, ८६ ॥

तस्योत्पतनवेगेन निर्धूतास्तत्र राक्षसाः ।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥ ४१, ८७ ॥

सभी राक्षसों को व्यथित एवं बानरों को प्रसन्न करते हुए अंगद, श्रीराम जी के पास लौट आये—

व्यथयन् राक्षसान् सर्वान् हर्षयंश्चापि वानरान् ।
स वानरणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ ४१, ९१ ॥

हाहाकार करते हुए राक्षसों ने समस्त अटारियों को बानरों से अच्छादित देखा—

कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ।
ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ॥
हा हाकारमकुर्वन्त राक्षसा भयमागताः ॥ ४१, ९८ ॥

तत्पश्चात् राक्षसों ने जाकर रावणको समाचार दिया कि सारी नगरी राम के साथ बानरों से घिर गयी—

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम्
न्यवेदयन् पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥ ४२, १ ॥

बानरों से घिरी हुई नगरी को सुन कर उस के रक्षार्थ द्विगुणित उपाय कर क्रुद्ध हो रावण ने असंख्य बानरी सेनाओं को देखा—

रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः ।
विधानं द्विगुणं कृत्वा प्रासादं चाप्यरोहत ॥ ४२, २ ॥

स ददर्श वृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् ।
असंख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ ४२, ३ ॥

उधर सीता के दुःख स्मरण कर श्रीराम ने अपनी सेना को शीघ्र धावा करने की आज्ञा दी, तदनन्तर उन बानरों ने सिंहनाद की गर्जना की—

निपीड्यमाना धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन्।
क्षिप्रमाज्ञापयद् रामो वानरान् द्विषतां वधे ॥ ४२, ९ ॥
एवमुक्ते तु वचसि रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
संघर्षमाणाः प्लवगाः सिंहनादैरनादयन् ॥ ४२, १० ॥

पहाड़ की चोटियों, शिखरों, वृक्षों को उखाड़ अस्त्र बनाकर करोड़ों बानरों की सेनाओंने लंका को घेर कर सोने के वारबन्दनादिकों को मर्दित करते, उछलते सेनाके नारे लगाते हुए लंका की अटारियों पर दौड़ पड़े—

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि महान्ति शिखराणि च।
तरूंश्चोत्पाट्य विविधांस्तिष्ठन्ति हरियूथपाः ॥ ४२, १२ ॥
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः।
कोटियूथशताश्चान्ये लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ ४२, १७ ॥
काञ्चनानि प्रमर्दन्तस्तोरणानि प्लवङ्गमाः।
कैलासशिखराग्राणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥ ४२, १८ ॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः।
लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसंनिभाः ॥ ४२, १९ ॥
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ४२, २० ॥
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः।
अभ्यधावन्त लंकायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥ ४२, २१ ॥

तदनन्तर रावण से प्रेरित सैनिकों का बाहर निकलना—

निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥ ४२, ३७ ॥

राक्षसों और बानरों का घोर संग्राम एवं उनके द्वारा वानरी सेनाओं का हनन—

एतस्मिन् अन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ ४२, ४१ ॥
ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः।
निजघ्नुर्वानरान् सर्वान् कथयन्ते स्वविक्रमान् ॥ ४२, ४२ ॥

बानरों के आयुध एवं उनका आक्रमण—

तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिनः ॥ ४२, ४३ ॥

दोनों ओर से जय ध्वनियाँ—

राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत् ।
राजञ्जयजयेत्युक्त्वा स्व स्व नाम कथां ततः ॥ ४२, ४४ ॥

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।
यथानिदेशं सम्पीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ४१, ३२ ॥

उस दिन घोर युद्धानन्तर युद्धभूमि का घोर बीभत्स दृश्य—

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥ ४३, ४२ ॥
भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्च शक्तितोमरसायकैः ।
अपविद्धैश्चापि रथैस्तथा सांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३, ४३ ॥
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ।
चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४३, ४४ ॥
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसेवितम् ।
कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ।
विमर्दे तुमुले तस्मिन् देवासुररणोपमे ॥ ४३, ४५ ॥

वहाँ राक्षस रात्रिकी प्रतीक्षा में पुनः घोर युद्ध करने लगे—

निहन्यमाना हरिपुङ्गवैस्तदा निशाचराः शोणितगन्धमूर्च्छिताः ।
पुनः सुयुद्धं तरसा समाश्रिताः दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४३, ४६ ॥

उस रात प्रत्यक्ष युद्ध में अङ्गद से इन्द्रजित् की पूरी हार हुई, देवता आदि ने श्री अंगद की इस जीत के लिये भूरि भूरि प्रशसा की—

अङ्गदस्तु रणे शत्रून् निहन्तुं समुपस्थितः ।
रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥ ४४, २८ ॥
इन्द्रजित् तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४४, २९ ॥
तत्कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
तुष्टुवुः पूजनार्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४४, ३० ॥
प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि ।
ततस्ते तं महात्मानं दृष्ट्वा तुष्टाः प्रधर्षितम् ॥ ४४, ३१ ॥

अंगद द्वारा इस पराभव को प्राप्त कर उसे घोर क्रोध हुआ और माया से इन्द्रजित् अदृश्य होकर उसने श्रीराम लक्ष्मण को नागपाश से बाँध डाला—

इन्द्रजित् तु वदानेन निर्जितो भीमकर्मणा ।

संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ ४४, ३३ ॥
सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्षितः ।
ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४४, ३४ ॥
अदृश्यो निशितान् वाणान् मुमोचाशनिवर्चसः ।
रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरः ॥ ४४, ३५ ॥
विभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४४, ३७ ॥
तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ।
सहसाभिहतौ वीरो तदा प्रेक्षन्त वानराः ॥ ४४, ३८ ॥
प्रकाशरूपस्तु यदा न सक्तस्तौ वाधितुं राक्षसराजपुत्रः ।
माया प्रयोक्तुं समुपाजगाम बबंध तौ राजसुतौ दुरात्मा ॥ ४४, ३९ ॥

लक्ष्मण को कुछ होश आने पर अपने अग्रज की दशा देख श्रीराम जी शोक करने लगे और वानरगण शोकार्त हो रोने लगे—

रामं कमलपत्राक्षं शरण्यं रणतोषितम् ।
शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ॥ ४५, २६ ॥
हरयश्चापि तं दृष्ट्वा सन्तापं परमं गताः ।
शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ ४५, २७ ॥

बन्धन में पड़े दोनों भाइयों को देख हनुमान् आदि प्रमुख वानर गण लक्ष्मण को चारों ओर घेर कर खड़े हो गये--

बद्धौ तु तौ वीरशये शयानौ ते वानराः सम्परिवार्य तस्थुः ।
समागता वायुसुतप्रमुख्या विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥ ४५, २८ ॥

हर्ष मुद्रा में इन्द्रजित् का लङ्का में प्रवेश--

हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित् समितिञ्जयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वनैर्ऋतान् ॥ ४६, २८ ॥

लक्ष्मण के आहत होने से सुग्रीवादि को घोर शोक एवं उस समय विभीषण की पाण्डित्य पूर्ण सान्त्वना--

अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ।
एवं प्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥ ४६, ३१ ॥
स भाग्यशेषतोऽस्माकं यदि वीर भविष्यति ।

मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ॥ ४६, ३२ ॥

पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ।
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥ ४६, ३३ ॥

विभीषण ने सुग्रीव से कहा-कपिराज ! यह शोक करने का समय नहीं है। जब तक होश नहीं आ जाता, तब तक दोनों भाइयों की रक्षा करें, साथ ही अपनी सेनाओं को भी आश्वासित करें--

न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमवलम्बितुम् ।
अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन् मरणायोपकल्पते ॥ ४६, ३७ ॥

तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ।
हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्तय ॥ ४६, ३८ ॥

अथवा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ।
लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नौ व्यपनेष्यतः ॥ ४६, ३९ ॥

तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत् सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥ ४६, ४१ ॥

सुग्रीव को आश्वस्त कर पुनः विभीषण द्वारा सेनाको संभालना--

समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विद्रुतं वानरानीकं तत् समाश्वासयत् पुनः ॥ ४६, ४४ ॥

उधर इन्द्रजित् ने अपनी विजय की सारी कहानी पिता को सुनाई--

इन्द्रजित् तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ॥ ४६, ४५ ॥

तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४६, ४६ ॥

इस समाचार से रावण अत्यधिक प्रसन्न हो अपने पुत्र का अभिनन्दन किया--

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रुनिपातितौ ॥ ४६, ४७ ॥

उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः ।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवदेयत् ॥ ४६, ४८ ॥
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ४६, ४९ ॥
स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा श्रुत्वा गिरं तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थं प्रहृष्टवाचाऽभिननन्द पुत्रम् ॥४६, ५०॥

रावण ने श्रीराम और लक्ष्मण के प्रत्यक्ष शवों को रणभूमि में सीता को दिखाने के लिये त्रिजटा को आदेश दिया--

हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥ ४७, ७ ॥

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठते।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निहतो रणमूर्धनि ॥ ४७, ८ ॥

सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ा कर त्रिजटा सहित राक्षसियाँ युद्धभूमि में गईं--

ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ॥ ४७, १४ ॥
जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ।

नगर में रावण ने घोषणा कराई कि राम लक्ष्मण इन्द्रजित द्वारा परास्त हो कर मारे गये--

रावणश्चारयामास पताकाध्वजमालिनीम् ॥ ४७, १५ ॥
प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः।
"राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे" ॥ ४७, १६ ॥

सीता ने वहाँ दोनों भाइयों को आहत पड़ा देखा--और वह फूट फूट कर विलाप करने लगी। विलाप मध्य सौभाग्यवती नारियों के द्वादश लक्षण का वर्णन करती हुई सीता अपने को कोसती हैं कि मुझ में सभी शुभ लक्षण व्यर्थ हुए--

तौ दृष्टा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकौ ॥ ४७, २१ ॥

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम्।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥ ४८, १ ॥

ऊचुर्लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्यविधवेति च।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४८, २ ॥

ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम्।
तेऽद्य सर्व हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४८, ५ ॥

इमानि खलु पद्मानि पादयोर्वै कुलस्त्रियः।
आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥ ४८, ६ ॥

वैधव्यं यान्ति यैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ४८, ७ ॥

सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणे।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥ ४८, ८ ॥

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥ ४८, ९ ॥

शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू समौ चितौ।
अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥ ४८, १० ॥

स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचकौ।
मग्ना चोत्सेधनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥ ४८, ११ ॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥ ४८, १२ ॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत्।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालाक्षणिका विदुः ॥ ४८, १३ ॥

अधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह।
कृतान्तकुशलैरुक्तं तत् सर्वं वितथीकृतम् ॥ ४८, १४ ॥

न हि कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः।
यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः ॥ ४८, १९ ॥

महारानी सीता का कौसल्या के लिये घोर शोक और चिन्ता—

न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम ॥ ४८, २० ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई सीता को त्रिजटाने युक्तियुक प्रमाण देकर आश्वस्त किया कि श्रीराम लक्ष्मण जीवित हैं उनके मुख में कोई विकार उत्पन्न नहीं हैं—

मा विषाद कृथा देवि भर्तायं तव जीवति।
कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च ॥ ४८, २३ ॥

नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ ४८, २४ ॥

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः।
दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गतजीवितौ ॥ ४८, २५ ॥

हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥ ४८, २६ ॥

प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥ ४८, ३२ ॥

त्रिजटा से आश्वस्त हो सीता ने कहा–ऐसा हो हो, इसप्रकार प्रसन्न चित्त हो वह अशोकवाटिका में लौट आई—

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥ ४८, ३४ ॥
ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥ ४८, ३६ ॥

होश आने पर श्रीराम लक्ष्मण को विसंज्ञ देख उनके लिये विलाप करने लगे, लक्ष्मण तेरे समान जग में कौन भाई होगा ? तुम अस्त जाते हुए सूर्य के समान लग रहे हो । तुम जैसे मेरे साथ वन आये वैसे मैं भी तेरे साथ यमपुरी जाऊंगा—

किं नु मे सीतया कार्यं लब्धया जीवितेन वा ।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥ ४९, ५ ॥

शक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥ ४९, ६ ॥

येनाद्य बहवो युद्धे निहता राक्षसाः स्थितौ ।
तस्य मे वाद्य शूरस्त्वं शेषे विनिहतः शरैः ॥ ४९, १४ ॥
शयानः शरतल्पेऽस्मिन् सशोणितपरिस्रुतः ।
शरभूतस्ततो भासि भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥ ४९, १५ ॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ ४९, १७ ॥

श्रीराम ने सुग्रीवादि सभी को युद्ध भूमि से लौट जाने को कहा । उनकी कृतज्ञता स्वीकार की । भाग्य के सामने अपने को विवश माना—

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ।
मत्वा हीनं मया राजन् रावणोऽभिभविष्यति ॥ ४९, २३ ॥
न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ।
यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा वा परं मम ॥ ४६, २८ ॥
कृतं सुग्रीव तत् सर्वं भवता धर्मभीरुणा ।
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥ ४९, २९ ॥

श्रीराम की बात सुनकर सभी वीर बानर रोने लगे—

शुश्रुवुस्तस्य ये सर्वे वानराः परिदेवितम् ।
वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणा ॥ ४९, ३० ॥

दोही घड़ी में महात्मा गरुड़ का वहाँ आगमन हुआ. उनके आते ही नागफांस आपसे आप छूट गया । गरुड़ के स्पर्शमात्र से पहले से भी तेजोबल में अधिक हो उठकर दोनों भाई प्रसन्न हो आपस में मिले । इस के पश्चात् श्रीराम ने गरुड़ जी से कहा—

ततो मुहूर्ताद् गरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ५०, ३६ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ।
यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः ॥ ५०, ३७ ॥
ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च ।
विममर्श च पाणिभ्यां मम चन्द्रसमप्रभे ॥ ५०, ३८ ॥
वैनतेयेन संपृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ५०, ३९ ॥
तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः ॥ ५०, ४० ॥
तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ५०, ४१ ॥

गरुड़जी ! आपकी कृपा से हम दोनों आरोग्य हो गये । पिताजी की तरह आपको देख चित्त प्रसन्न हुआ है, इस वेषभूषा में आप कौन हैं ? कृपया अपना परिचय दीजिये—

भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ।
उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥ ५०, ४२ ॥
यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ५०, ४३ ॥
को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥ ५०, ४४ ॥

गरुड़ ने अपने को उनका अभिन्न सखा बताते हुए नागपाश की महत्ता बतायी और कहा कि रणभूमि में क्रूरयोद्धा राक्षसों का विश्वास नहीं करना चाहिये—

> अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
> गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥ ५०, ४६ ॥
>
> असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।
> सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ५०, ४७ ॥
>
> नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।
> मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥ ५०, ४८ ॥
>
> प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
> शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ५०, ५३ ॥
>
> तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
> एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥ ५०, ५४ ॥

गरुढ़ ने श्रीराम जी से जाने की इच्छा प्रकट करते हुए मेरे विषय में आप उत्कण्ठित न होवें ऐसा कहा—

> सखे ! राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
> अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥ ५०, ५६ ॥
>
> न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ।
> कृतकर्मा रणे वीर सखित्वं प्रतिवेत्स्यसि ॥ ५०, ५७ ॥

लक्ष्मण को नीरोग पाकर श्रीराम का एवं वानर वीरों का उत्साह और उल्लास कई गुने बढ़ गये और वे सिंहनाद करते हुए लङ्का पर पहुँच गये—

> नीरुजो राघवो दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
> सिंहनादं तदा नेदुर्लाङ्गूलं दुधुवुश्च ते ॥ ५०, ६१ ॥
>
> विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
> लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ५०, ६४ ॥

राक्षसों ने रावण से कहा "महाराज, वे दोनों भाई शरबन्ध से मुक्त हो गये"—

> विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्यते तौ रणाजिरे ।
> पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥ ५१. १३ ॥

इस बात को सुन रावण क्रोध से जल उठा । उसने क्रूर राक्षस

धूम्राक्ष को ससैन्य युद्धभूमि में भेजा। वहाँ पहुँच तुमुलयुद्ध छेड़ कर उसने बाणों को इतनी वर्षा की कि वानरी सेना भाग खड़ी हुई—

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विवर्ण-वदनोऽभवत् ॥ ५१, १४ ॥

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा।
अब्रवीद् रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥ ५२, १८ ॥

बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम।
त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥ ५१, १९ ॥

स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः।
हसन् वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान् यत्र तिष्ठति ॥ ५१, २९ ॥

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम्।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ५२, १ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम्।
अन्योन्य पादपैर्घोरैर्निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ ५२, २ ॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान् रणमूर्धनि।
हसन् विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ ५१, २५ ॥

यह देखकर हनुमान् जी को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसके घोड़े एवं रथादिकों को नष्ट कर डाला—

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ ५२, २६ ॥

क्रोधाद् द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ ५२, २७ ॥

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि।
स चक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥ ५२, २९ ॥

स भङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनूमान् मारुतात्मजः।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ५२, ३० ॥

धूम्राक्ष ने हनुमतन् जी पर गदा का प्रहार किया, किन्तु उसकी कोई चिन्ता नहीं करते हुए उन्हों ने एक पर्वतशृङ्ग का प्रहार कर उसका अन्त कर दिया। धूम्राक्ष को मरे हुए देखकर शेष राक्षस लंका में घुस गये—

तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम्।

पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥ ५२, ३४ ॥

ताडितः स तया तत्र गदया भीमवेगया।
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ॥ ५२, ३५ ॥
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत्।
स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ॥ ५२, ३६ ॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः।
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ ५२, ३७ ॥

धूम्राक्ष के मारे जाने का हाल सुनकर रावण ने वज्रदंष्ट्र को रणभूमि में भेजते हुए कहा कि तुम वह वानरों के साथ राम और सुग्रीव को मार डालो—

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ ५३, १ ॥
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः।
अब्रवीद् राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ ५३, २ ॥
गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ ५३, ३ ॥

पाशहस्त यमराज के समान रण में घूमते हुए उसे देखकर वालिपुत्र ने अपने प्रहार से राक्षसी सेना के छक्के छुड़ा दिये—

वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणो रणे वित्रासयन् हरीन्।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥ ५३, २५ ॥
जघ्ने तान् राक्षसान् सर्वान् धृष्टो वालिसुतो रणे।
क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥ ५३, २७ ॥
अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः।
विभिन्नशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पादपाः ॥ ५३, ३७ ॥

अपनी सेना के प्रहार से बज्रदंष्ट्र का क्रोध भड़क उठा और वह वानरी सेना पर अपने तीखे वाणों से संहार करने लगा। उस बीच वज्रदंष्ट्र और अङ्गद का भयंकर युद्ध हुआ। वाद अङ्गदजी ने अपनी तलवार से वजदंष्ट्र का शिर काट डाला—

स्वबलस्य च घातेन अङ्गदस्य बलेन च।
राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ ५४, १ ॥

विस्फार्य च धनुर्घोरं शक्राशनिसमप्रभम् ।
वानराणामनीकानि प्राकिरञ्छरवृष्टिभिः ॥ ५४, २ ॥

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥ ५४, १६ ॥

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम् ।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥ ५४, १७ ॥

निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः ।
उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥ ५४, ३३ ॥

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः ।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥ ५४, ३४ ॥

तब ऐसा समाचार सुन कर क्रोध से जलते हुए रावण ने घोर पराक्रमी अक-म्पन को एक बड़ी सेना के साथ रणस्थल में भेजा—

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ ५५, २ ॥

रथमासाद्य विपुलं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥ ५५, ७ ॥

राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ।

अकम्पन ने रणभूमि में पहुँचते ही वानरों का विनाश आरम्भ किया । वानर की दुर्दशा हनुमान् जी से देखी नहीं गई—

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ ५६, ७ ॥

तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ५६, ८ ॥

गजांश्च सगजारोहान् सरथान् रथिनस्तथा ।
जघान हनुमान् धीमान् राक्षसांश्च पदातिगान् ॥ ५६, २३ ॥

हनुमान् जी को राक्षसों को सँहार करते देख अकम्पन ने हनुमान् जी को बाणों से घायल कर दिया—

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च ॥ ५६, २५ ॥

स चतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारुणैः ।
निर्बिभेद महावीर्यं हनूमन्तमकम्पनः ॥ ५६, २६ ॥

इस पर हनुमान् जी ने एक वृक्ष को उखाड़ उसे दे मारा और गिर कर वह मर गया—

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ ५६, २९ ॥

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥ ५६, ३० ॥

इस विजय से श्रीरामजी और वानर समूह तो उल्लसित हुए ही देवताओं को भी अपार हर्ष हुआ—

विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः ।
चकृषुश्च पुनस्तत्र सप्राणानेव राक्षसान् ॥ ५६, ३७ ॥

अपूजयन् देवगणास्तदा कपिं स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा विभीषणश्चैव महाबलस्तदा ॥ ५६, ३९ ॥

अकम्पन की मृत्यु से रावण को अपार दुःख और क्रोध हुआ । उसने प्रहस्त से विचार कर उस सेनापति को ही भेजा और कई विचार दिये—

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह ।
नान्ययुद्धात् प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥ ५७, ५ ॥

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद् वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ५७, ६ ॥

स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥ ५७, ७ ॥

निर्याणादेव तूर्णं तु चलिता हरिवाहिनी ।
नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥ ५७, ८ ॥

विद्रुते च बले तस्मिन् रामः सौमित्रिणा सह ।
अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्तो वशमेष्यति ॥ ५७, १० ॥

आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता ।
प्रतिलोमानुलोमं वा यत् तु नो मन्यसे हितम् ॥ ५७, ११ ॥

रावण की दुःख भरी सलाह सुनकर बुद्धिमान् प्रहस्त ने कहा कि, पहले मन्त्रणा काल में मैंने स्पष्ट कहा था कि सीता के लौटा देने में ही कल्याण है । नहीं तो युद्ध

तो अनिवार्य होगा और वही हुआ भी। मुझे अपने बाल बच्चे के साथ जीवन की कोई चिन्ता नहीं है, आपके लिए उसे मैं होम कर दूंगा—

राजन् मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ॥ ५७, १३ ॥
प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः ॥ ५७, १४ ॥
न हि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥ ५७, १६ ॥

प्रहस्त का युद्धभूमि के लिए प्रस्थान। दोनों ओर की सेनाओं का आपस में जोरों से ललकार—

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ ५७, २७ ॥
प्रहस्तं तं हि निर्यान्तं प्रख्यात-गुणपौरुषम्।
युधि नाना प्रहरणा कपिसेनाभ्यवर्तत ॥ ५७, ४० ॥
नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम्।
उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥ ५७, ४२ ॥
वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम्।
परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥ ५७, ४३ ॥

प्रहस्त द्वारा वानरी सेना का क्रंदन तथा घोर युद्ध। उसमें आहत होने पर नील को घोर कष्ट—

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे।
नीलाय व्यसृजद्, बाणान् प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ ५८, ३६ ॥
ते प्राप्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः।
महीं जग्मुर्महावेगा रोषिता इव पन्नगाः ॥ ५८, ३७ ॥
नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ५८, ३८ ॥
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥ ५८, ३९ ॥
स तेनाभिहतः क्रुद्धो नर्दन् राक्षसपुङ्गवः।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवङ्गानां चमूपतौ ॥ ५८, ४० ॥

तस्य बाणगणानेव राक्षसस्य दुरात्मनः।
अपारयन् वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः।
यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम्॥ ५८, ४१॥

एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षान् दुरासदान्।
निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे दुरासदान्॥ ५८, ४२॥

प्रहस्त के बाण वर्षा से क्रुद्ध नील का घोर प्रहार—

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान्।
प्रजघान हयान् नीलः प्रहस्तस्य महाबलः॥ ५८, ४३॥

ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः॥ ५८, ४४॥

प्रहस्त का नील पर, मूसल से प्रहार—

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः।
प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम्॥ ५८, ४९॥

जबाव में प्रहस्त की छाती पर नील द्वारा वृक्ष की चोट—

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य च महातरुम्।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः॥ ५८, ५०॥

चोट खाकर नील पर फिर मूसल से प्रहार का प्रयास—

तमचिन्त्य प्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत्।
अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवङ्गमम्॥ ५८, ५१॥

इस पर नील ने एक बड़ी शिला उठा कर प्रहस्त के शिर पर मारा और वह मर गया—

तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्त महाकपिः।
ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम्॥ ५८, ५२॥

तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत्॥ ५८, ५३॥

नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा॥ ५८, ५४॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ५८, ५५॥

राक्षस सेनापति प्रहस्त के मर जाने पर बची खुची सेनाने जाकर प्रहस्त के महाप्रयाण का समाचार रावण को सुनाया। उसके बाद बहुत सोच समझ कर रावण स्वयं युद्धभूमि में तैयार होकर गया—

हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः।
रक्षः पतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमागताः ॥ ५८, ५९ ॥

प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं विसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥ ५८, ६० ॥

संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य क्रोधार्दितः शोकपरीतचेताः।
उवाच तान् राक्षसयूथमुख्यानिन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान् ॥ ५९, ३ ॥

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसादनः।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ५९, ४ ॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन्।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ ५९, ५ ॥

अद्य तद् वानरानीकं रामं च सह लक्ष्मणम्।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥

अद्य सन्तर्पयिष्यामि पृथ्वीं कपिशोणितैः ॥ ५९, ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं रथं तुरंगोत्तमराजियुक्तम्।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ५९, ७ ॥

उसके मैदान में पहुँचने पर उसके तेजको देख श्रीरामजी को महान् आश्चर्य—

आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः।
न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजः समावृतम् ॥ ५९, २७ ॥

देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत्।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतद् विराजते ॥ ५९, २८ ॥

रावण के समराङ्गण में पहुँचने पर वानर वीरों ने घोर प्रहार किये, किन्तु उसने अपनी तीखे बाणों से सबों को विफल बना दिया। रावण के बाणों से आहत एवं पीड़ित वानर श्रीराम की शरण में गये—

तेषां प्रहारान् स चकार मोघान् रक्षोधिपो बाणशतैः शिताग्रैः।
तान् वानरेन्द्रानपि बाणजालैर्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥ ५९, ४३ ॥

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः।
ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥ ५९, ४४ ॥

ते वध्यमानाः पतिताश्च वीरा नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ।
शाखामृगा रावणसायकार्ता जग्मुः शरण्यं शरणं रामम् ॥ ५९, ४५ ॥

श्रीराम को तैयार होते देख लक्ष्मण ने स्वयं जाने के लिए आज्ञा मांगी—

काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः ।
विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥ ५९, ४७ ॥

श्रीराम लक्ष्मण की वीरता को अच्छी तरह से जानते थे, तब उन्हें भी रावण से युद्ध करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता बतायी—

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः ।
त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥ ५९, ४९ ॥

तस्य च्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय ।
चक्षुषा धनुषाऽऽत्मानं गोपयस्व समाहितः ॥ ५९, ५० ॥

भाई की बात को ध्यान से सुनकर रावण से युद्ध के हेतु लक्ष्मण का प्रस्थान—

राघवस्य वचः श्रुत्वा सम्परिष्वज्य पूज्य च ।
अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥ ५९, ५१ ॥

प्रहाररत रावण को देख कर हनुमान् जी ने उससे कहा—देख, यह मेरा दक्षिण बाहु तुम्हें अन्त कर देगा—

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः ।
अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम ॥ ५९, ५५ ॥

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः ।
विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम् ॥ ५९, ५६ ॥

रावण ने कहा, "शीघ्र प्रहार कर और कीर्ति प्राप्त कर ले, फिर तो अपने घूसे से तेरा अन्त करही दूंगा"—

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि ।
ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्त नाशयिष्यामि वानर ॥ ५९, ५८ ॥

हनुमान् ने कहा, 'मैं तो पूर्व ही तुम्हारे बेटे पर प्रहार कर चुका हूं'। तब रावण ने ही प्रहार किया—

प्रहृतं हि मया पूर्वमक्षं तव सुतं स्मर ॥ ५९, ५९ ॥
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ५९, ६० ॥

तल के प्रहार से हनुमान् थोड़ी देर व्यथित तो रहे, पर होश आने पर अपना मुक्का जब रावण पर जमाया तब वह चक्कर खा जमीन पर गया—

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः।
स्थितो मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः॥ ५९, ६१॥
आजघान च संक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम्।
ततः स तेनाभिहतो वानरेण महात्मना॥ ५९, ६२॥
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमितलेऽचलः।

स्वस्थ होने पर रावण ने हनुमान् के बल की सराहना की—

अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ ५९, ६४॥
साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः।

हनुमान् जी ने उसे जीवित देख, अपने पौरुष को धिक्कारते हुए कहा कि मेरा मुक्का तुझे यमपुरी भेज देगा—

धिगस्तु मम वीर्यस्य यत्त्वं जीवसि रावण॥ ५९, ६५॥
सकृत् तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे।
ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम्॥ ५९, ६७॥

दूसरी बार फिर हनुमान् जी ने उसे प्रहार करने को कहा और उसने ऐसा ही किया—

संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमावृत्य दक्षिणम्।
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान्॥ ५९, ६८॥

हनुमान् जी उसकी चोट से मूर्च्छित हो गये थे, इतने ही में वह वहाँ हटकर नील से उलझ गया—

हनूमान् वक्षसि व्यूढे संचचाल पुनः पुनः।
विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम्॥ ५९, ६९॥
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात्॥ ५९, ७०॥

नील से उलझे हुए रावण से हनुमान् ने कहा, तुम अभी दूसरे से जुझे थे। मैं कैसे तुम पर अभी वार करूँ—

हनूमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत्॥ ५९, ७२॥
नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम्।
अन्येन युद्ध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम्॥ ५९, ७७॥

फिर रावण का लक्ष्मण से सामना हुआ। उन्होंने अपने साथ रावण को युद्ध के लिये ललकारा—

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम्।
अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रति योद्धुमर्हसि॥ ५९, ९४॥

घोर युद्ध के अनन्तर रावण ने उनपर ब्रह्मप्रदत्त शक्ति का प्रयोग किया। क्योंकि वह लक्ष्मण के बाणों से बहुत घायल हो चुका था। बाद रावण के बाणों से मूच्छित हो लक्ष्मण चेतना पाकर उसके धनुष को काट डाला—

स तान् प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रः शिताञ्शरांल्लक्ष्मणमाजघान।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण स्वयंभुदत्तेन ललाटदेशे॥ ५९, १०४॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः॥५९, १०५॥

चाप के कट जाने से आहत हो जाने के कारण रावण मूच्छित होकर होश में आया—

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः।
स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद॥५९,१०६॥

स कृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः।
जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयम्भुदत्तां युधि देवशत्रुः॥५९, १०७॥

उसने उस अमोघशक्ति को उठाया और उसे लक्ष्मण पर छोड़ दी। लक्ष्मण आहत हो पृथवी पर गिर कर मूच्छित हो गये। रावण ने उन्हें उठा लेने का प्रयत्न किया पर वह टस से मस भी न हुए—

स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सन् जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥५९, ११०॥

हिमवान् मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः॥ ५९, १११॥

ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः।
तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत्॥ ५९, ११२॥

हनुमान् जी लक्ष्मण की दशा देख क्रोध से जल उठे। उन्होंने रावण पर मुष्टि प्रहार किया। जिससे वह विचलित हो गिर पड़ा और उसके मुँह आँख कान से खून की धारा बहने लगी। वह रथ के पिछले भाग में अचेत पड़ा रहा—

ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत्।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना॥ ५९, ११३॥

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ।
जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च ॥ ५९, ११४ ॥

आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं बहु ।
विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५९, ११६ ॥

रावण की मूर्छा की ओर हनुमान् जी के कर्म को देखकर वानरसमाज एवं देवता लोग हर्षध्वनि कर लगे—

विसंज्ञो मूर्च्छितश्चासीन्न च स्थानं समालभत् ।
विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमः ॥ ५९, ११७ ॥

ऋषयो वानराश्चैव नेदुर्देवाश्च सासुराः ।

फिर हनुमान् जी लक्ष्मण को उठाकर रामजी के पास ले आये, उनके लिये लक्ष्मण हलके हो गये—

हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ॥ ५९, ११८ ॥

आनयद् राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ।
वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सह ॥
शत्रूणामप्रकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत् कपेः ॥ ५९, ११९ ॥

थोड़ी देर में ही लक्ष्मण आश्वस्त हुए एवं घाव की पीड़ा से मुक्त हो गये—

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥ ५९, १२२ ॥

अपनी सेना को पीड़ित देख श्रीराम रावण से जूझने के लिए उद्यत हुए तब जल श्री हनुमान् जी ने रामजी से अपने कन्धे पर सवार होकर रावण से युद्ध करने का आग्रह किया और उन्हों ने उनका आग्रह मान कर रावण पर टूट पड़े—

निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम् ।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥ ५९, १२३ ॥
अथारुरोह सहसा हनूमन्तं महाकपिम् ।
रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥ ५९, १२६ ॥
तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स रावणम् ।
वैरोचनमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ ५९, १२७ ॥

उसे देखते ही श्रीराम ने क्रोधाभिभूत होकर कहा, "रावण अब तू बचकर कहां छुटकारा पायगा, दशों दिशाओं में अब तेरा रक्षक कोई नहीं हो सकता—

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
क्व नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ५९, १२९ ॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान् वा स्वयंभुवैश्वानरशंकरान् वा ।
गमिष्यसि त्वं दशधादिशो वा तथापि मे नाद्यगतो विमोक्ष्यसे ॥५९,१३०॥

रावण ने घूसे की मार को याद कर पहला बैर साधने के हेतु हनुमान् जी को तीखे बाणों से घायल कर दिया—

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
वायुपुत्रं महावेगं वहंतं राघवं रणे ॥ ५९, १३३ ॥

रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
आजघान शरैर्दीप्तैः कालानलशिखोपमैः ॥ ५९, १३४ ॥

हनुमान् जी के ऊपर हुए प्रहार को श्रीराम जी सहन नहीं कर सके । उन्होंने तीखे बाणों से रावण के सारथी, रथ, घोड़े उसके अस्त्र, शस्त्र सबों को नष्ट कर दिया । रावण भी चोट खाकर निश्चेष्ट सा हो गया था । उसकी चेतना लुप्त सी हो गई थी--

ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान् ॥ ५९, १३६ ॥

तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखड्गं रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥ ५९, १३७ ॥

यो वज्रपाताशनिसंन्निपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥ ५९ १३९ ॥

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं चिच्छेद रक्षोद्विपतेर्महात्मा ॥ ५९, १४० ॥

उसकी दयनीय दशा को देख दयालु श्रीराम ने उसे उस समय घर लौट जाने को कहा और दूसरे दिन सांग्रामिक के साथ जुटने की सलाह दी---

तं निर्विषाशीविषसंनिकाशं शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटमुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ ५९, १४१ ॥

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥ ५९,१४२ ॥

प्रजाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिं चरराज लङ्काम् ।
आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्य ॥५९,१४३॥

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स हताश्वसूतः ।
शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा ॥ ५९,१४४ ॥

बहुत सोच समझ कर राक्षसों से उसने मंत्रणा कर नवमें दिन सोते हुए कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा दी--

स निद्रावशमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।
सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कामोपहतचेतनः ॥ ६०, १६ ॥

नव सप्त दशाष्टौ च मासान् स्वपिति राक्षसः ।
मन्त्रं कृत्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नवमेऽहनि ॥ ६०, १७ ॥

कठिनाई से जगाये जाने पर कुम्भकर्ण ने रावण के पास आकर उसने अपने जगाने का उद्देश्य पूछा--

कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ।
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ६२, १० ॥

संरक्तनयनः क्रोधाद् रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
"किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः ॥ ६२, ११ ॥

शंस कस्माद् भयं तेऽत्र को वा प्रेतो भविष्यति" ॥ ६२, १२ ॥

रावण ने अपने सारे उद्देश्य कुम्भकर्ण को सुनाकर लङ्का राजधानी एवं राक्षसों को त्राण दिलाने के लिए आपको जगाया गया हैं ऐसा कहा--

एष दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं लङ्घयित्वा तु मूलं नः परिकृन्तति ॥ ६२, १४ ॥
ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ॥ ६२, १६ ॥
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन ।
न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥ ६२, १७ ॥
तदेतद् भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल ।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ ६२, १८ ॥
सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्युपपद्य माम् ।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥ ६२, १९ ॥

उसकी बात सुन कुम्भकर्ण ने उपालम्भ के साथ राजनीति सम्बन्धी बातें कहनी शुरू की और उसकी अनीतियाँ एवं अदूरदर्शिता का विवरण दिया--

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ ६३, १ ॥
'दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया" ॥ ६३, २ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ६३, ५ ॥

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६३, ६ ॥

त्रयाणां पञ्चधायोगं कर्मणां यः प्रपद्यते ।
सचिवैः समयं कृत्वा स सम्यग् वर्तते पथि ॥ ६३, ७ ॥

यथागमं च यो राजा समयं च चिकीर्षति ।
बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्या सुहृदश्चानुपश्यति ॥ ६३, ८ ॥

धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान् वा रक्षसां पते ।
भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥ ६३, ९ ॥

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥ ६३, १० ॥

उपप्रदानं सान्त्वं च भेदं काले च विक्रमम् ।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥ ६३, ११ ॥

काले धर्मार्थकामान यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवांल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥ ६३, १२ ॥

हितानुबन्धमालोक्य कुर्यात् कार्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ ६३, १३ ॥

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान् पुरुषाः पशुबुद्धयः ।
प्रागल्भ्याद् वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रिष्वभ्यन्तरीकृताः ॥ ६३, १४ ॥

अशास्त्रविदुषां तेषां कार्यं नाभिहितं वचः ।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥ ६३, १५ ॥

अहितं च हिताकारं धार्ष्ट्याज्जल्पन्ति ये नराः ।
अवश्यं मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषकाः ॥ ६३, १६ ॥

विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥ ६३, १७ ॥

तान् भर्ता मित्रसंकाशानमित्रान् मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात् सचिवानुपसंहितान् ॥ ६३, १८ ॥

चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ ६३, १९ ॥

कुम्भकर्ण ने आगे कहा—जो बातें आपसे मैंने, मेरे छोटे भाई विभीषण ने तथा आपकी प्रियतमा मन्दोदरी ने पहले कही थी वही हुई, अब आप जैसा चाहें करें-

यो हि शत्रुमवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान् स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥ ६३, २० ॥
यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३, २१ ॥

कुम्भकर्ण का भाषण सुनकर रावण की भौहें तन गईं। उसने कहा, जो कुछ होना था सो तो हो ही गया, अब भ्रातृस्नेह के कारण उन क्षतियों की पूर्ति यदि तुम कर सकते हो तो करो, अभी गुरुवत उपदेश का अवसर नहीं है--

तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम्।
भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ ६३, २२ ॥

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससे।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद् युक्तं तद् विधायताम् ॥६३, २३॥

विभ्रमाच्चित्तमोहाद् वा बलवीर्याश्रयेण वा।
नाभिपन्नमिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुनः कथा ॥ ६३, २४ ॥

अस्मिन् काले तु यद् युक्तं तदिदानीं विचिन्त्यताम्।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ ६३, २५ ॥

ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु।
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाधिगच्छसि" ॥ ६५, २६ ॥

स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥ ६३, २७ ॥

अपने बड़े भाई रावण को नाराज हुए जानकर धीरे से कुम्भकर्ण ने कहा—राजन् आप क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाइये। भाई के नाते आपकी प्रसन्नता के लिये वानरों एवं लक्ष्मण के साथ राम को मारकर खा लूँगा। आप चिन्ता न करें—

तमथैवं ब्रुवाणं स वचनं धीरदारुणम्।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥ ६३, २८ ॥

अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्यते।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ६३, ३१ ॥

अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ६३, ३३ ॥

वधेन ते दाशरथेः शुभावहं सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि।
निहत्य रामं सह लक्ष्मणेन खादामि सर्वान् हरियूथमुख्यान् ॥६३, ५७॥

कुम्भकर्ण के प्रति महोदर का आक्षेप- –

कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः।
अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥ ६४, २ ॥

यत् त्वशक्यं बलवता वक्तुं प्रकृतबुद्धिना।
अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात् तादृशं बुधः ॥ ६४, ५ ॥

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजनम्।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥ ६४, ७ ॥

निःश्रेयसफलामेव धर्मार्थावितरावपि।
अधर्मानर्थयोः प्राप्तं फलं च प्रात्यवायिकम् ॥ ६४, ८ ॥

ऐहलौकिकपारक्यं कर्म पुंभिर्निषेव्यते।
कर्माण्यपि तु कल्यानि लभते काममास्थितः ॥ ६४, ९ ॥

तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः।
शत्रौ हि साहसं यत् तत् किमिवात्रापनीयते ॥ ६४, १० ॥

कुम्भकर्ण को कहने के बाद महोदर ने रावण से कहा--

अनष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो रिपुं त्वयुद्धेन जयञ्जनाधिपः।
यशश्च पुण्यं च महान्महीपते श्रियं च कीर्तिं च चिरं समश्नुते ।६४, ३६।

कुम्भकर्ण ने फटकारते हुए महोदर से कहा कि, आप सरीखे पुरुष यदि राजा के साथ युद्ध में जाय तो उसका विनाश क्यों न हो। आपकी दुर्नीति का सामना हेतु मैं युद्ध में आज जा रहा हूँ—

विक्लवानां ह्यबुद्धीनां राज्ञां पण्डितमानिनाम्।
रोचते त्वद्वचो नित्यं कथ्यमानं महोदर ॥ ६५, ५ ॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः।
राजानमनुगच्छद्भिः सर्वं कृत्यं विनाशितम् ॥ ६५, ६ ॥

राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम्।
राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ६५, ७ ॥

एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये।
दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुं महाहवे ॥ ६५, ८ ॥

बड़े परिघ को हाथ में ले कुम्भकर्ण का वानरी सेना में उसके विनाश के लिये प्रस्थान—

विपुलपरिघवान् स कुम्भकर्णो रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा।
कपिगणभयमाददत् सुभीमं प्रभुरिव किंकरदण्डवान् युगान्ते ॥६५,५७॥

समराङ्गण में आने के पूर्व बड़े भाई का कुम्भकर्ण ने अभिवादन किया, उसको देखते ही बड़े बड़े वानर यूथपति भाग चले—

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः॥

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः॥ ६६, ३॥

डर से भागती हुई अपनी सेना को देख कर अंगद ने नल नीलादि कों को भय छोड़कर डटे रहने का आवाहन किया—

तांस्तु विप्रद्रुतान् दृष्ट्वा राजपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत्।
नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम्॥ ६६, ७॥

भीरोः प्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम्॥ ६६, २३॥

वानरवीर लौटना तो चाहते थे नहीं, किन्तु बुद्धिमान् अंगद ने उन्हें सान्त्वना दे कर लौटा लिया—

कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा।
न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः॥ ६६, २९॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन बलीमुखाः।
सान्त्वनैश्चानुमानैश्च ततः सर्वे निवारिताः॥ ६६, ३१॥

कुम्भकर्ण के कदन और वानर वीरों की दुर्दशा देख रघुनाथ जी ने अपने तेज दिव्य बाणों से उसका अन्त कर डाला—

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं रामः शरं मारुततुल्यवेगम्॥ ६७, १६५॥

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम्।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं रामः प्रचिक्षेप निशाचराय॥ ६७, १६६॥

स सायको राघवबाहुचोदितो दिशः स्वभासा दश सम्प्रकाशयन्।
विधूमवैश्वानरभीमदर्शनो जगाम शक्राशनिभीमविक्रमः॥६७,१६७॥

स तन्महापर्वतकूटसंनिभं सुवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम्।
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः ६६, १६८ ॥

स कुम्भकर्णं सुरसैन्यमर्दनं महत्सु युद्धेषु कदाचनाजितम्।
ननन्द हत्वा भरताग्रजो रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥ ६७, १७७ ॥

कुम्भकर्ण को रणभूमि में मरे पड़े देख राक्षसों ने इसकी सूचना रावण को दी। सुनकर शोकाकुल रावण ने मूर्च्छित हो गिर गया—

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ ६८, १ ॥

श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥ ६८, ६ ॥

होश आने पर रावण विभीषणादि के पूर्व वचनों को न मानने के लिये पश्चात्ताप करने लगा—

इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः।
दक्षिणोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात् ॥ ६८, १२ ॥

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम्।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥ ६८, २१ ॥

विभीषणवचस्तावत् कुम्भकर्णप्रहस्तयोः।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥ ६८, २२ ॥

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः ॥ ६८, २३ ॥

यों रावण पश्चात्ताप कर ही रहा था कि उसका पुत्र त्रिशिरा ने वहाँ आकर कहा—आप निश्चिन्त रहें मैं जाकर आपका सारा काम बना दूँगा—

त्वया सकृद्धि शास्त्रेण विशस्ता देवदानवाः।
स सर्वायुधसम्पन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥ ६९, ५ ॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुडः पन्नगानिव ॥ ६९, ६ ॥

त्रिशिरा की बात सुनकर तो फिर देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय भी साथ हो लिये। उनकी निगरानी में रावण के भाई युद्धोन्मत्त एवं मत्त भी गये—

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ६९, ७ ॥

स पुत्रान् सम्परिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥ ६९, १५ ॥
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ ६९, १६ ॥
तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि ॥ ६९, ८६ ॥

अंगद लड़ते हुए नरान्तक से कहा कि, इन साधारण वानरों से लड़ने से क्या ? मुझ पर बाण चलाओ, उसके बाद क्रोध में आकर वह लड़ने लगा । अंगद ने अपने मुक्कों के प्रहार से उसे मार डाला—

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ।
संदश्य दशनैरोष्ठं निःश्वस्य च भुजंगवत् ॥
अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥ ६९, ८७ ॥
स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥ ६९, ८८ ॥
तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरंगमस्याभिजघान मूर्ध्नि ॥ ६९, ८९ ॥
अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥ ६९, ९३ ॥
स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षा ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः ॥ ६९, ९४ ॥

नरान्तक की मृत्यु से त्रिशिरादि को घोर अमर्ष हुआ और उसने सेना में प्रलय मचा दिया, पर वीर हनुमान् ने उसे मौत के घाट उतार दिया—

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥ ७०, १ ॥
अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः ।
उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयास मुष्टिना ॥ ७०, ४५ ॥
तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः ।
कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ॥ ७०, ४६ ॥
स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥ ७०, ४७ ॥
तस्मिन् हते देवरिपौ त्रिशीर्षे हनूमता शक्रपराक्रमेण ।
नेदुः प्लवङ्गाः प्रचचाल भूमी रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥ ७०, ४८ ॥

अपनी राक्षसी सेना को व्यथित और भाइयों एवं चाचाओं के वध से क्रोधित हो अतिकाय (धान्यमालिनी कुमार) ने आक्रमण कर श्री रामजी से कहा—

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भ्रातॄँश्च निहतान् दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ ७१, १ ॥
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसोत्तमौ ॥ ७१, २ ॥
चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा ॥
स भास्करसहस्रस्य संघातमिव भास्वरम् ।
रथमारुह्य शक्रादिरभिदुद्राव वानरान् ॥ ७१, ४ ॥
ततःसैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥ ७०, ४३ ॥
स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये नायुध्यमानं निजघान कंचित् ।
उत्पत्य रामं सधनुः कलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ७०, ४४ ॥

केवल शक्तिमान् श्रीराम से ही नीतियुक्त युद्ध मैं करूँगा ऐसा अतिकाय ने कहा—

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कंचन योधयामि ।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यसाययुक्तो ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ७१, ४५ ॥

अतिकाय के गर्वयुक्त बातें सुनकर शीघ्र ही लक्ष्मण धनुष बाण ले उसके सामने आ गये—

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥ ७१, ४७ ॥
सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ।
विसिस्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥ ७१, ४९ ॥

अतिकाय ने लक्ष्मण को अवहेलनायुक्त बातें कहीं—

सुखप्रसुप्तं कालाग्निं विबोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्व प्राणान्न जहि मद्गतः ॥ ७१, ५३ ॥
अथवा त्वं प्रतिस्तब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥ ७१, ५४ ॥

लक्ष्मण ने उसे सुन उससे कहा, जो करना है उसे मैदान में कर दिखाओ, डींग क्या हाँकते हो ? मुझे बालक समझ कर कमजोर मत समझो। लड़ने पर मृत्यु मुख में जाना ही होगा—

न वाक्यमात्रेण भवान् प्रधानो न कत्थनात् सत्पुरुषा भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ निदर्शयस्वात्मबलं दुरात्मन् ॥७१, ८५॥

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ७१, ५९ ॥
बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥ ७१, ६३ ॥
बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिविक्रमैः ।

बाद लक्ष्मण और अतिकाय में घोर संग्राम हुआ और अन्त में श्री लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र बाण से उसका मस्तक काट डाला—

तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे शरं सपुङ्खं यमदूतकल्पम् ।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥ ७१,१०६ ॥
तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तथातिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥ ७१, १०८ ॥
तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा स शिरोऽग्निदीप्तः ।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं तदातिकायस्य शिरो जहार ॥ ७१, १० ॥

अतिकाय एवं अन्यान्य पराक्रमशाली वीर राक्षसों के हनन से रावण का शोक बहुत बढ़ गया और वह पश्चाताप में डूबता उतराता सा था—

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महात्मना ।
उद्वेगमगमद् राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ७२, १ ॥
धूम्राक्षः परमामर्षी सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥ ७२, २ ॥
एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः ।
जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यपराजिताः ॥ ७२, ३ ॥
स सैन्यास्ते हता वीरा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशास्त्रविशारदाः ॥ ७२, ४ ॥
अहो सुबलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै ।
यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ॥ ७२, १० ॥

रावण श्रीराम को नारायण मानने लगा था —

तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम्।
तद्भयाद्धि पुरी लङ्का पिहितद्वारतोरणा ॥ ७२, ११ ॥

फिर भी नगर की रक्षा पूरी निगरानी का आदेश देकर अपने भवन में प्रवेश किया —

अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुल्मे रक्ष्या पुरी त्वियम्।
अशोकवनिका चैव यत्र सीताभिरक्ष्यते ॥ ७२, १२ ॥

तान् सर्वान् हि समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः।
मन्युशल्यं वहन् दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥ ७२, १८ ॥

असुरों ने अपने भयंकर विनाश का समाचार रावण तक पहुँचाये—

ततो हतान् राक्षसपुङ्गवांस्तान् देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान्।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टास्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥ ७३, १ ॥

मोह में डूबे हुये रावण को उसका पुत्र इन्द्रजित ने उसे ढाढ़स बधाया और कहा पिताजी जब तक इन्द्रजित् जीवित है आपको कोई चिन्ता नहीं है, मेरे बाणों से कोई भी नहीं बच सकता—

न तात मोहं परिगन्तुमर्हसि यत्रेन्द्रजिज्जीवति नैर्ऋतेश ।
नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित् प्राणान् समर्थः समरेऽभिपातुम् ॥ ७३, ४ ॥

पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम्।
गतायुषं भूमितले शयानं शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ७३, ५ ॥
अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्च वैश्वानरचन्द्रसूर्याः।
द्रक्ष्यन्ति मे विक्रममप्रमेयविष्णोरिवाग्रं बलयज्ञवाटे ॥ ७३, ७ ॥

रथपर सवार हो इन्द्रजित् समरभूमि में गया—

समास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम्।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिंदमः ॥ ७३, ९ ॥

यथापूर्व उसने अग्नि का स्थापन एवं आवाहन कर होम किया। अग्निदेव प्रकट हुए। फिर उसने अग्नि से प्राप्त रथ पर चढ़ अदृश्य हो लड़ाई के मैदान में संहार मचा दिया। कोई भी प्रमुखवीर खड़े नहीं रहे। लक्ष्मणस-हित श्रीराम की तो पूछना ही क्या ? हाहाकार मच गया—

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिंदमः।
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥ ७३, २० ॥

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ।
जुहुवे राक्षसश्रेष्ठो विधिवन्मन्त्रसत्तमैः ॥ ७३, २१ ॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ॥ ७३, २५ ॥
प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनसंनिभः ।
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥ ७३, २६ ॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्ममस्त्रविशारदः ।
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥ ७३, २७ ॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
स चापबाणासिरथाश्वसूतः खेऽन्तर्दधेऽत्मानमचिन्त्यवीर्यः ॥ ७३ २९ ॥
ते शरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ।
तोमरैरङ्कुशैश्चापि वानराञ्जघ्नुराहवे ॥ ७३, ३१ ॥

ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसंकल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥ ७३, ३९ ॥
रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः ।
नर्दन्तस्तेऽनिवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥ ७३, ४२ ॥
संसृज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ।
ममर्द वानरानीकं परितस्त्विन्द्रजिद् बली ॥ ७३, ५३ ॥

हनूमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥ ७३, ६२ ॥
मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गवयं तथा ।
केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥ ७३, ६३ ॥
सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥ ७३, ६४ ॥
प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः ॥ ७३, ६५ ॥

वानर वीरों के बाद श्रीराम और लक्ष्मण को शराहत करना—

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान् निर्भिद्य बाणैस्तपनीयवर्णैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः । ७३, ६६ ।

स बाणवर्षैरभिवृष्यमाणो धारानिपातानिव तानचिन्त्य ।
समीक्षमाणः परमा[illegible] रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ।। ७३, ६७।

आहत श्रीराम ने को लक्ष्मण से कहा—

"असौ पुनर्लक्ष्मण राक्षसेन्द्रो ब्रह्मास्त्रमाश्रित्य सुरेन्द्रशत्रुः।
निपातयित्वा हरिसैन्यिनस्मान्शतैः शरैर्दयति प्रसक्तम्' ॥ ७३ ६८ ॥

विभीषण ने श्रीराम लक्ष्मण को विसंज्ञ देख सबों का ढाढ़स दिया कि इन दोनों ने ब्रह्मा जी के अस्त्रों को स्वयं ग्रहण किया हैं कोई बात नहीं हैं—

श्रीराम सहित सभी सेना को विषाद में डाल इन्द्रजित् का पुरी में प्रवेश—

ततस्तदा वानरसैन्यमेवं रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन।
विषादयित्वा सहसा विवेश पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम्।
संस्तूयमानः स तु यातुधानै पित्रे च सर्वं हृषितोऽभ्युवाच ॥ ७३ ७४ ॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रो ह्यवशौ विषण्णौ।
स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ यत्सादितविन्द्रजितास्त्रजालैः ॥ ७४, ३ ॥

तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत् स्वयंभुवा ब्राह्मममोघवीर्यम्।
तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥ ७४ ४ ॥

हनुमान् जी को विभीषण की सलाह—

ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान् मानयित्वा तु मारुतिः।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनुमान् इदमब्रवीत् ॥ ७४, ५ ॥

'अस्मिन्नस्त्रहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम्।
यो यो धारयते प्राणास्तं तमाश्वासयावहे' ॥ ७४, ६ ॥

ढूंढ़ते ढूंढ़ते विभीषण और हनुमान् जी जामवन्त के पास आये ऋक्षराज ने हनुमान् के विषय में पूछा कि क्या वह जीवित हैं?

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत।
हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते कच्चित् ॥ ७४, १८ ॥

हनुमान् के विषय में विभीषण का विशेष स्नेह प्रकट करने के कारण पूछना—

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः।
'आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात् पृच्छसि मारुतिम् ॥ ७४, १९ ॥
नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे।
आर्य! संदर्शितः स्नेहो यथा वायुसुते परः ॥ ४, २० ॥

जाम्बवान् ने विभीषण को स्पष्ट बताया कि इस समय हमारी जिन्दगी हनुमान् पर ही अवलम्बित है। वह जीवित हैं, तो हम सब जीवित हैं, वह नहीं तो कोई नहीं—

अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ॥ ७४, २२ ॥
धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥ ७४, २३ ॥

हनुमान् ने ऋक्षराज के पैर छू कर प्रणाम किया--

ततो वृद्धमुपागम्य विनयेनाभ्यवादयत्।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनूमान् मारुतात्मजः ॥ ७४, २४ ॥

जाम्बवान् ने हर्षित हो उन्हें हिमालय बूटियाँ लाने को कहा—

ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय।
विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७४, २८ ॥
गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम्।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन् गन्तुमर्हसि ॥ ७४, २९ ॥
ततः काञ्चनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम्।
कैलासशिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ७४, ३० ॥
मृतसंजीवनीं चैव बिशल्यकरणीमपि।
सुवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम् ॥ ७४, ३३ ॥

जाम्ववान् के आदेशानुसार हनुमान् जी ने हिमालय जाकर वहां से जड़ी का पहाड़ ही उठाकर ले आये—

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः।
आपूर्यत बलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥ ७४, ३५ ॥
स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात वित्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान्।
संस्तूयमानः खचरैरनेकैर्जगाम वेगाद् गरुडोग्रवेगः ॥ ७४, ६८ ॥
ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य विभीषणं तत्र च सस्वजे सः ॥७४, ७२॥

उन औषधियों के प्रयोग से सभी विशल्य हो गये—

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम्।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥७४, ७३॥

काम हो जाने पर हनुमान् जी पुनः उस पहाड़ को यथास्थान पहुँचा कर रामजी के पास लौट आये--

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु तमौषधीशैलमुदग्रवेगः।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव पुनश्च रामेण समाजगाम ॥७४, ७७॥

तब सुग्रीव ने हनुमान् जी से सन्ध्याकाल में लङ्का में आग लगवाने की सलाह दी और बलवान वानरों ने उस आदेश का पालन किया--

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुग्रीवो वानरेश्वरः।
अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनूमन्तमिदं वचः॥ ७५, १॥

"ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवङ्गमाः।
लङ्कामभिपतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः"॥ ७५, ३॥

ततोऽस्तंगत आदित्ये रौद्रे तस्मिन् निशामुखे।
लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः॥ ७५, ४॥
गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम्॥ ७५, ६॥

लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे च महोदधिः।
छायासंसक्तसलिलो लोहितोद इवार्णवः॥ ७५, २९॥

फिर तो राक्षसों और वानरों में तुमुल युद्ध होने लगा--

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद् बलं रक्षसां महत्।
अभ्ययात् प्रत्यरिबलं पतंगा इव पावकम्॥ ७५, ५९॥
तथैवापततां तेषां हरीणां निशितैः शरैः।
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमविक्रमाः॥ ७५, ६२॥
दशनैर्हृतकर्णाश्च मुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः।
शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः॥ ७५, ६३॥

अस्त-व्यस्त राक्षसों को वानरों ने घेर लिया--

विप्रलम्भितवस्त्रं च विमुक्तं कवचध्वजम्।
बलं राक्षसमालम्ब्य वानराः पर्यवारयन्॥ ७५, ६९॥

अंगद और कम्पन में घोर युद्ध--

प्रवृत्ते संकुले तस्मिन घोरे वीरजनक्षये।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः॥ ७६, १॥
आहूय सोऽङ्गदं कोपात् ताडयामास वेगितः।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः॥ ७६, २॥

द्विविद द्वारा शोणिताक्ष का अन्त--

द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान्॥ ७६, ३४॥

मैन्दद्वारा यूपाक्ष का वध--

यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुङ्गवः ।
पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥ ७६, ३५ ॥

कुम्भ का वानरी सेना से घोर संहार करना--

आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयञ्चमूम् ।
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवङ्गमैः ॥ ७६, ३७ ॥

निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा ।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ ७६, ३८ ॥

सुग्रीव द्वारा कुम्भ का वध---

ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि ।
पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेस्तलम् ॥ ७६, ८४ ॥

तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥७६, ९४॥

अपने भाई कुम्भ को सुग्रीव द्वारा वध से निकुम्भ की क्रोधाग्नि भड़क उठी और सेना में उसके द्वारा घोर संहार मचाना--

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥ ७७, १ ॥

दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ।
क्रोधेन्धनो निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ ७७, ९ ॥

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनूमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥ ७७, १० ॥

हनुमान् से उसका घोर तुमुल युद्ध मचना--

परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥ ७७, ११ ॥

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विकीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥ ७७, १२ ॥

स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः ।
परिघेन समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥ ७७, १३ ॥

स तथाभिहतस्तेन हनूमान् प्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥ ७७, १४ ॥

तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान्।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः॥ ७६, १५॥
तत्र पुस्फोट वर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम्।
मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता॥ ७७, १६॥

उस प्रहार से निकुम्भ विचलित हो गया। स्वस्थ होकर उसने हनुमान् को जकड़ लिया--

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम्॥ ७७, १७॥

हनूमान् निकुम्भ की जकड़ से अपने को मुक्त कर लेने के पश्चात् उस पर उन्होंने प्राणान्तक प्रहार किया--

आत्मानं मोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत।
हनूमानुन्ममथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः॥ ७७, २०॥
निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च।
उत्पत्य चास्यवेगेन पातितोरसि वेगवान्॥ ७७, २१॥
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम्।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत्॥ ७७, २२॥

निकुम्भ की मृत्यु से वानरों में हर्षध्वनि होने लगी--

व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा विनेदुः प्लवङ्गा दिशः सस्वनुश्च।
चचालेव चोर्वी पपातेव सा द्यौर्बलं राक्षसानां भयं चाविवेश॥७७,२४॥

तब शोकाभिभूत रावण ने खरपुत्र मकराक्ष को युद्ध में जाने की आज्ञा दी—

गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ॥ ७८, ३॥
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद रावणस्याज्ञया बली॥ ७८, ५॥

मकराक्ष ने रणभूमि में राक्षसों से अपना हौसला कह सुनाया--

अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः॥ ७८, ११॥
ततः प्रवृत्तं सुमहत् तद् युद्धं लोमहर्षणम्।
निशाचरैः प्लवङ्गानां देवानां दानवैरिव॥ ७९, २॥

श्रीराम ने मकराक्ष से कहा--

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः।
त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहतो मया॥ ७९, १९॥

श्रीराम की बात से कुपित हो मकराक्ष ने बाणवर्षा आरम्भ की--

राघवेणैवमुक्तस्तु मकाराक्षो महाबलः।
बाणौघानमुचत् तस्मै राघवाय रणाजिरे॥ ७९, २१॥

उसके बाणों को रघुनाथ जी ने विफल कर दिया--

ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा।
निपेतुर्भुवि विच्छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः॥ ७९, २२॥

श्रीराम के प्रहार से सारथी का हनन और मकराक्ष का धनुष खण्डन--

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं बिव्याध राघवः॥ ७९, २९॥

इस प्रहार से कुपित हो शूल से उसने आक्रमण किया, किन्तु श्रीराम ने उसे पावकास्त्र से वध कर डाला—

तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ७९, ३७॥
स तं दृष्ट्वा पतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः।
पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने॥ ७९, ३८॥
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च॥ ७९, ३९॥

मकराक्ष वध से विक्षुब्ध रावण ने अपने प्रियपुत्र इन्द्रजित् को रामादि को वध करने का आदेश दिया--

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः॥ ८०, ३॥

पिता की आज्ञा मान पहले उसने यथापूर्व अग्नि का आवाहन कर होम किया--

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः।
यज्ञभूमौ स विधिवत पावकं जुहुवेन्द्रजित्॥ ८०, ५॥

इन्द्रजित ने मायामयी सीता का वध, हनुमानादि वानरों के सामने कर डाला ता कि सब के सब मोह में पड़ जायें—

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा।
बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत्॥ ८१, ५॥

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥ ८१, ६ ॥

तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ ८१, १५ ॥

गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् दैन्यमागतः।
दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन् मारुतात्मजः ॥ ८१, १६ ॥

हनुमान् ने सान्त्वभाव से उसे उस कर्म से निवारण करना चाहा--

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रतिलप्स्यसे ॥ ८१, २२ ॥

मेघनाद ने कहा-इसे मारकर फिर रामादि का हनन करूंगा--

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः।
तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ ८१, २६ ॥
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥ ८१, २७ ॥

जिस काम से शत्रु को कष्ट हो उसे अवश्य करना चाहिए, ऐसा इन्द्रजित् ने हनुमान् जी से कहा--

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥ ८१, २८ ॥

फिर रोती हुई मायामयी सीता को तेज तलवार से काट डाला--

तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित् स्वयम् ॥ ८१, २९ ॥

इसे देख लड़ाई को रोक हनुमान् ने श्रीराम जीको समाचार देने के लिए चले-

इममर्थं हि विज्ञाय रामं सुग्रीवमेव च।
तौ यत् प्रतिविधास्येते तत् करिष्यामहे वयम् ॥ ८२, २२ ॥

इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान्।
शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत ॥ ८२, २३ ॥

हनुमान आदि को जाते देख इन्द्रजित् निकुम्भिला मन्दिर में यज्ञाहुति पूर्ण करने को चला--

ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः।
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम् ॥ ८२, २४ ॥

हनुमान् जी ने इन्द्रजित् द्वारा सीता के बध का समाचार श्रीराम को दिया—

समरे युद्धमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद् रावणात्मजः॥ ८३, ८॥

इस समाचार से श्रीराम का मूर्च्छित होना——

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥ ८३, १०॥

श्रीराम की इस अवस्था से चिन्तित हो लक्ष्मण ने उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार की नैतिक बातों द्वारा सान्त्वना देने का प्रयास किया—

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम्।
यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः॥ ८३, १५॥

धर्मेणोपलभेद् धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः।
यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः॥ ८३, १९॥
न धर्मेण वियुज्येरन्नाधर्मरुचयो जनाः।
धर्मेणाचरतां तेषां तथा धर्मफलं भवेत्॥ ७३, २०॥
अर्थेभ्योऽथ प्रवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः॥ ८३, ३२॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पंडितः॥ ८३, ३५॥
यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान्।
यस्यार्थाः स महाभागी यस्यार्थाः स गुणाधिकः॥ ८३, ३६॥
यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम्।
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता॥ ८३, ३८॥
हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप॥ ८३, ३९॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत।
किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे॥ ८३, ४३॥

तब उस समय विभीषण ने श्रीराम जी को विश्वास दिलाया कि वास्तविक सीता का बध नहीं हुआ है, वह तो मायानिर्मित सीता का हुआ है। इन्द्रजित ने हम सबों को मोहित कर स्वयं निकुम्भिला पहुँच पूर्णाहुति समाप्त करने के

लिये किया है। उस आहुति को पूरी हो जाने पर वह किसी से पराजित नहीं होगा—

वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ ८४, १३ ॥

चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति।
हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ ८४, १४ ॥

दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ॥ ८४, १५ ॥

ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते।
त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्या संतापमागतम् ॥ ८४, १६ ॥

विभीषण ने आगे कहा कि आप शोक त्याग दें। उसकी पूर्णाहुति कार्य को रोकने के हेतु हमारे साथ लक्ष्मण को भेजें, सब ठीक हो जायगा--

इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥ ८४, १८ ॥

श्रीराम जी ने ऐसा ही किया। राक्षसी माया के जानकर विभीषण भी उनके साथ थे--

अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः।
अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥ ८५, २३

श्रीरामजी की आज्ञा से लक्ष्मण अपने अस्त्र शस्त्र के साथ चल पड़े--

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमन्यद् भीमविक्रमः ॥ ८५, २४ ॥

लक्ष्मण ने अपनी सेना के वीर योद्धाओं के साथ निकुम्भिला के पास पहुँच कर उसे चारों ओर की राक्षसी सेनाओं से घिरा देखा—

स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद् व्यूहमाश्रितम् ॥ ८५, ३३ ॥

स सम्प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिंदमः।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥ ८५, ३४ ॥

लक्ष्मण का मेघनाद को ललकारना--

युध्यस्व यदि वीरोऽसि रावणात्मज दुर्मते।
वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन् प्रतियास्यसि ॥ ८६, ३० ॥

विभीषण को वहां देखते ही इन्द्रजित् आग बबूला हो गया और उन्हें खड़ी खोटी सुनाने लगा--

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ८७, ११ ॥
न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिश्चैव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥ ८७, १२ ॥
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥ ८७, १५ ॥
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ॥ ८७, १६ ॥
निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज ॥ ८७, १७ ॥

विभीषण ने दुराचारी मेघनाद की बातों का यथार्थ उत्तर दिया और यह भी कहा कि जो कुछ कहना हो कह लो, तुम्हारा समय पूरा हो गया--

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।
भ्राता विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥ ८७, २० ॥
धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥ ८७, २१ ॥
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥ ८७, २२ ॥
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ ८७, २३ ॥
महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ ८७, २४ ॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान् प्रच्छादयामास पर्वतानिव तोयदाः ॥ ८७, २५ ॥
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरीलङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥ ८७, २६ ॥
अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि ॥ ८७, २७ ॥

अद्येह व्यसनं प्राप्तं यन्मां परुषमुक्तवान् ।
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम ॥ ८७, २८ ॥

युद्धनिरत लक्ष्मण ने मेघनाद की डींग भरी बातों का उत्तर दिया—

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया ।
कार्याणां कर्मणां पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥ ८८, १३ ॥

अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ।
कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्धेयं तव कत्थनम् ॥ ८८, २८ ॥

युद्धकाल में विभीषण ने लक्ष्मण को प्रोत्साहित करते हुए कहा—

निमित्तान्युपपश्यामि यान्यस्मिन् रावणात्मजे ।
त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥ ८८, ४० ॥

युद्ध में छोड़े बाणकी वर्षा मेघवर्षा सी दिखायी पड़ती थी—

शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चन्तो भीमनिःस्वनम् ।
सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥ ८८, ६१ ॥

लगभग तीन दिनों तक अविराम युद्ध होता रहा, पर दोनों में से कोई भी श्रम का अनुभव नहीं करता था—

तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युद्धमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥ ८८, ७६ ॥

तब लक्ष्मण ने श्रीराम को स्मरण कर ऐन्द्रास्त्र का संधान किया और उस बाण के छूटते ही मेघनाद के मस्तक को उसके शरीर से अलग कर दिया—

धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥ ९० ६९ ॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥
ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ९०, ७० ॥

मेघनाद का मस्तक कटकर भूमि पर गिर गया—

तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले ॥ ९०, ७१ ॥

लक्ष्मण की विजय से वानर यूथपों की हर्षध्वनि और लक्ष्मण का अभिनन्दन—

ततोऽभ्यनन्दन् सहृष्टाः समरे हरियूथपाः ।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ९०, ८१ ॥

विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥ ९०, ९० ॥

रुधिर से क्लिन्न लक्ष्मण एवं विभीषण हनुमान् के सहारे अपने भाई के पास पहुँचे—

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥ ९१, १ ॥
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥ ९१, ३ ॥

लक्ष्मण द्वारा रावणि के शिरश्छेदन का समाचार श्रीराम को विभीषण ने सुनाया—

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥ ९१, ६ ॥

रावणि के बध से श्रीराम को ऐसा अनुभव हुआ कि रावण पर विजय मिल सी गई, इस प्रसंग में श्रीराम ने विभीषण और हनुमान् की भी सराहना की—

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं मया ॥ ९१, १३ ॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥ ९१, १४ ॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ।
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद् रणे ॥ ९१, १५ ॥

श्रीराम ने सुषेण द्वारा महौषधि का नस्तर दे लक्ष्मण को नीरोग किया—

एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥ ९१, २४ ॥

फिर रावण के सचिवों ने उसे उसके बेटे इन्द्रजित् का वध लक्ष्मण के हाथों होने का समाचार दिया—

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम् ।
आचचक्षुरविज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥ ९२, १ ॥
"युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः" ॥ ९२, २ ॥

इस समाचार से रावण मूर्च्छित हो गया—

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम्।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत्॥ ९२, ४॥

बहुत देर के वाद होश आने पर वह विलाप करने लगा—

उपलभ्य चिरात् संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः।
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः॥ ९२, ५॥

उसने सीता को ही बध कर डालने के लिये प्रस्थान किया—

स पुत्रवधसंतप्तः शूरः क्रोधवशं गतः।
समीक्ष्य रावणो बुद्धया वैदेह्यारोचयद् वधम्॥ ९२, २०॥
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः।
वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्॥ ९२, ३७॥
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः।
रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः॥ ९२, ३९॥

सुपार्श्व नामक मन्त्री ने उसे इस कर्म से रोका—

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुजः।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद् धर्ममपास्य च॥ ९२, ६३॥
वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद् वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर॥ ९२, ६४॥
शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम्॥ ९२, ६७॥

तव रावण उसकी बात मान गया—

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान् पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः॥९२, ६२॥

लड़ाई के मैदान में सुग्रीव द्वारा महोदर का बध हुआ—

महोदरं तं विनिपात्य भूमौ महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम्।
सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या सूर्यः स्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः॥९७, ३७॥

इसके पश्चात् रावण ने स्वय घोर युद्ध आरम्भ किया। इस युद्ध में पहले उसके दो योद्धाओं में महोदर तो सुग्रीवद्वारा और सुपार्श्व अङ्गदद्वारा मारे जा चुके थे—

स वीरो वज्रसंकाशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः।
संवर्तयत् सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः॥ ९८, २०॥
राक्षसस्य स्तनाभ्याशो मर्मज्ञो हृदयं प्रति।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत्॥ ९८, २१॥
तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे।
पफाल हृदयं चास्य स पपात हतो भुवि॥ ९८, २२॥

रावण के क्रोध का पारावार नहीं रहा। उसने वहाँ अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया—

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम्॥ १००, १॥
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः।
उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे॥ १००, २॥

श्रीराम उसके सभी अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से विफल कर दिया—

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः॥ १००, ५॥
ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः॥ १००, १२॥

इसी बीच लक्ष्मण का भी प्रहार हुआ और उन्होंने ध्वज तथा मनुष्यशीर्ष को काट गिराया—

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा॥ १००, १३॥
तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा॥ १००, १४॥

विभीषण ने उछल कर अपनी गदा से रावण के घोड़ों को मार डाला—

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान्।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः॥ १००, १७॥

क्रोध से रावण ने विभीषण पर शक्ति चलाई—

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तमशनीमिव।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥ १००, १९॥

लक्ष्मण ने उसे काट डाली—

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः।
अथोदतिष्ठत् संनादो वानराणां महारणे ॥ १००, २० ॥

रावण ने फिर भी अमोघशक्ति को विभीषण पर ही प्रयोग किया—

ततः सम्भावितत‍रां कालेनापि दुरासदाम्।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥ १००, २२ ॥

विभीषण को प्राणभय से बचाने के हेतु लक्ष्मण ने उस शक्ति को अपने पर ले लिया—

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम्।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥ १००, २४ ॥

चूंकि लक्ष्मण ने विभीषण को बचा लिया, इस लिए कुपित हो रावण ने लक्ष्मण को ही अपना लक्ष्य बनाया—

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १००, २७ ॥

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेव विभीषणः।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते" ॥ १००, २८ ॥

लक्ष्मण को शक्ति से आहत होने पर रावण हर्षोल्लास से गरजने लगा। श्रीराम ने शक्ति का मोचन स्वयं किया और समरांगण में ही उसे तोड़ डाली उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि, आज ही संसार देखेगा या तो यह पृथ्वी रामरहित या रावणरहित हो जायगी। अपने सैनिकोंको भी उन्होंने युद्ध करना छोड़, खड़े-खड़े राम रावण द्वन्द्वयुद्ध देखने का आदेश दिया—

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम्।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥ १००, ३० ॥

लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥ १००, ३१ ॥

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥ १००, ३३ ॥

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः।
भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥ १००, ३७ ॥

तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम्।

बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवन् विचकर्ष च ॥ १००, ४३ ॥

अस्मिन् मुहूर्ते नचिरात् सत्यं प्रतिश्रृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगत् द्रक्ष्यथ वानराः ॥ १००, ४८ ॥

दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः ।
यथा वा वैनतेयस्य दृष्टिं प्राप्तो भुजंगमः ॥ १००, ५३ ॥

सुखं पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः ।
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ॥ १००, ५४ ॥

अद्य पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे ।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ॥ १००, ५५ ॥

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ।
समागम्य सदा लोके यथा युद्धं प्रवर्तितम् ॥ १००, ५६ ॥

प्रतिज्ञानन्तर श्रीराम युद्ध में संलग्न हो रावण पर प्रहार करने लगे—

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ १००, ५७ ॥

राम-रावण के बाणों से अन्तरिक्ष तथा भूमि पट से गये । युद्धभूमि से रावण को विमुख होना पड़ा—

विच्छिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः ।
अन्तरीक्षात् प्रदीप्ताग्रनिपेतुर्धरणीतले ॥ १००, ६० ॥

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभिर्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः ।
भयात्प्रदुद्राव समेत्य रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः ॥ १००, ६२ ॥

उसके बाद श्रीराम भाई की दयनीय दशा देख करुण विलाप करने लगे—

अयं स समरश्लाघो भ्राता मे शुभलक्षणः ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥ १०१, ५ ॥

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः ।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥ १०१, ६ ॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ १०१, १३ ॥

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ १०१, १५ ॥

श्रीराम के विलाप सुन सुषेण जो चिकित्सा निदान के विशेषज्ञ थे, उन्होंने आश्वासन दिया कि लक्ष्मण जीवित हैं--

त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् ।
शोकसंजननीं चिन्तां तुल्यां बाणैश्चमूमुखे ॥ १०१, २४ ॥
नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।
न ह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम् ॥ १०१, २५ ॥
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम् ।

सुषेण ने हनुमान् जी से फिर महोदय पर्वत पर से (हिमालय से) महौषधियों को लाने कहा--

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥ १०१, ३० ॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम् ।
सजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय ॥ १०१, ३२ ॥

हनुमान् ने आज्ञा पालन किया और पहाड़ ही लाकर कहा—औषधि को मैं नहीं पहचानता था, अतः इस शिखर को उठाले आया हूँ--

औषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव ।
तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥ १०१, ४१ ॥

उस औषधि के प्रयोग से लक्ष्मण आरोग्य हो गये--

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः ॥ १०१, ४४ ॥

लक्ष्मण विशल्य हो गये—

सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ १०१, ४५ ॥

होश में आते ही अपने बड़े भाई से लक्ष्मण ने रावणबध की प्रतिज्ञा पूरी होने पर बल दिया--

तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १०१, ५१ ॥
न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः ।
लक्ष्मणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञां परिपालनम् ॥ १०१, ५२ ॥
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥ १०१, ५३ ॥

न जीवन् यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः॥ १०१, ५४॥

अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः।
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः॥ १०१, ५५॥

राम रावण के निर्णायक युद्ध भूमिस्थ और रथस्थ के बीच बराबर नहीं लगता था, इसलिये इन्द्र ने मातालि को अपना रथ श्रीराम के पास ले जानेको कहा। रथ लेकर मातलि ने श्रीरामके पास आकर कहा, काकुत्स्थ! इन्द्र ने आपके विजयार्थ अपना रथ भेजा है। आप मेरे सारथित्व में इस रथ द्वारा रावण पर विजय प्राप्त करें—

भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य स रक्षसः।
न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वकिंनराः॥ १०२, ५॥

रथेन मम भूयिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम्।
आहूय भूतलं यातः कुरु देवहितं महत्॥ १०२, ७॥

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते।
दत्तस्तव महासत्त्वं श्रीमञ्छत्रुनिबर्हण॥ १०२, १४॥

आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम्।
मया सारथिना देव महेन्द्र इव दानवान्॥ १०२, १६॥

ऐसा कहे जाने पर श्रीराम ने रथ की परिक्रमा करने के अनन्तर उस पर अद्भुत द्वैरथ युद्ध आरम्भ किया—

इत्युक्तः सम्परिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च।
आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन्॥ १०२, १७॥

तद्बभौ चाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम्।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः॥ १०२, १८॥

श्रीराम रावण के गन्धर्व अस्त्र को गान्धर्व से और देवास्त्र को दैवास्त्र से नष्ट करने लगे—

स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित्॥ १०२, १९॥

तत्पश्चात् श्रीराम ने अपने चार तीखे बाणों से रावण के चारों घोड़ों को पीछे हटने को विवश किया—

रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः।
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तान् हयान् प्रत्यपसर्पयत्॥ १०७, ३६॥

घोड़ों को हटते देख रावण ने श्रीराम पर अनेकों बाण छोड़े—

स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ।
मुमोच निशितान् बाणान् राघवाय दशाननः ॥ १०७, ३७ ॥

आहत होने पर भी श्रीराम को व्यथा की अनुभूति नहीं होती थी—

सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ।
जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् ॥ १०७, ३८ ॥

श्रीराम ने भी बीस बीस तीस तीस साठ साठ सौ सौ एवं सहस्र के सहस्र बाण एक साथ छोड़ने लगे—

विंशतिं त्रिंशतिं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ।
मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपुः ॥ १०७, ४१ ॥

फिर क्या था, रावण ने भी श्रीराम पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्रों का प्रहार किया--

रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ।
गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद् रणे ॥ १०७, ४३ ॥
तत् प्रवृत्तं पुनर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
गदानां मुसलानां च परिघानां च निःस्वनः ॥ १०७, ४४ ॥
शराणां पुङ्खवातैश्च क्षुभिताः सप्तसागराः ॥ १०७, ४५ ॥

इस युद्ध की भीषणता को देख देव-गन्धर्वादि सब चिन्ताकुल हो उठे, गोब्राह्मण एवं विश्व कल्याणार्थ श्रीराम विजयी हों यही देवताओं की रट थी। रात दिन में किसी भी समय युद्ध नहीं रुकता था, (अविराम चालू रहता था)—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥ १०७, ४८ ॥
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः ।
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १०७, ४९॥
नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम् ।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥ १०७, ६६ ॥

बाणों का उत्तर बाणों से देख मातली ने उन्हें स्मरण दिलाया कि वह अब ब्रह्मप्रदत्त बाण का संधान करें, चूंकि रावण का निर्धारित मृत्युकाल यही है--

अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥ १०८, १ ॥

विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥ १०८, २ ॥

श्रीराम ने ब्रह्मप्रदत अमोघ बाण को धनुष पर चढ़ा रावण को लक्ष्य बना संधान किया और उसका मस्तक छेदन कर वह लौटकर वाण श्रीराम के तूणी में प्रवेश कर गया—

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ १०७, ३ ॥

अस्मिन् संधीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे।
सर्वभूतानि संत्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥ १०८, १५ ॥

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः।
कृतकर्मा निभृतवत् सतूणीं पुनराविशत् ॥ १०८ २० ॥

श्रीराम ने रावण का बध कर सुग्रीव अङ्गद एवं विभीषण प्रभृत को सकाम बनाया और अपने आप भी प्रसन्न हुए--

ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च विभीषणम्।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥ १०८, ३१ ॥

विलाप करती हुई रावण की स्त्रियों की अभिव्यक्ति—

नैवार्थेन च कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता ॥ ११०, २१ ॥

विलाप करती मन्दोदरी को श्रीराम में पूर्णब्रह्म श्रीनारायण विष्णु का भास—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥ १११, ११ ॥

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १११, १२ ॥

मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया।
स राक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् ॥ १११, १४ ॥

रावण सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों को स्मरण करती हुई मन्दोदरी विलाप करने लगी—

शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥ १११, २६ ॥

सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः।
अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुद्धयसे ॥ १११, २७ ॥

न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली।
मयाधिका वा तुल्या वा तत्तु मोहान्न बुद्धचसे ॥ १११, २८ ॥

सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः।
तव तद्वदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥ १११, २९ ॥

सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥ १११, ३० ॥

अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे।
हा! पश्चिमा मे सम्प्राप्ता दशा वधव्यदायिनी ॥ १११,३० ॥

या मयाऽऽसीन्न सम्बुद्धा कदाचिदपि मन्दया ॥१११,३८ ॥

मन्दोदरी की उक्ति—'पतिव्रताओं के आँसू व्यर्थ नहीं जाते--

प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप।
पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रुणि भूतले ॥ १११, ६६ ॥

'मारीच, कुम्भकर्ण एवं मालवत की बातों के निरादर का फल मृत्यु हुई--

मारीच-कुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा।
न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ॥ १११, ७८ ॥

श्रीराम ने बिभीषण को रावण का दाह संस्कार राजकीय ढंग से कर स्त्रियो को सान्त्वना देने को कहा—

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह।
"संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् ॥ १११, ९१ ॥

विभीषण रावण जैसे दुराचारी का (यद्यपि वह बड़ा भाई था) दाह संस्कार करना नहीं चाहता था—

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा।
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम् ॥ १११, ९३ ॥
भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वहिते रतः।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ॥ १११, ९४ ॥

इसपर श्रीराम ने उसे समझाया कि उसके मरने से हमारे बैरियों का भी मरण हो गया, अब जैसा तेरा भाई है वैसा ही मेरा भी—

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ १११, १०० ॥

रावण के दाहसंस्कार के बाद श्रीराम ने द्रुतगामी वानरों से समुद्र का जल मंगवा कर लक्ष्मण द्वारा विभीषण का अभिषेक कराया, इससे सब प्रसन्न हुए—

अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः।
आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद् वानरोत्तमा॥ ११२, १३॥

ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम्॥ ११२, १४॥

दृष्ट्वाऽभिषेकं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
राघवः परमां प्रीतिं जगाम सह लक्ष्मणम्॥ ११२, १८॥

विभीषण ने कुछ उपहार लाकर सामने रक्खा और श्रीराम ने उसे रखवा लिया—

कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम्।
प्रतिजग्राह तत् सर्वं तस्यैव प्रतिकाम्यया॥ ११२, २२॥

फिर हनुमान् को विभीषण से पूछ कर सीता को कुशल कहने को भेजा—

अनुज्ञाय महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्॥ ११२, २४॥

श्रीराम की आज्ञा से हनुमान् जी ने सीता के पास जाकर (रावण बध लङ्का विजय आदि) सुखका समाचार सुनाया—

प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये।
तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे॥ ११३, ९॥
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता॥ ११३, १०॥

इस शुभ समाचार को सुनकर सीता जी को निरतिशय आनन्द हुआ। इसके उपहार में हनुमान् जी को देने के लिये उनके पास कोई उपयुक्त वस्तु नज़र में आई ही नहीं—

नहि पश्यामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत् सुखम्॥ ११३, १९॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम्॥ ११३, २०॥

हनुमान् जी तो आप्तकाम थे। उन्होंने कहा—माता मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। श्रीराम विजय पाकर सुखी हैं, इससे बढ़ कर मुझे और चाहिये ही क्या—

भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि।
स्निग्धमेवं विधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते॥ ११३, २२॥

तवैतद् वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च।
रत्नौघाद् विविधाच्चापि देव राज्याद् विशिष्यते ॥ ११३, २३ ॥

अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ॥ ११३, २४ ॥

हनुमान् के औदार्यगुण से परमप्रसन्न हो सीताजीने उनके अन्यान्य विशिष्ट गुणों का भी वर्णन किया—

श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥ ११३, २७ ॥

तेजः क्षमा धृतिःस्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ॥ ११३, २८ ॥

फिर हनुमान् ने श्रीसीता जी से उन राक्षसियों को दण्डित करने की आज्ञा मांगी, जिन्होंने (आपको) पहले कष्ट पहुँचाया था—

राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत् प्रयच्छ मे।
मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च विशालैश्चैव बाहुभिः ॥ ११३, ३४ ॥

जङ्घाजानुप्रहारैश्च दन्तानां चैव पीडनैः।
कर्तनैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तदा ॥ ११३, ३५ ॥
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः।
एवं प्रहारैर्बहुभिः सम्प्रहार्य यशस्विनि ॥ ११३, ३६ ॥
घातये तीव्ररूपाभिर्याभिस्त्वं तर्जिता पुरा।

महारानी सीताजी ने उन्हें ऐसा करने को नहीं कहा चूंकि राक्षसिंयं परवशा दासी थीं। इस सम्बन्ध में कई नैतिक एवं धार्मिक वचन भी उन्हों ने सुनायी—

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ॥ ११३, ३८ ॥
विधेयानां च दासीनां कः कुर्याद् वानरोत्तम।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥ ११३, ३९ ॥
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥ ११३, ४० ॥

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥ ११३, ४४ ॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ ११३, ४५ ॥

लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ ११३, ४६ ॥

सीता की बातों से संतुष्ट हो हनुमान् जी ने उन से कहा—"आप श्रीराम जी की ही तो योग्य पत्नी हैं, फिर ऐसा क्यों न करेंगी" अब श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दीजिए--

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता ।
प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥ ११३, ४८ ॥

सीता जी ने श्रीराम के दर्शन की इच्छा प्रकट की—

साऽब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ।

हनुमान् ने कहा--आज ही आप श्रीराम के मुखकमल देखेंगी"—

पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् ।
स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥ ११३, ५१ ॥

हनुमान् से समाचार सुन श्रीराम ने विभीषण को सीता को लाने का आदेश दिया और जब वे सीता जी को राजकीय ठाट से श्री राम के समक्ष ला रहे थे, किन्तु ऋक्ष बानर उनको देखने के लिये उत्सुक थे और विभीषण के भृत्यादि उन्हें रोकते थे। तब श्रीराम ने विभीषण से कहा—विभीषण पालकी से सीताजी को उतार इस प्रकार मेरे पास लाओ, जिसमें देखनेके उत्सुक लोग उन्हें देख लें—

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥ ११४, २६ ॥
न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥ ११४, २७ ॥
व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः ॥ ११४, २८ ॥
सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता ।
दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥ ११४, २९ ॥
विसृज्य शिविकां तस्मात् पद्भ्यामेवासर्पतु ।
समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः ॥ ११४, ३० ॥

उनकी बातों से लजाई हुई भीसीता जी विभीषण के आगे आगे पैदल ही श्रीराम के पास आई—

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत ॥ ११४, ३४ ॥

विस्मया च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥ ११४, ३५ ॥

अपने बगल में खड़ी सीता को उनके चरित्रविषयक अपने हृद्गत भावों का व्यक्त कर श्रीराम ने कहा--"मैं ने अपने शत्रु को बन्धु-बान्धवों सहित मार कर तुम्हारा उद्धार कर अपना कलङ्क धो दिया। तुम अब स्वतन्त्र हो, तुम्हारे प्रति मेरी कुछ भी आसक्ति नहीं है, तुम जहाँ चाहो जा सकती हो। मुझ जैसे कुलीन व्यक्ति के लिये दूसरे दुराचारी व्यक्ति के घर में रही हुई स्त्री को ग्रहण करना अनुचित होगा—

तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ११५, १ ॥

सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥ ११५, ६ ॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्गं च परिमार्जिता ॥ ११५, १६ ॥

प्राप्तचारित्रसंदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥ ११५, १७ ॥

तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥ ११५, १८ ॥

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा ॥ ११५, १९ ॥

नहि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम् ॥ ११५, २४ ॥

श्रीराम की ऐसी कठोर बात सुनकर सीता ने उन से दृढतापूर्वक उत्तर दिया और युक्तियुक्त प्रमाण से श्रीराम को फटकारा—

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ११६, ५ ॥

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातित्वं परिशङ्कसे ।
परित्यजैनां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता ॥ ११६, ७ ॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ११६, ८ ॥

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी ॥ ११६, ९ ॥
सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद।
यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥ ११६, १० ॥
प्रेषितस्ते महावीरो हनुमानवलोककः।
लङ्कास्थाहं त्वया राजन् किं तदा न विसर्जिता ॥ ११६, ११ ॥
त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ ११६, १४ ॥
अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्।
मम वृत्तं च वृतज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥ ११६ १५ ॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ ११६, १६ ॥

श्रीराम को मुहँ तोड़ उत्तर दे सीता जी ने लक्ष्मण को चिता तैयार करने को कहा, क्योंकि श्रीराम से परित्यक्त हो वह जीना नहीं चाहती थी—

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११६, १८ ॥
अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ ११६, १९ ॥

श्रीराम के भाव को समझ लक्ष्मण ने चिता की तैयारी की--

स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥ ११६, २१ ॥

सीता जी ने अग्निदेव से अपने देव ब्राह्मणों को प्रणाम कर शुद्ध चरित्र के लिए निवेदन किया—

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ ११६, २४ ॥
"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ ११६, २५ ॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावक ॥ ११६, २६ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ ११६, २७ ॥

आदित्यो भगवान् वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा संध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ।
यथान्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ॥ ११६, २८ ॥

निःशङ्कभाव से अग्नि की परिक्रमा कर सबों के सामने हो वह जलती चिता में प्रवेश कर गई--

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशंकेनान्तरात्मना ॥ ११६ २९ ॥

उस समय वानर एवं राक्षसगण हाहाकार मचाने लगे---

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हा हेति विपुलः स्वनः ।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ ११२, ३६ ॥

उस हाहाकार को सुन दुःखी श्रीराम कुछ काल तक सोचते रहे—

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैवं वदतां गिरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥ ११७, १ ॥

इसके बाद ही विमान द्वारा ब्रह्मा, महादेव चारों लोक पालादि का श्रीराम के निकट लङ्का में आगमन हुआ—

ततो वैश्रवणो राजा यमश्च पितृभिः सह ।
सहस्राक्षश्च देवेशो वरुणश्च जलेश्वरः ॥ ११७, २ ॥
षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ११७, ३ ॥
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसंनिभैः ।
आगम्य नगरीं लंकामभिजग्मुश्च राघवम् ॥ ११७, ४ ॥

इन सबों ने हाथ जोड़े खड़े हुए श्रीराम को देखा—

ततः सहस्ताभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान् ।
अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥ ११७, ५ ॥

श्रीराम से सीताजी के अग्नि प्रवेश के प्रति उनको उपेक्षा नीति न बरतने तथा आत्मबोध के लिये भी लोकपालों का प्रश्न--

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ११७, ६ ॥

ऋतधामावसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः।
त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः॥ ११७, ७॥
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः।
अश्विनौ चापि कर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ॥ ११७, ८॥
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परंतप।
उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा॥ ११७, ९॥

लोकपालों से श्रीराम का उत्तर, "मैं तो केवल अपने को एक मात्र मनुष्य-दशरथात्मज समझता हूँ, आपलोग ही बतायें कि मैं क्या हूँ"

इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः।
अब्रवीत् त्रिदशश्रेष्ठान् रामो धर्मभृतां वरः॥ ११७, १०॥
"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे॥ ११७, ११॥

इस पर ब्रह्माजी ने श्रीराम के वास्तविकरूप और मानवरूप धारण करने का अभिप्राय को बताते हुए भक्तों से इस स्तोत्र को नित्य प्रति पढ़ने को कहा—

इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्माब्रह्म विदां वरः।
अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यपराक्रम॥ ११७, १२॥
भवान् नारायणो देवः श्रीमाँश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥ ११७, १३॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥ ११७, १४॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥ ११७, १५॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः॥ ११७, १६॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः॥ ११७, १७॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः॥ ११७, १८॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः॥ ११७, १९॥

प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति ।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ ११७, २० ॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च ।
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रधृक् ॥ ११७, २१ ॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगे ॥ ११७, २२ ॥
त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ११७, २३ ॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो ।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥ ११७, २४ ॥
संस्कारास्त्वभवन् वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥ ११७, २५ ॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ ११७, २५ ॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ ११७, १७ ॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर ॥ ११७, २८ ॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं देव वीर्यं ते न तेऽमोघाः पराक्रमाः ॥ ११७, २९ ॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥ ११७, ३० ॥
ये त्वां देव ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ११७, ३१ ॥
इममार्षं स्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ११७, ३२ ॥

ब्रह्मा द्वारा श्रीराम के स्वरूप बताने के पश्चात् अग्निदेव ने पापरहित, विशुद्ध सीता को लाकर श्रीराम को दे दिया। उनका स्वरूप एवं वसनाभरण पूर्ववत् था, पुष्पमाला में भी कोई म्लानता नहीं आयी थी—

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ।
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः ॥ ११८, १ ॥

तरुणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ११८, ३ ॥

अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम् ।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥ ११८, ४ ॥

अग्निदेव ने सीता को पूर्णरूप से पापरहित बताया—

अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ ११८, ५ ॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥ ११८, १० ॥

श्रीराम ने अग्निदेव से कहा—देव ! मैं स्वयं सीता को विशुद्धा जानता था किन्तु तीनों लोकों को उसकी विशुद्धता की प्रतीति दिलाने के हेतु ही अग्निप्रवेश में उपेक्षा दिखायी थी—

अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ ११८, १५ ॥

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रय ।
उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥ ११८, १७ ॥

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥ ११८, २० ॥

रावणबध के लिए शङ्करजी ने श्रीराम को बधाई दी और इन्द्रादि के साथ ही विमानस्थ राजा दशरथ के आने का भी सामाचार दिया—

दिष्ट्या सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः ।
अपवृत्तं त्वया संख्ये राम रावणजं भयम् ॥ ११९, ३ ॥

एष राजा-दशरथो विमानस्थः पिता तव ।
काकुत्स्थ ! मानुषे लोके गुरुस्तव महायशाः ॥ ११९, ७ ॥

उनकी बात सुनकर शीघ्र ही श्रीराम और लक्ष्मण ने जाकर उन्हें करबद्ध प्रणाम किये—

महादेववचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः ।
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः ॥ ११९, ९ ॥

दशरथजी ने श्रीराम को अङ्क में बैठा कर बातें कीं—

आरोप्याङ्के महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य ततो वाक्यं समाददे ॥ ११९, १२ ॥

अपना उद्धार का कारण उन्होंने श्री राम को ही बताया। इष्टसाधन के बाद उन्होंने अयोध्या जाकर अपने भाइयों के साथ चिरकाल तक राज्य-शासन करने का आदेश दिया—

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा कहोलो ब्राह्मणो यथा॥ ११९, १७॥

इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः।
वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम्॥ ११९, १८॥

निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा पूरिता त्वया।
रावणं च रणे हत्वा देवताः परितोषिताः॥ ११९, २३॥

कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि॥ ११९, २४॥

श्रीराम ने राजा से पुत्रसहित कैकेयी को त्याग की बात जो कही थी, उसे क्षमा देने का वर माँगा—

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
"कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च"॥ ११९, २५॥
'सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो"॥ ११९, २६॥

राजाने कैकेयी को क्षमा दे दी,—पुनः राजा ने लक्ष्मण को छाती लगाया अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्मरूप श्रीराम की सेवा के लिये उनकी सराहना की—

'तथेति' स महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम्।
लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह॥ ११९, २७॥

रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन।
रामः सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सदा॥ ११९, ३०॥

एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम्॥ ११९, ३१॥
एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः॥ ११९, ३२॥
अवाप्तधर्माचरण यशश्च विपुलं त्वया।
एवं शुश्रूषताऽव्यग्र वैदेह्या सह सीतया॥ ११९, ३३॥

अन्त में अपनी स्नुषा सीता को भी आशीर्वचन के बाद मधुर वाणी में श्रीराम की उपेक्षा के लिये बुरा नहीं मानने को कहा। सब कुछ उसकी कीर्त्तिवर्द्धन के लिए ही अग्नि की परीक्षा ली गयी—

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं राजा स्नुषं बद्धाञ्जलिं स्थिताम्।
पुत्रीत्याभाष्य मधुरं शनैरेनामुवाच ह ॥ ११९, ३४ ॥

कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति।
रामेणेदं विशुद्ध्यर्थं कृतं वै त्वद्धितैषिणा ॥ ११९, ३५ ॥

सुदुष्करमिदं पुत्रि तव चारित्रलक्षणम्।
कृतं यत् तेऽन्यनारीणां यशो ह्यभिभविष्यति ॥ ११९, ३६ ॥

न त्वं कामं समाधेया भर्तृशुश्रूषणं प्रति।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥ ११९, ३७ ॥

अन्त में सबों को आशीर्वाद दे राजा ने इन्द्र लोक का प्रस्थान किया—

इति प्रति समादिश्य पुत्रौ सीतां च राघवः।
इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः ॥ ११९, ३८ ॥

इन्द्रद्वारा याचना के लिये आग्रह करने पर श्रीराम ने अपने मृत योद्धाओं को जीवित कर देने तथा जहाँ वे वानर भालू रहें वहाँ सदैव फल फूल से युक्त पड़े रहें, ऐसा वरदान माँगा—

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि ते विबुधेश्वर।
वक्ष्यामि कुरु मे सत्यं वचनं वदतां वर ॥ १२०, ४ ॥

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥ १२०, ५ ॥

नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान्।
गोलाङ्गूलांस्तथर्क्षांश्च द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ १२०, ९ ॥

अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥ १२०, १० ॥

इन्द्रने इसे बड़ा वरदान बताया, किन्तु वे वचनबद्ध होने के कारण वैसा वरदान दे ही दिया—

महानयं वरस्तात यस्त्वयोक्तो रघूत्तम।
द्विर्मया नोक्तपूर्वं च तस्मादेतद् भविष्यति ॥ १२०, ११ ॥

विभीषण से श्रीराम ने सुग्रीवादि प्रमुख यूथपों को स्नानादि के बाद भोजनादि के लिये निमन्त्रित करने को कहा--

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच बिभीषणम्।
"हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्व स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥ १२१, ४ ॥

विभीषण ने श्रीराम को टिकने का आग्रह किया किन्तु अयोध्या का मार्ग दुर्गम औरलम्बा था और वे अपने भाई के लिये व्याकुल हो रहे थे अतः लंका से शीघ्र जाना ही चाहा—

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥ १२१, ५ ॥

एतत् पश्य पथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम्।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ १२१, ७ ॥

विभीषण ने उन्हें पुष्पक विमान द्वारा एक ही दिन में अयोध्या में पहुँचा देने का वचन दिया—

अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मजः ॥ १२१, ८ ॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम्।

मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥ १२१, ९ ॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥ १२१, १० ॥

विभीषण से श्रीराम ने कहा, बन्धुवर ! आप ने अपने साचिव्यादि से मेरा यथेष्ट सम्मान किया, अब आप शीघ्र विमान उपस्थित कीजिए—

पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥ १२१, १७ ॥
उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥ १२१, २२ ॥

विभीषण ने विमान उपस्थित करा दिया—

एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥ १२१, २३ ॥

विदा करते समय वानर यूथपों ने श्रीरामाभिषेक देखने की इच्छा प्रकट की, तब श्रीराम ने सहर्ष उन्हें विमान पर चढ़ने की आज्ञा दी, उन्होंने शीघ्र ही आज्ञा पालन किया। बिमान चल पड़ा—

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौशल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान् नृपसत्तम ॥ १२२, २० ॥

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण॥ १२२, २३॥

ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः।
यथासुखमसम्बाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन्॥१२२, २७॥

रास्ते में श्रीराम सीताजी को उन सब सुन्दर स्थानों को दिखाते गये, जहां जहां पहले कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटी थीं—

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः॥ १२३, १६॥

एतत् कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥ १२३, १९॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥ १२३, २०॥

एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः॥ १२३, २१॥

विमान का किष्किन्धा पहुँचना—

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः॥ १२३, २२॥

'सुग्रीव तथा अन्य वानर पत्नियों के साथ ले अयोध्या जाने का श्रीराम से सीता का अनुरोध—

सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप।
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह॥ १२३, २५॥

श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव ने ताराप्रभृति से शीघ्र विमानारुढ होने को कहा—

त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानर योषितः।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः॥ १२३, ३२॥

फिर तारा की आज्ञा से सभी वानरनारियाँ सीतादर्शन के लिये विमान पर चढ़ीं—

तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः।
अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादर्शनकाङ्क्षया॥ १२३, ३६॥

विमान पर श्रीराम ने सीता से कहा कि, इस स्थान पर अत्रिमुनि एवं अनसूया जी को तुमने देखा था—

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सर्यवैश्वानरोपमः ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥ १२३, ५० ॥

चौदह वर्ष वीतजाने पर श्रीराम ने भरद्वाज जी के आश्रम में पहुँच उनका चरणवन्दन किया—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥ १२४, १ ॥

राजधानी के कुशल पूछने पर श्री भरद्वाज मुनि ने कहा–सभी सकुशल हैं—

आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥ १२४, ४ ॥

भरद्वाज ऋषि से श्रीराम ने वर माँगा, "अयोध्या जाते समय रास्ते में सभी वृक्ष असमय में भी मधुर फूलों से युक्त हो जायं, ताकि वन्दरों को सुख से प्राप्त हों"—

अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ।
फलान्यमृतगन्धीनि बहूनि विविधानि च ॥ १२४, १९ ॥
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः ।

मुनि ने प्रसन्न हो, 'तथास्तु' कहा—

'तथेति' च प्रतिज्ञाते वचनात् समनन्तरम् ॥ १२४, २० ॥

श्रीराम की आज्ञा से हनुमान् ने जाकर भरत जी को रामागमन की सूचन दी । भरत ने हर्षोत्फुल हो इस प्रकार कहा—

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् ।
"एति जीवन्तमानन्दो नरं बर्षशतादपि" ॥ १२६, २ ॥

इसी बीच विमान वहाँ पहुँच गया और विमान के पास जाकर भरत ने श्रीराम की वन्दना की । बाद श्रीराम से प्रेरित वह विमान पृथिवी पर उतर पड़ा—

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ १२७, ३८ ॥
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥ १२७, ३९ ॥

श्रीरामागमन से सभी उल्लसित थे। भरत ने पादुकाओं को श्रीराम के पैरों में पहनाते हुए कहा, 'ये ही आप के समस्त राज्य हैं, जो मेरे पास न्यास रूप में था, उसे लौटा रहा हूँ। आज मेरा जीवन कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपको पुनः अयोध्या में आया हुआ देखता हूँ—

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥ १२७, ५४॥

अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।
एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥ १२७, ५५॥

अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथाः।
यत् त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥ ११७, ५५॥

श्रीराम ने पुष्पकविमान को कुबेर की सेवा में जाने की आज्ञा दी—

अब्रवीत् तु तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम्।
"वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम्"॥ १२७, ६१॥

तब भरत जी ने दोनों हाथ जोड़ कर श्रीराम जी से विनीतभाव हो राज्य स्वीकार करने को कहा और अपने को उस भार को वहन करने में अयोग्य बताया। उस समय भरत की महत्ता, उदारता, भ्रातृ-भक्ति एव वाक्यपटुता अद्वितीय थी—

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १२८, १॥

"पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम॥ १२८, २॥

धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण बलीयसा।
किशोरवद्गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे॥ १२८, ३॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरम्।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम्॥ १२८, ४॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम॥ १२८, ५॥

भरत ने कहा, 'प्रभो! आप पर सबों की बड़ी आशा लगी थी, उसे अब सफल करें'—

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने।
महानपि दुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान्॥ १२८, ६॥

शीर्यते पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन् ।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोपितः ॥ १२८, ७ ॥

एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि ।
यद्यस्मान् मनुजेन्द्र त्वं भर्ता भृत्यान् न शाधि हि ॥ १२८, ८ ॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥ १२८, ९ ॥

फिर श्रीराम ने सीता को सजे सजाये रथ पर चढ़ाकर राजकीय समारोहसे नगर भ्रमण कराया भरत ने स्वयं सारथी का काम किया । नौ हजार तो केवल हाथी वानर तो कामरूप थे । वे सबके सब मानवरूप में उस महोत्सव में सम्मलित हुए थे, बड़ी धूम-धाम की तैयारी थी । मन्त्री, पुरोहित, ऋत्विक् नागरिक सबके सब सजे धजे थे—

अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः परपुरंजयः ॥ १२८, १० ॥

सर्वाभरणयुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।
सुग्रीबपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥ १२८, २२ ॥

अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च ।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ १२८, २३ ॥

अशोको विजयश्चैव सिद्धार्थश्च समाहितः ।
मन्त्रयन् रामवृद्ध्यर्थमृद्ध्यर्थं नगरस्य च ॥ १२८, २४ ॥

सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद् यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥ १२८, २५ ॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे संदिश्य च पुरोहितः ।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥ १२८, २६ ॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ १२८, २७ ॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥ १२८, २८ ॥

ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥ १२८, ३१ ॥

नवनागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥ १२८, ३२ ॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्याः सहद्विजाः।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः॥ १२८, ३८॥

बातचीत के दौड़ में वानरों की करतूती और राक्षसों की प्रबलता की कहानी सुन नगरवासियों को आश्चर्य होता था, अयोध्या में नागरिकों ने घर-घर में पताके लटका दिये थे—

श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः।
वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद् बलम्॥ १२८, ४०॥

विभीषणस्य संयोगमाचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम्।
ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे॥ १२८, ४२॥

राजभवन में प्रवेश कर माताओं के अभिवादनानन्तर श्रीराम ने भरत से कोमल वाणी में कहा—"भरत! मेरे भवन में सुग्रीव को रहने का प्रबन्ध करो"—

अथाब्रवीद् राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम्।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः॥ १२८, ४३॥

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च॥ १२८, ४४॥

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय॥ १२८, ४५॥

मन्त्रियों और पुरोहितों की अनुमति से शत्रुघ्न ने समुद्रादि से श्रीराम के अभिषेकार्थ जल मंगवाये। श्रीराम को सीतासहित रत्नजटित सिंहासन पर बिठाया गया—

ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम्।
अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह॥ १२८, ५७॥
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत्॥ १२८, ५८॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत्॥ १२८, ५९॥

वसिष्ठादि मुनियों द्वारा श्रीराम का अभिषेक—

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा॥ १२८, ६०॥

अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा॥ १२८, ६१॥

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तदा ।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टैः सनैगमैः ॥ १२८, ६२ ॥

सर्वौषधिरसैश्चापि दैवतैर्नभसि स्थितैः ।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वदेवैश्च संगतैः ॥ १२८, ६३ ॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम् ।
अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम् ॥ १२८, ६४ ॥

तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद् येनाभिषेचिताः ।
सभायां हेमक्लृप्तायां शोभितायां महाधनैः ॥ १२८, ६५ ॥

रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः ।
नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि ॥ १२८, ६६ ॥

किरीटेन ततः पश्चात् वसिष्ठेन महात्मना ।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥ १२८, ६७ ॥

अभिषेकानन्तर श्रीराम ने सबों को यथोचित उपहार बाँटे । जानकी जी को एक उत्तमोत्तम हार दिया था । उसे उतारकर उन्होंने हाथ में रख कभी बानर-समुदाय को ओर कभी श्रीराम की ओर देखती रही । भावग्राही श्रीराम ने सीता से कहा—"जिसे तुम इसे देना चाहती हो, दे दो । फिर क्या था । सीता ने हनुमान् जी को उसे दे दिया, जिस हनुमान् में सारे दिव्यगुण सदैव विराजमान थे—

अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे ।
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥ १२८, ७९ ॥

अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ।
तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ॥ १२८, ८० ॥

'प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि" ।
अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥ १२८, ८१ ॥

तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥ १२८, ८२ ॥

उस हार के धारण से हनुमान् जी की शोभा बढ़ गई—

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥ १२८, ८३ ॥

सभी बानरों को यथायोग्य वस्त्राभूषण दिये गये—

सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥ १२८, ८४ ॥

सभी वानर भालू एवं राक्षसगण श्रीराम से पुरस्कृत एवं सम्मानित हो अपने अपने घर जाने लगे—

विभीषणोऽथ सुग्रीवं हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ १२८, ८५॥

यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेवं यथागतम्॥ १२८, ८६॥

इधर श्रीराम अखिलराज्य पा उसे शासन करने लगे। लक्ष्मण के अस्वीकार करने पर श्रीराम ने भरत को युवराज पदपर अभिषिक्त किया—

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा।
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः॥ १२८, ९१॥

"आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृताया तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व" ।१२८, ९२।

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद् भरतं महात्मा।१२८, ९३।

अपने राज्यकाल में श्रीराम ने अनेकों अश्वमेध, पुण्डरीकाक्ष यज्ञ किये और उनकी प्रजा सर्वांगीण सुखी थी। किसी प्रकार किसी को न तो कष्ट था और न अभाव—

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत्।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत् पार्थिवात्मजः॥ १२८, ९४॥

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान भूरिदक्षिणान्॥ १२८, ९५॥

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥ १२८, ९८॥

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥ १२८, ९९॥

श्रीराम ने अपने भाइयों के साथ धर्म और नीतिपूर्वक ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया। उनके राज्यकाल में प्रजा को किसी प्रकार का दुःख अथवा अभाव नहीं था—

सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्॥ १२८, १००॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगद्भूत् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १२८, १०२ ॥
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥ १२८, १०३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥ १२८, १०४ ॥
आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १२८, १०५ ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥ १२८, १०६ ॥

❀ इत्यार्षे संक्षिप्ते श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे लङ्काकाण्डम् ❀

उत्तरकाण्डम्

श्रीराम-अगस्त्य संवाद में अगस्त्यद्वारा नारायणके अवतरित होने का निरूपण—

नष्टधर्मव्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः।
उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः॥ ८, २७॥

सुमाली ने अपनी बेटी कैकेयी से कहा था—

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके॥ ९, ५॥

घोर तपस्या के बाद रावण ने ब्रह्मा से बर मांगा। बाद ब्रह्माजी उसे बर देने को आये—

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम्।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत॥ १०, १९॥

ब्रह्मा ने उससे कहा "ऐसा ही होगा"। फिर यह भी कहा कि तुमने जो पहले मस्तकों को काट काट कर होम किया है, वे फिर हो जायंगे और तुम अपनी इच्छा से जब जिस रूप में बनना चाहोगे, उस रूप को प्राप्त हो जाओगे—

भविष्यत्येवमेतत् ते वचो राक्षसपुङ्गव।
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः॥ १०, २२॥

शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम।
हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयाऽनघ॥ १०, २३॥
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस।
वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम्॥ १०, २४॥

छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद् यथेप्सितम्।

विभीषण का ब्रह्माजी से बरदान माँगना और ब्रह्माजी का बर प्रदान करना तथा उसे अमरत्व भी मिलना—

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च॥ १०, ३१॥
सा सा भवतु धर्मिष्ठ तं तं धर्मं च पालये।
एष मे परमोदारो वरः परमको मतः॥ १०, ३२॥
नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्।
पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह॥ १०, ३३॥

धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति ।
यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥ १०, ३४ ॥
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ॥ १०, ३३ ॥

कुम्भकर्ण को वर देने के पूर्व ब्रह्मा ने सरस्वती को स्मरण किया और उनसे कुम्भकर्ण की जिह्वा पर सवार होने को कहा, फिर कुम्भकर्ण से वरयाचना के लिये कहा—

प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥ १०, ४२ ॥
"वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता" ।
तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ १०, ४३ ॥
"कुम्भकर्ण महाबाहो वर वरय यो मतः" ।

कुम्भकर्ण ने दीर्घनिद्रा माँगी—

स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ।
एवमस्त्विति त चोक्त्वा प्रायाद् ब्रह्मा सुरैः समम् ॥ १०, ४५ ॥

इस प्रकार सभी भाई वर पाकर श्लेष्मातक वन में सुख से रहने लगे—

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ।
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम् ॥ १०, ४९ ॥

रावण ने प्रहस्तद्वारा कुबेर को लङ्का छोड़ कर अन्यत्र जाने को कहा। पश्चात् विश्रवा की राय से कुबेर उसे छोड़ कैलास को चले गये—

श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ११, ३९ ॥
वरप्रदानसम्मूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः ।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥ ११, ४० ॥
तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् ।
निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः ॥ ११, ४१ ॥

फिर प्रहस्त ने रावण को सूचित किया कि कुबेर छोड़ चले गये अब वह खाली है, हमलोगों के साथ अब वहीं जा अपने धर्मों का पालन करते हुए निवास करो—

प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत् ।
प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ॥ ११, ४७ ॥
शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः ।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय ॥ ११, ४८ ॥

मयनात्मक दैत्य ने अपनी पुत्री (हेमानामक अप्सरा से उत्पन्न) मन्दोदरी के साथ आकर रावण से उसे पत्नीरूप में स्वीकार करने को कहा और रावण ने ऐसा ही किया—

भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम् ।
कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ १२, ११ ॥

कन्या हि द्वे कुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ।
पुत्रद्वयं समाप्यस्यां भार्यायां सम्बभूव ह ॥ १२, १२ ॥

मायावी सुप्रभस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः ॥ १२, १२ ॥

इयं ममात्मजा राजन् हेमा याप्सरसा धृता ॥ १२, १८ ॥
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।

रावण ने मन्दोदरी से व्याह कर लिया—

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ॥ १२, १९ ॥
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणिसंग्रहम् ।

रावण ने विरोचन की पुत्री वज्रज्वाला से कुम्भकर्ण का विवाह करा दिया—

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ।
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः सः प्रकल्पयत् ॥ १२, २३ ॥

गन्धर्वराज शैलूष की पुत्री सरमा से विभीषण का विवाह हुआ—

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ।
सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः ॥ १२, २४ ॥

रावण को दूतद्वारा कुबेर का सत्परामर्श—

निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप ।
सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ॥ १३, २० ॥

रावण को नन्दीश्वर का शाप—

यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन ।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान् ॥ १६, १६ ॥

तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः ।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १६, १७ ॥

रावण को ब्रह्मर्षि कन्या वेदवती का शाप—

धर्षितायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते ।
रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम् ॥ १७, ३० ॥

यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ॥ १७, ३१ ॥

यदि त्वस्ति मया किंचित् कृतं दत्तं हुतं तथा ।
तस्मात् त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ॥ १७, ३२ ॥

रावण को ऐक्ष्वाक अनरण्य का घोर शाप—

इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद् वचो वक्ष्यामि राक्षस ।
यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ॥
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥ १९, २९ ॥

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान् हरिष्यति ॥ १९, ३० ॥

नरसंहार से विरत हो यमपर विजय प्राप्त करने के लिये नारदजी का रावण को परामर्श । मानव की दीनता का विशद वर्णन कर नारदजी ने रावण के ध्यान को यमविजय की ओर मोड़ना—

नित्यं श्रेयसि सम्मूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ।
हन्यात् कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ २०, ९ ॥

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।
विषादशोकसम्मूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ २०, ११ ॥

पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।
मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ २०, १२ ॥

क्वचिद् वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।
रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥ २०, १३ ॥

मातापितृसुतस्नेहभार्याबन्धुमनोरमैः ।
मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥ २०, १४ ॥

तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।
जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥ २०, १५ ॥

अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।
तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरंजय ॥ २०, १६ ॥

तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः ।

नारद जी रावण से इस प्रकार कह फिर द्रुतगति से यमलोक जा पहुँचे और

रावण की चढ़ाई की सूचना वहां पहुँचा दी । इसी भीतर रावण का विमान भी दृष्टिगोचर हुआ—

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ।
आख्यातुं तद् यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ॥ २१, १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।
ददृशुर्दीप्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ॥ २१, ८ ॥

यम और रावण की सेनाओं में तुमुल युद्ध हुआ । यम की सेना घबराने लगी । फिर क्या था, यम ने ब्रह्मदत्त कालदण्ड उठा कर रावण पर प्रहार करना चाहा इसी बीच ब्रह्माने आकर यम को यह कह कर रोका कि, रावण का देवताओं आदि से अवध्यता का वरदान मुझसे मिला हुआ है, अतः मेरे वाक्य को झूठा मत करो—

ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥ २२, ३३ ॥
तस्मिन् प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम् ।
यमं पितामहः साक्षात् दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥ २२, ३८ ॥
"वैवस्वत ! महाबाहो न खल्वमितविक्रम ।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥ २२, ३९ ॥
वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव ।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥ २२, ४० ॥
यो हि मामनृतं कुर्याद् देवो वा मानुषोऽपि वा ।
त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः" ॥ २२, ४१ ॥

यम उनकी बात मान रथ घोड़े सहित वहीं अदृश्य हो गये । दशग्रीव अपनी जय घोषणा करते हुए यमलोक से बाहर निकल आया—

एष तस्मात् प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः ।
इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २२, ४९ ॥
दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ २२, ५० ॥

फिर नागलोक को जीतता हुआ निवात कवच नामक दानवों पर चढ़ाई की । वहाँ अनेक वर्ष तक युद्ध चलता रहा । ब्रह्मा जीने ही वहां भी दोनों में

सन्धि करवायी। वहाँ कुछ दिन रह कर रावण ने सैंकड़ों माया सीखी और वरुण पर विजय प्राप्त करने के हेतु पाताल को ओर प्रस्थान किया—

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत्तदा ॥ २३, १४ ॥
अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः।
स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः॥ २३, १५ ॥
तत्रोपधाय मायानां शतमेकं समाप्तवान्।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम्॥ २३, १६ ॥

रास्ते में कालकेयों पर आक्रमण कर रावण ने अपने बहनोई शूर्पणखाके पति-विद्युज्जिह्व को तलवार से काट डाला —

ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम्।
गत्वा तु कालकेयाँश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान्॥ २३, १७ ॥
शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत् तदा।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम्॥ २३, १३ ॥

इसके बाद वरुणलोक में वहाँ दूध टपकाती हुई सुरभि गायको देखा और वरुण लोक पर विजय प्राप्त कर लङ्का लौट आया—

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम्।
यस्याः पयोऽभिनिष्पन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः॥ २३,११ ॥
ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम्।
यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः॥ २३, २२ ॥
यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजनम्॥ २२, २३ ॥

वहाँ से अपनी मौसेरी बहन कुम्भीनसी के अपहर्ता मधु का दण्डित करने तथा इन्द्र पर चढ़ाई करने के लिए एक बड़ी विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया—

अक्षौहिणी सहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम्।
नानाप्रहणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम ॥ २५, ३३ ॥
इन्द्रजित् त्वग्रतः सैन्यात् सैनिकान् परिगृह्य च।
जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः॥ २५, ३४ ॥

कुम्भीनसी ने अपने पति मधु का प्राणदान मांगा और रावण ने उसे वह वर दे दिया—

भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद।
नहीदृशं भयं किंचित् कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ २५, ४२ ॥
भयानामपि सर्वेषां वैधव्य व्यसनं महत् ॥ २५, ४२ ॥
तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात् ॥ २५, ४६ ॥

फिर रावण ने मधु को साथ ले अपनी विशाल सेना को इन्द्रविजय के अभियान में कैलाश पर पड़ाव डाला और रम्भा नामकी अप्सरा का सम्भोग किया—

स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः।
देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥ २६, ३९ ॥
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः।
एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ २६, ४० ॥
कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे।

रम्भा का दुःखद वृत्तान्त सुनकर धनदपुत्र नलकूबर ने रावण को शाप दिया—

अकामा तेन यस्मात् त्वं बलाद् भद्रे प्रधर्षिता ॥ २६, ५४ ॥
तस्मात् स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति।
यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ २६, ५५ ॥
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ॥ २६, ५५॥ ॥

उसके अनन्तर रावण ने सदल बल इन्द्र पर चढ़ाई की। वहाँ घोर संग्राम हुआ। अन्त में इन्द्र रावणपुत्र इन्द्रजित् द्वारा बन्दी बनाकर लङ्का लाये गये। पितामह ब्रह्मा ने रावण तथा इन्द्रजित् को छुड़ाने का शुल्क दिया। इन्द्र को व्यथित देख ब्रह्मा ने उनसे स्पष्ट कहा कि यह सब अपमान तुम्हारे अपने कुकृत्य का फल है। तुमने अहल्या का धर्षण किया था। इससे क्रुद्ध हो गौतम मुनि ने तुम्हें शाप दिया था। यह उस शाप का ही फल तुम भोग रहे हो—

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो।
एकवर्णा समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ ३०, १९ ॥
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ॥ ३०, २० ॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।
यद् यद् प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत् तदुद्धृतम् ॥ ३०, २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ ३०, २२ ॥

यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तिता ॥ ३०, २३ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ।
भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ ३०, २४ ॥

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरंदर ॥ ३०, २५ ॥

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः ।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ ३०, २६ ॥

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः ।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥ ३०, २७ ॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥ ३०, २८ ॥

त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः ।
दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ३०, २९ ॥

सा त्वया धर्षिता शक्र ! कामार्तेन समन्युना ।
दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥ ३०, ३० ॥

तत क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ।
गतोऽसि येन देवेन्द्रः दशाभागविपर्ययम् ॥ ३०, ३१ ॥

"यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात् ।
तस्मात्त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि" ॥ ३०, ३२ ॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३०, ३३ ॥

"यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद् ध्रुवः स न भविष्यति ।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥ ३०, ३५ ॥

फिर मुनि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को भी अनवस्थित स्वभाव के

कारण क्रुद्ध हो उस आश्रम के निकट ही अदृश्यरूप में रहने का शाप दिया—

तां तु भार्यां मुनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत् सुमहातपाः ।
"दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ ३०, ३६ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात् त्वमनवस्थिता ।
तस्माद् रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३०, ३७ ॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः ।
यत् तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ॥ ३०, ३८ ॥

इन्द्र के मुनिवेष को नहीं पहचानने के कारण ही यह धर्षणा हुई, कामवश नहीं । अतः अहल्या ने दया की भीख मांगी—

अज्ञानाद् धर्षिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा ।
न कामकाराद् विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३०, ४० ॥

गौतम मुनि ने प्रसन्न हो कर कहा, "जब पूर्ण ब्रह्म विष्णु मानव रूप में—राम नाम से—अवतार ले तुम्हें दर्शन देंगे तब तुम्हारा उद्धार होगा । उन्हीं को तुम्हें पवित्र करने का सामर्थ्य है"—

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।
"उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ३०, ४१ ॥

रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ ३०, ४२ ॥

तां द्रक्ष्यसि यदा भद्रे तदा पूता भविष्यसि ।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ३०, ४३ ॥

ब्रह्मा ने कहा—"यह सब तुम्हारे दुष्कर्म के फलस्वरूप मुनि के शाप से प्राप्त हुआ है । अब तुम विष्णु यज्ञ कर पवित्र हो जाओ"—

शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।
तत् स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत् त्वया कृतम् ॥ ३०, ४६ ॥

तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव ।
शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥ ३०, ४७ ॥

विष्णु यज्ञोपरान्त इन्द्र स्वर्ग जाकर वहाँ शासन करने लगे—

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ।
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट् ॥ ३०, ४९ ॥

रावण का सर्वत्र विजय ही विजय सुन श्री राम ने अगस्त्य जी से प्रश्न किया "भगवन्, उस काल कोई ऐसा वीर नहीं था जो रावण को नीचा दिखाता ?"

भगवन् ! राक्षसः क्रो यदा प्रभृति मेदिनीम् ।
पर्यटत् किं तदा लोकाः शून्या आसन् द्विजोत्तम ॥ ३१, २ ॥
राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।
धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३१, ३ ॥

इस पर अगस्त्य जी ने कहा—अवश्य, था क्यों नहीं ? उसे कार्तवीर्य अर्जुन से हारकर बन्दी बनना पड़ा जिसे पुलस्त्य मुनि ने छुड़ाया—(पहली हार)

ततो माहीष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।
सम्प्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद् वसुरेतसः ॥ ३१, ७ ॥
तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद् वसुरेतसः ।
अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ३१, ८ ॥
ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।
भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरामिव ॥ ३२, ७१ ॥
राक्षसांस्त्रासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥ ३२, ७२ ॥
एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात् प्रधर्षणम् ।
पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥ ३३, २१ ॥

अगस्त्य जी ने आगे कहा—एक से एक वीर हैं, इस पृथ्वी पर, अपना कल्याण चाहनेवाला उनकी अवहेलना न करे—

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ३३, २२ ॥

(रावण की दूसरी पराजय) किष्किन्धा जाकर बालि को लड़ाई के लिए रावण ने आह्वान किया वहाँ न मिलने पर दक्षिण समुद्रतट पर गया—

ततः कदाचित् किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।
गत्वाह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३४, ३ ॥
जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन् महार्णवम् ॥ ३४, १६ ॥

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः।
पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः॥ ३४, २८॥

वहाँ वाली ने रावण को काँख में दबाकर चारों समुद्र में परिभ्रमण कराया। संध्योपासन से लौट कर वाली रावण को कांख में ढोते हुए किष्किन्धा पहुँचा और उसे मुक्त कर पूछा "तुम कौन हो और कहां से आये हो ?"

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत्॥ ३४, ३३॥

रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात् कपिसत्तमः
'कुतस्त्वमिति' चोवाच प्रहसन् रावणं मुहुः। ३४, ३४॥

रावण ने कहा, "हे वानरेन्द्र, मैं राक्षसेन्द्र रावण आपसे युद्ध करने को आया था, सो आज वह मुझे अच्छी तरह शिक्षा मिल गयी--

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः।
युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया॥ ३४, ३६॥

फिर दोनों में दृढ़ सन्धि हो गई--

अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसः।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव॥ ३४, ४३॥

(हनुमान् की जन्म कथा)

हनुमान जी जनमते ही सूर्य को फल समझ उन्हें खाने के लिए ऊपर आकाश में उछले। उसी तिथिको सूर्य को निगलने के लिए राहु आया हुआ था। हनुमान् जी उसको फल समझ निगलनेके लिए उद्यत हुए—

बालार्काभिमुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान्।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः॥ ३५, २४॥

किसी ने जाकर इन्द्र से शिकायत की। इन्द्र ने आकर हनुमान् पर वज्र-प्रहार किया। हनुमान् मृतप्राय हो भूमि पर आ गिरे। पुत्र की दशा देख वायु को क्रोध हुआ और उन्होंने अपना सञ्चार बन्द कर दिया। सारा जगत ही इससे अस्त व्यस्त हो गया। ब्रह्मा को लेकर सारी प्रजा वायु के पास आई--

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः।
हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत्॥ ३५, ४६॥

तस्मिंस्तु पतिते चापि वज्रताडनविह्वले।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः॥ ३५, ४७॥

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः।
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः॥ ३५, ५९॥

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन्।
शरीरं हि विना वायुं शमतां याति दारुभिः॥ ३५, ६०॥

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत्।
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत्॥ ३५, ६१॥

अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा।
अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः॥ ३५, ६२॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः॥ ३५, ६४॥

ब्रह्मा ने आकर शिशु हनुमान् का स्पर्श किया और उसमें पुनः चेतना आ गयी—

तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना।
वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान्॥ ३६, ३॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलिलं पद्मजन्मना।
जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान्॥ ३६, ४॥

वायुदेव ने प्रसन्न हो अपना सञ्चार आरम्भ किया और तब सारी प्रजा के प्राण में प्राण आये—

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा।
चचार सर्वभूतेषु संनिरुद्धं यथा पुरा॥ ३६, ५॥

मरुद्रोधाद् विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिताऽभवन्।
शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः॥ ३६, ६॥

ब्रह्मा ने सभी देवताओं से कहा कि इस बालक से भविष्य में प्रजाओं का ही हित होने वाला है, अतः उसे बड़े बड़े वरदान दिये जाँय—

ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत् त्रिधामा त्रिदशार्चितः।
उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया॥ ३६, ७॥

"भो महेन्द्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वराः।
जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम्॥ ३६, ८॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्त्तव्यं वो भविष्यति।
तत् ददध्वं वरान् सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये"॥ ३६, ९॥

सूर्य ने अपना शतांशतेज दिया। और उसे आगे शास्त्र-ज्ञान कराने का वचन दिया—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ ३६, ६ ॥

ब्रह्मा ने अपनी सभी ब्रह्मास्त्रों से अभयदान दिया। उन्होंने उसे कामरूप, कामचारी, कामग और अव्याहतगति होने के वरदान किये—

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद् वचः।
"सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति" ॥ ३६, २१ ॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत ! मारुतिः ॥ ३६, २३ ॥

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ ३६, २४ ॥

श्रीराम ने अगस्त्य जी से पूछा कि हनुमान् अद्वितीय बलशाली रहने पर भी अपने अन्तरङ्ग प्रिय सुग्रीव को वाली से क्यों नहीं त्राण दिया। ऋषि ने कहा- इसका कारण एक मुनि का शाप था। जब तक हनुमान् को अपने बल का स्मरण नहीं कराया जाता, उन्हें अपना बल भूला सा रहता था।"

ऋषिशापाहृतबलस्तदैव कपिसत्तमः।
सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे ॥ ३६, ४३ ॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप — सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥ ३६, ४४ ॥

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टुमना कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥ ३६, ४५ ॥

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्धयति वै कपीन्द्रः।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥ ३६, ४६ ॥

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ ३६, ४७ ॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥ ३६ ४८ ॥

अगस्त्य जी ने श्रीराम से कहा— "सभी वीर, भालू तथा वानर, देवताओं के

अवतार थे, जो रावण वध के लिए जन्म लिए हुए थे। उनका जन्म आपके निमित्त हुआ था। हे राम ! आपने हनुमान् के विषय में जो प्रश्न किया था, मैंने उसे सुना दिया''—

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः सुग्रीवमैन्दद्विपदाः सनीलाः।
सतारतारेयनला सरम्भास्त्वत्कारणात् राम ! सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ३६, ४९ ॥
गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रो मैन्दः प्रभो ज्योतिमुखो नलश्च।
एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रैस्त्वत्कारणाद् राम ! सुरैर्हि सृष्टाः ॥३६, ५०॥

तदेतत् कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
हनूमतो बालभावे कर्मैतत् कथितं मया ॥ ३६, ५१ ॥

राज्याभिषेक के पश्चात् राजा जनक को विदा काल में जो रत्न दिये गये उन्हें उन्होंने अपनी बेटी सीता जी को दे देने को कहा—

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै।
दुहित्रे तान्यहं राजन् सर्वाण्येव ददामि ते ॥ ३८, ७ ॥

युधाजित् ने भी उन्हीं को रत्नादि वापस कर दिये —

युधाजित् तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव।
रत्नानि च धनं चैव त्वय्येवाक्षय्यमस्त्विति ॥ ३८, ११ ॥

श्रीराम ने अन्यान्य भक्त राजाओं को रावण विजय का श्रेय उनकी सद्भावना को ही दिया और अपने को एक निमित्तमात्र बताया—

युष्माकं चानुभावेन तेजसा च महात्मनाम्।
हतो दुरात्मा दुर्बुद्धी रावणो राक्षसाधमः ॥ ३८, २३ ॥
हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः।
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः ॥ ३८, २४ ॥

श्रीराम की बातों से राजाओं की प्रसन्नता—

एतत् त्वय्युपपन्नं च यदस्माँस्त्वं प्रशंससे।
प्रशंसार्हं न जानीमः प्रशंसां वक्तुमीदृशम् ॥ ३८, ३० ॥

राजाओं ने श्रीराम के प्रति प्रीति मांगी—

आपृच्छामो गमिष्यामो हृदिस्थो नः सदा भवान्।
वर्तामहे महाबाहो प्रीत्यात्र महता वृताः ॥ ३८, ३१ ॥
भवेच्च ते महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा।

श्री राम ने कहा—'ऐसा ही होगा'—

बाढमित्येव राजानो हर्षेण परमान्विताः ॥ ३८, ३२ ॥

श्रीराम के दिये हुए रत्नोपहार को ऋक्ष, वानर एवं राक्षसों ने अपने अङ्गों पर धारण कर लिये—

ते सर्वे रामदत्तानि रत्नानि कपिराक्षसाः ।
शिरोभिर्धारयामासुर्भुजेषु च महाबलाः ॥ ३९, १५ ॥

हनूमन्तं च नृपतिरिक्ष्वाकूणां महारथः ।
अङ्गदं च महाबाहुमङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥ ३९, १६ ॥

अङ्गद और हनुमान् पर विशेष सद्भाव रखने के लिये सुग्रीव से श्रीराम की सिफारिश—

रामः कमलपत्राक्षः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
"अङ्गदस्ते सुपुत्रोऽयं मन्त्री चाप्यनिलात्मजः ॥ ३९, १७ ॥
सुग्रीव ! मन्त्रिणौ युक्तौ मम चापि हिते रतौ ।
अर्हतो विविधां पूजां त्वत्कृतो वै हरीश्वर" ॥ ३९, १८ ॥

श्रीराम ने अपने अङ्ग से अपने भूषणों को उतार कर हनुमान् और अङ्गद को पहना दिया—

इत्युक्त्वा व्यपमुच्याङ्गाद् भूषणानि महायशाः ।
स बबन्ध महार्हाणि तदाङ्गदहनूमतोः ॥ ३९, १९ ॥

हनुमान्‌जी ने श्रीराम से अविरल एवं अनन्य भक्ति मांगी—तथा जब तक श्री राम कथा पृथिवी पर प्रचरित रहे तब तक अपने जीवन धारण करने की इच्छा प्रकट की—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥ ४०, १६ ॥
यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥ ४०, १७ ॥

श्री राम ने कहा, ऐसा ही होगा'। उन्होंने फिर कहा—"हनुमान्, मैं तो तुम्हारे एक एक उपकार के लिये अपने प्राणों को निछावर कर सकता हूँ। मैं तो चाहता यह हूँ कि तुम्हारे उपकार का ऋण मुझ में पचता रहे। कभी वह दिन न आये जब तुम्हें मेरे उपकार की आवश्यकता हो।" फिर उन्होंने अपना कण्ठहार उतार कर उनके गले में डाल दिया—

एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥ ४०, १९ ॥

तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः ॥४०, २२॥

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्योपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥ ४०, २३ ॥

मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥ ४०, २४ ॥

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्ठात् स राघवः।
वैदूर्यतरलं कण्ठे बबन्ध च हनूमतः ॥ ४०, २५ ॥

ऋक्ष वानरादिकों का प्रस्थान—

ततस्तु ते राक्षसऋक्षवानराः प्रणम्य रामं रघुवंशवर्धनम्।
वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाः प्रतिप्रयातास्तु यथानिवासिनः ॥ ४०, ३१ ॥

कुबेर ने पुष्पक विमान को विजयी श्रीराम की ही सेवा में रहने की आज्ञा दी और वह आकर श्रीराम के सामने उपस्थित हुआ—

निर्जितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना।
निहत्य युधि दुर्धर्षं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ४१, ५ ॥

ममापि परमा प्रीतिर्हते तस्मिन् दुरात्मनि।
रावणे सगणे चैव सपुत्रे सहबान्धवे ॥ ४१, ६ ॥

स त्वं रामेण लङ्कायां निर्जितः परमात्मना।
वह सौम्य तमेव त्वमहमाज्ञापयामि ते ॥ ४१, ७ ॥

श्रीराम ने उसे यथासुख निर्विघ्न आकाश में विचरने को कहा और यह भी कहा कि जब स्मरण किया जाय तब तुम उपस्थित हो जाओ—

गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा।
सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योजय ॥ ४१, १४ ॥

भरत ने हाथ जोड़कर श्रीराम से उनके राज्याभिषेक काल से अघटित घटनाओं के अस्तित्व का उल्लेख किया—

विबुधात्मनि दृश्यन्ते त्वयि वीर प्रशासति।
अमानुषाणि सत्त्वानि व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ॥ ४१, १७ ॥

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्।
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव ॥ ४१, १८ ॥

आरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः।
ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वरः।
कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा ॥ ४१, २१॥

श्रीराम और सीता की दिन चर्यायें—

पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित्।
शेष दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥ ४२, २७॥

सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै।
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासामविशेषतः ॥ ४२, २८॥

श्रीसीता में आगन्तुक उत्तराधिकारी के आगमन का शुभलक्षण देख श्रीराम की प्रसन्नता—

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ४२, ३०॥

सीता के विषय में पुरवासीगण क्या कहते हैं? वैसा सुनकर ही कार्य करूँगा। आप लोग निःसन्देह सुनाइए, ऐसा श्रीराम ने गुप्तचरों से कहा—

कथयस्व यथातत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ॥ ४३, ९॥
शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः।
श्रुत्वेदानीं शुभं कार्यं न कुर्यामशुभानि च ॥ ४३, १०॥

कथयस्व च विस्रब्धो निर्भयो विगतज्वरः।
कथयन्ति यथा पौराः पापा जनपदेषु च ॥ ४३, ११॥

श्री राम से गुप्तचरों ने सीता के विषय में पु·वासियों की धारणा को इस प्रकार बताया कि श्रीराम ने समुद्र में पुल बाँध कर रावण जैसे महाप्रतापी दुर्धर्ष शत्रु का वध कर दिया यह तो महान् दुष्कर कार्य किया, किन्तु बहुत दिन रावण के घर में निवास की हुई सीता को लाकर अपने घर में रख लिया है, यह कैसा अनुचित कार्य है। अब तो हम लोगों के घर में भी ऐसा ही सहन करना पड़ेगा, क्योंकि जैसा राजा करता है, प्रजा भी वैसा उसका अनुवर्तन करती है।

दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतुबन्धनम्।
अश्रुतं पूर्वकैः कैश्चिद् देवैरपि सदानवैः ॥ ४३, १४॥

रावणश्च दुराधर्षो हतः सबलवाहनः।
वानराश्च वशं नीता ऋक्षाश्च सह राक्षसैः ॥ ४३, १५॥

हत्वा च रावणं संख्ये सीतामाहृत्य राघवः।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म पुनरानयत् ॥ ४३, १६॥

कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम्।
अंकमारोप्य तु पुरा रावणेन बलाद्धृताम् ॥ ४३, १७ ॥

लंकामपि पुरा नीतामशोकवनिकां गताम्।
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्स्यति ॥ ४३, १८ ॥

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते ॥ ४३, १९ ॥

अन्य उपस्थित सज्जनों ने भद्रक के कथन का अनुमोदन किया--

सर्वे तु शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च।
प्रत्यूचू राघव दीनमेवमेतन्न संशयः ॥ ४३, २२ ॥

यह सुन श्रीराम ने गोष्ठी भङ्ग कर दी--

श्रुत्वा तु वाक्यं काकुत्स्थः सर्वेषां समुदीरयन्।
विसर्जयामास तदा वयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥ ४३, २३ ॥

श्रीराम ने तीनों भाइयों को शीघ्र बुलवाया--

शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
भरतं च महाभागं शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ ४४, २ ॥

सब भाई आकर श्रीराम के सम्मुख उपस्थित हुए—

द्वाःस्थस्त्वागम्य रामाय सर्वानेव कृताञ्जलिः।
निवेदयामास तथा भ्रातॄन् स्वान् समुपस्थितान् ॥ ४४, ११ ॥

श्रीरामने लक्ष्मण को सम्बोधित कर कहा— "लक्ष्मण ! तुम्हारे सामने सीता की शुद्धता की परीक्षा अग्नि द्वारा हुई। अग्नि ने प्रकट हो सीता को मेरे हाथ समर्पण किया। मै स्वयं सीता को अपापा जानता हूँ'—

प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः ॥ ४४, ७ ॥

अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः।
चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां संनिधौ पुरा ॥ ४४, ८ ॥

ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम्।
एवं शुद्धसमाचारां देवगन्धर्वसंनिधौ ॥ ४४, ९ ॥

लंकाद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता।
अन्तरात्मा च मेऽवेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम् ॥ ४४, १० ॥

किन्तु लोकापवाद को मैं अनदेखी नहीं कर सकता हूँ—

अयं तु मे महान् वादः शोकश्च हृदि वर्तते।

पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ॥ ४४, ११ ॥

अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।
पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ॥ ४४, १२ ॥

अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ।
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम् ॥ ४४, १३ ॥

अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरुषर्षभाः ।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥ ४४, १४ ॥

'लक्ष्मण ! तुम कल प्रातः काल ही सीता को अपने विषय से दूर वाल्मीकि, आश्रम के निकट छोड़ कर चले आओ'--

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे ! सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ।
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ॥ ४४, १६ ॥

गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ।
आश्रमो दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः ।

तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम ॥ ४४, १८ ॥

राम ने कहा, मेरी आज्ञा के विषय में कुछ कहना सुनना नहीं है' --

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च ।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन ॥ ४४, २१ ॥

अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् ।

लक्ष्मण ने सीता से वाल्मीकि आश्रम चलने का कहा । क्योंकि ऐसा आदेश राजा ने उन्हें गत रात में ही दिया है--

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।
नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥ ४६, ७ ॥

गङ्गातीरे मया देवि ! ऋषीणामाश्रमाञ्छुभान् ।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात् पार्थिवस्य नः ॥ ४६, ८ ॥

अरण्ये मुनिभिर्जुष्टे अवनेया भविष्यसि ।

रथ द्वारा गंगा तीर पहुँच, नाव से गङ्गा पार कर, लक्ष्मण ने सीता से उनके त्याग की बात कही—

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ।
पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवि न तेऽन्यथा ॥ ४७, १३ ॥

आश्रमान्तेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ।

लक्ष्मण की बात को सुनकर सीता विषाद में डूब गई और मूच्छित हो गिर पड़ी--

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारुणं जनकात्मजा ॥ ४७, १३ ॥
परं विषादमागम्य वैदेही निपपात ह ॥ ४८, १ ॥

उन्होंने संज्ञा आने पर लक्ष्मण से कहा कि आज ही मैं गंगा में डूब कर प्राण त्याग देती, यदि मेरे गर्भ में राजवंश का धरोहर नहीं रहता—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥ ४८, ८ ॥

सीता ने लक्ष्मण को श्रीराम से कहने के लिए संदेश दिया और अपने को देखने को कहा कि वह गर्भावस्था में है—

वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥ ४८, १४ ॥
यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा ॥ ४८, १५ ॥
यथापवादं पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥ ४८, १७ ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः ।
इति मद्वचनाद् रामो वक्तव्यो मम संग्रहः ॥
निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम ॥ ४८, १८ ॥

लक्ष्मण ने उनकी प्रदक्षिणा कर कहा—"देवि ! मैंने पहले भी कभी आप के पैरों के अतिरिक्त आप की सूरत नहीं देखी, फिर अभी कैसे देख सकता हूँ, विशेष कर श्रीराम की अनुपस्थिति में।"—

प्रदक्षिणं च तां कृत्वा रुदन्नेव महास्वनः ।
ध्यात्वा मुहूर्तं तामाह किं मां वदसि शोभने ॥ ४८, २० ॥
दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे ।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ॥ ४८, २१ ॥

वाल्मीकि मुनि ने शिष्यों से सुना कि महाराज दशरथ की गर्भवती पुत्रवधू आश्रम में आयी हुई है ऐसा जान, उसके पास जाकर उसे आश्वस्त करते हुए अपने आश्रम में रहने को कहा—

स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया ।
जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते ॥ ४९, ११ ॥

अपापां वेद्मि सीते ते तपोलब्धेन चक्षुषा ।
विस्रब्धा भव वैदेहि सम्प्राप्तं मयि वर्तसे ॥ ४९, १४ ॥

लौटते समय लक्ष्मण को दुःखी देख सुमन्तने कुछ रहस्योद्घाटन कर लक्ष्मण को सान्त्वना दी । 'भृगु के शापवश विष्णु के रूप में श्रीराम को स्त्रीवियोग-जन्य दुःख हो रहा है'—

ततस्तां निहतां दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्वहः ।
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम् ॥ ५०, १४ ॥

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः ।
तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ॥

तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम् ॥ ५०, १५ ॥

शाप देने के बाद भृगु मुनि का ग्लानि हुई, किन्तु विष्णु ने सहर्ष वह शाप ग्रहण कर लिया--

तपसाऽऽराधितो देवो ह्यब्रवीद् भक्तवत्सलः ॥ ५०, १७ ॥
लोकानां सम्प्रियार्थं तु तं शापं गृह्यमुक्तवान् ।

दुर्वासा मुनि ने आपके पिता राजा दशरथ से यह बात कह कर श्रीराम को विष्णु का अवतार बताया—

इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ॥ ५०, १८ ॥
इहागतो हि पुत्रत्वं तव पार्थिवसत्तम ।
राम इत्यभिविख्यातस्त्रिषु लोकेषु मानद ॥ ५०, १९ ॥

घर आकर लक्ष्मण ने सीता के संदेश श्रीराम को सुना कर कहा—"प्रभो, आप आश्वस्त हों । आप जैसे बुद्धिमान् कालगति को देख शोक नहीं करते"—-

मा शुचः पुरुषव्याघ्र ! कालस्य गतिरीदृशी ।
त्वद्विधा नहि शोचन्ति बुद्धिमन्तो मनस्विनः ॥ ५२, १० ॥

सर्वे क्षयान्तानिचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ५२, ११ ॥

तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च ।
नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैध्रुवम् ॥ ५१, १२ ॥

रामराज्य में एक ब्राह्मण ने अपने मृत बालक को श्रीराम के समीप लाकर कहा कि राम ! यह मेरा पुत्र राजदोष के कारण ही मर गया है । आप इसको जीवित कर दीजिये—

राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।
असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ ७३, १६ ॥

यद् वा पुरेष्वयुक्तानि जना जनपदेषु च ।
कुर्वते न च रक्षास्ति तदा कालकृतं भयम् ॥ ७३, १७ ॥

सुव्यक्तं राजदोषो हि भविष्यति न संशयः ।
पुरे जनपदे चापि तथा बालवधो ह्ययम् ॥ ७३, १८ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्य मुहुर्मुहुः ।
राजानं दुःखसंतप्तः सुतं तमुपगूहति ॥ ७३, १९ ॥

उस दुःखी ब्राह्मण की बातों से श्रीराम का आन्तरिक दुःख हुआ । उन्होंने शीघ्र ही उन्होंने मन्त्रिपरिषद बुलाई, जिसमें वसिष्ठादि प्रमुख न्याय एवं धर्मवेत्तागण थे । श्रीराम ने ब्राह्मण की सारी बातें परिषद् को सुनाई—

स दुःखेन च संतप्तो मन्त्रिणस्तानुपाह्वयत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च भ्रातृंश्च सह नैगमान् ॥ ७४, २ ॥

ततो द्विजा वसिष्ठेन सार्धमष्टौ प्रवेशिताः ।
राजानं देवसंकाशं वर्धस्वेति ततोऽब्रुवन् ॥ ७४, ३ ॥

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च काश्यपः ।
कात्यायनोऽथ जाबालिर्गौतमो नारदस्तथा ॥ ७४, ४ ॥

एते द्विजर्षभाः सर्वे आसनेषूपवेशिताः ।
महर्षीन् समनुप्राप्तानभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ७४, ५ ॥

मन्त्रिणो नैगमांश्चैव यथार्हमनुकूलतः ।
तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥

राघवः सर्वमाचष्टे द्विजोऽयमुपरोधते ॥ ७४, ६ ॥

अनेक ऊहापोह के अनन्तर ब्रह्मर्षि नारद ने निष्कर्ष निकाल कर श्रीराम से कहा कि मेरी बातों को सावधानी से सुनकर उस पर कार्य करें—

शृणु राजन् यथाकाले प्राप्तो बालस्य संक्षयः ।
श्रुत्वा कर्तव्यतां राजन् कुरुष्व रघुनन्दन ॥ ७४, ८ ॥

पुरा कृतयुगे राजन् ब्राह्मणा वै तपस्विनः ।
अब्राह्मणस्तदा राजन् न तपस्वी कथंचन ॥ ७४, ९ ॥

तस्मिन् युगे प्रज्वलिते ब्रह्मभूते त्वनावृते ।
अमृत्यवस्तदा सर्वे जज्ञिरे दीर्घदर्शिनः ॥ ७४, १० ॥

ततस्त्रेतायुगं नाम मानवानां वपुष्मताम्।
क्षत्रिया यत्र जायन्ते पूर्वेण तपसान्विताः॥ ७४, ११॥

वीर्येण तपसा चैव तेऽधिकाः पूर्वजन्मनि।
मानवा ये महात्मानस्तत्र त्रेतायुगे युगे॥ ७४, १२॥

ब्रह्मक्षत्रं च तत्सर्वं यत् पूर्वमवरं च यत्।
युगयोरुभयोरासीत् समवीर्यसमन्वितम्॥ ७४, १३॥

अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विशेषमधिकं ततः।
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सम्मतम्॥ ७४, १४॥

तस्मिन् युगे प्रज्वलिते धर्मभूते ह्यनावृते।
अधर्मः पादमेकं तु पातयत् पृथिवीतले॥ ७४, १५॥

अधर्मेण हि संयुक्तस्तेजो मन्दं भविष्यति॥ ७४, १६॥

आमिषं यच्च पूर्वेषां राजसं च मलं भृशम्।
अनृतं नाम तद्भूतं पादेन पृथिवीतले॥ ७४, १७॥

ततः पादमधर्मस्य द्वितीयमवतारयत्।
ततो द्वापरसंख्या सा युगस्य समजायत॥ ७४, २३॥

अस्मिन् द्वापरसंख्याने तपो वैश्यान् समाविशत्।
त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् क्रमाद् वै तप आविशत्॥ ७४, २५॥

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान धर्मश्च परिनिष्ठितः।
न शूद्रो लभते धर्मं युगतस्तु नरर्षभ॥ ७४, २६॥

यो ह्यधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य च॥ ७४, २९॥

करोति चाश्रीमूलं तत् पुरे वा दुर्मतिर्नरः।
क्षिप्रं च नरकं याति स च राजा न संशयः॥ ७४, ३०॥

जो राजा धर्मपूर्वक राज्य करता है, वह प्रजा के सुकर्म के छठे भाग के फल का अधिकारी होता है—

अधीतस्य च तप्तस्य कर्मणः सुकृतस्य च।
षष्ठं भजति भागं तु प्रजा धर्मेण पालयन्॥ ७४, ३१॥

ब्राह्मणबालक-सम्बन्धी कार्य से निवृत्त हो श्रीराम महर्षि अगस्त्य के आश्रम में आकर एक रात ठहरे और उनसे विविध विषयों पर वार्तालाप किया। मुनि ने राम को सर्वदा विष्णुरूप ही माना था—

उवाच महातेजाः कुम्भयोनिर्महातपाः।

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ ! दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ७६, २५ ॥

त्वं मे बहुमतो राम ! गुणैर्बहुभिरुत्तमैः ।
अतिथिः पूजनीयश्च मम राजन् ! हृदि स्थितः ॥ ७६, २६ ॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामागतं शूद्रघातिनम् ।
ब्राह्मणस्य तु धर्मेण त्वया जीवापितः सुतः ॥ ७६, २७ ॥

उष्यतां चेह रजनीं सकाशे मम राघव ।
प्रभाते पुष्पकेण त्वं गन्तासि पुरमेव हि ॥ ७६, २८ ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमांस्त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्त्वं सनातनः ॥ ७६, २९ ॥

इदं चाभरणं सौम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
दिव्यं दिव्येन पुरुषा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ७६, ३० ॥

'किसी के दिये हुए दान को फिर दान कर देने से महान् फल होता है' 'अतः इस आभरण का दान आप ग्रहण करें' ऐसा अगस्त्य जी ने श्रीरामजी से कहा—

प्रतिगृह्णीष्व काकुत्स्थ ! मत्प्रियं कुरु राघव ! ।
दत्तस्य हि पुनर्दाने सुमहत् फलमुच्यते ॥ ७६, ३१ ॥

भरणे हि भवान्शक्तः फलानां महतामपि ।
त्वं हि शक्तस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसः ॥ ७६, ३२ ॥

तस्मात् प्रदास्ये विधिवत् तत् प्रतीच्छ नराधिप ।

"क्षत्रिय को ब्राह्मण से दान लेना तो गर्हित है" इस शंका का समाधान श्रीराम ने अगस्त्य जी से चाहा—

अथोवाच महात्मानमिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ७६, ३३ ॥

रामो मतिमतां श्रेष्ठः क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ।
प्रतिग्रहोऽयं भगवन् ! ब्राह्मणस्याविगर्हितः ॥ ७६, ३४ ॥

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं भवेत् ततः ।
प्रतिग्रहो हि विप्रेन्द्र क्षत्रियाणां सुगर्हितः ॥ ७६, ३५ ॥

ब्राह्मणेन विशेषेण दत्तं तद् वक्तुमर्हसि ।

महात्मा अगस्त्य जी का श्रीराम की शंका का निवारण—

आसन् कृतयुगे राम ब्रह्मभूते पुरायुगे ।
अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः सुराणां तु शतक्रतुः ॥ ७६, ३७ ॥

ताः प्रजा देववेशं राजार्थं समुपाद्रवन् ।
"सुराणां स्थापितो राजा त्वया देव ! शतक्रतुः ॥ ७६, ३८ ॥
प्रयच्छास्मासु लोकेश पार्थिवं नरपुङ्गवम् ।
यस्मै पूजां प्रयुञ्जाना धूतपापश्चरेमहि ॥ ७६, ३९ ॥
न वसामो विना राजा एष नो निश्चयः परः ।
ततो ब्रह्मा सुरश्रेष्ठो लोकपालान् सवासवान् ॥ ७६, ४० ॥
समाहूयाब्रवीत् सर्वांस्तेजो भागान् प्रयच्छत ।
ततो ददुर्लोकपालाः सर्वे भागान् स्वतेजसः ॥ ७६, ४१ ॥
अक्षुपच्च ततो ब्रह्मा यतो जातः क्षुपो नृपः ।
तं ब्रह्मा लोकपालानां समांशैः समयोजयत् ॥ ७६, ४२ ॥
ततो ददौ नृपं तासां प्रजानामीश्वरं क्षुपम् ।
तत्रैन्द्रेण च भागेन महीमाज्ञापयन्नृपः ॥ ७६, ४३ ॥
वारुणेन तु भागेन वपुः पुष्यति पार्थिवः ।
कौबेरेण तु भागेन वित्तपा मां ददौ तदा ॥ ७६, ४४ ॥
यस्तु याम्योऽभवद् भागस्तेन शास्ति स्म स प्रजाः ।

'मेरे उद्धारार्थ इन्द्रभाग से स्थित इस दान को आप ग्रहण करें।" ऐसा अगस्त्य जी ने कहा—

तत्रेन्द्रेण नरश्रेष्ठ भागेन रघुनन्दन ।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते तारणार्थं मम प्रभो ॥ ७६, ४५ ॥

तब श्रीराम ने उस दिव्याभरण को ग्रहण कर लिया—

तद्रामः प्रतिजग्राह मुनेस्तस्य महात्मनः ।
दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥ ७६, ४६ ॥

महर्षि अगस्त्य ने इक्ष्वाकुवंश का वृत्तान्त कह सुनाया जो मनु ने तपस्या के लिये जाते समय अपने बेटे से कहा था। दण्डकारण्य की उत्पत्ति कथा तथा राजा द्वारा शुक्राचार्य की पुत्री का धर्षण—

पुरा कृतयुगे राम ! मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।
तस्य पुत्रो महानासीदिक्ष्वाकुः कुलनन्दनः ॥ ७९, ५ ॥
तं पुत्रं पूर्वकं राज्ये निक्षिप्य भुवि दुर्जयम् ।
पृथिव्यां राजवंशानां भव कर्तेत्युवाच तम् ॥ ७९, ६ ॥
तथैव च प्रतिज्ञातं पितुः पुत्रेण राघव ।
ततः परमसंहृष्टो मनुः पुनरुवाच ह ॥ ७९, ७ ॥

प्रीतोऽस्मि परमोदार ! कर्ता चासि न संशयः ।
दण्डेन च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥ ७९, ८ ॥

अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानुषेषु वै ।
स दण्डो विधिवन्मुक्तः स्वर्गं नयति पार्थिवम् ॥ ७६, ९ ॥

तस्माद् दण्डे महाबाहो यत्नवान् भव पुत्रक ।
धर्मो हि परमो लोके कुर्वतस्ते भविष्यति ॥ ७९, १० ॥

कर्मभिर्बहुरूपैश्च तैस्तैर्मनुसुतस्तदा ।
जनयामास धर्मात्मा शतं देवसुतोपमान् ॥ ७९, १३ ॥

तेषामवरजस्तात सर्वेषां रघुनन्दन ।
मूढश्चाकृतविद्यश्च न शुश्रूषति पूर्वजान् ॥ ७९, १४ ॥

नाम तस्य च दण्डेति पिता चक्रेऽल्पमेधसः ।
अवश्यं दण्डपतनं शरीरेऽस्य भविष्यति ॥ ७९, १५ ॥

अपश्यमानस्तं देशं घोरं पुत्रस्य राघव ।
विन्ध्यशैवलयोर्मध्ये राज्यं प्रादादरिंदम ॥ ७९, १६ ॥

स दण्डस्तत्र राजाऽभूद् रम्ये पर्वतरोधसि ।
पुरं चाप्रतिमं राम ! न्यवेशयदनुत्तमम् ॥ ७९, १७ ॥

पुरस्य चाकरोन्नाम मधुमन्तमिति प्रभो ।
पुरोहितं तूशनसं वरयामास सुव्रतम् ॥ ७९, १८ ॥

अथ काले तु कस्मिंश्चिद् राजा भार्गवमाश्रमम् ।
रमणीयमुपाक्रामच्चैत्रे मासि मनोरमे ॥ ८०, ३ ॥

तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां भुवि ।
विचरन्तीं वनोद्देशे दण्डोऽपश्यदनुत्तमाम् ॥ ८०, ४ ॥

"त्वां प्राप्य तु वधो वापि पापं वापि सुदारुणम् ।
भक्तं भजस्व मां भीरु भजमानं सुविह्वलम्" ॥ ८०, १५ ॥

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोर्भ्यां प्राप्य बलाद्बली ।
विस्फुरन्तीं यथाकामं मैथुनायोपचक्रमे ॥ ८०, १६ ॥

शुक्राचार्य अपनी बेटी अरजा का राजा द्वारा प्रधर्षण सुन अतिकुपित हुए। उन्होंने सात दिनके भीतर उसे पुत्र-बान्धवसहित नष्ट हो जाने का शाप दिया--

सोऽपश्यदरजां दीनां रजसा समभिप्लुताम् ।
ज्योत्स्नामिव ग्रहग्रस्तां प्रत्यूषे न विराजतीम् ॥ ८१, २ ॥

'यस्मात् स कृतवान् पापमीदृशं घोरसंहितम् ।
तस्मात् प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥ ८१, ६ ॥

सप्तरात्रेण राजाऽसौ सपुत्रबलवाहनः ।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः'' ॥ ८१, ७ ॥

मुनि ने बेटी अरजा को भी शाप दिया—

इदं योजनपर्यन्तं सरः सुरुचिरप्रभम् ।
अरजे ! विज्वरा भुङ्क्ष्व कालश्चात्र प्रतीक्ष्यताम् ॥८१, १४॥

श्रीराम से अगस्त्य जी ने कहा—"तभी से यह बन दण्डकारण्य कहलाता है" यही दण्ड का राज्य है—

तस्यासौ दण्डविषयो विन्ध्यशैलयोर्नृप ॥ ८१, १८ ॥

शप्तो ब्रह्मर्षिणा तेन वैधर्म्ये सहिते कृते ।
ततः प्रभृति काकुत्स्थ ! दण्डकारण्यमुच्यते ॥ ८१, १९ ॥

श्रीराम ने अगस्त्यमुनि से अपनी पुरी अयोध्या जाने की अनुमति माँगी, इस विनम्रता से प्रसन्न हो मुनि ने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप सच्चिदानन्दघनभाव से ही उन से नाते की और सकुशल जाकर शासन करने को कहा—

अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम ! शुभाक्षरम् ।
पावनः सर्वभूतानां त्वमेव रघुनन्दन ! ॥ ८२, ९ ॥

मुहूर्तमपि राम ! त्वां येऽनुपश्यन्ति केन च ।
पाविताः स्वर्गभूताश्च पूज्यास्ते त्रिदिवेश्वरैः ॥ ८२, १० ॥

ये च त्वां घोरचक्षुर्भिः पश्यन्ति प्राणिनो भुवि ।
हतास्ते यमदण्डेन सद्यो निरयगामिनः ॥ ८२, ११ ॥

ईदृशस्त्वं रघुश्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ।
भुवि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ ८२, १२ ॥

त्वं गच्छारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ।
प्रसाधि राज्यं धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ ८२, १३ ॥

अगस्त्याश्रम से लौटकर श्रीराम ने अपने भाई लक्ष्मण और भरत से कहा, "ब्राह्मण का काम तो कर दिया, अब मैं तुम लोगों के साथ राजसूय-यज्ञ करना चाहता हूँ"—

कृतं मया यथा तथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् ।
धर्मसेतुमथो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवौ ॥ ८३, २ ॥

युवाभ्यामात्मभूताभ्यां राजसूयमनुत्तमम्।
सहितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मस्तु शाश्वतः॥ ८३, ५॥

सर्वाधार श्रीराम के पक्ष में राजसूय यज्ञ के प्रति भरत ने असहमति सकारण प्रकट की—

त्वयि धर्मः परः साधो त्वयि सर्वा वसुंधरा।
प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविक्रम॥ ८३ १०॥

पुत्राश्च पितृवद् राजन् पश्यन्ति त्वां महाबल।
पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामपि राघव॥ ८३, १२॥

स त्वमेवंविधं यज्ञमाहर्तासि कथं नृप।
पृथिव्यां राजवंशानां विनाशो यत्र दृश्यते॥ ८३, १३॥

श्रीराम ने भरत की बात सुनकर उसे युक्तियुक्त माना और यज्ञ के प्रति अनिच्छा प्रकट की—

एष्यदस्मदभिप्रायाद् राजसूयात् क्रतूत्तमात्।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहृतेन च॥ ८३, १९॥

लोकपीडाकरं कर्म न कर्तव्यं विचक्षणैः।
बालानां तु शुभं वाक्यं ग्राह्यं लक्ष्मणपूर्वज।
तस्माच्छृणोमि ते वाक्यं साधु युक्तं महाबल॥ ८३, २०॥

श्रीराम और भरत की बातें सुन लक्ष्मण ने अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा करते हुए इसके द्वारा इन्द्र ने ब्रह्महत्या से छुटकारा पाया था" वह प्रसंग भी कह सुनाया—

अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन॥ ८४, २॥

श्रूयते हि पुरावृत्तं वासवे सुमहात्मनि।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः॥ ८४, ३॥

देवताओं से अनुरोध करने पर भी विष्णु वृत्रासुर के सौहार्द्र के कारण स्वयं उसे बध करने की स्वीकृति नहीं दी किन्तु अपनी शक्ति, इन्द्र, वज्र और पृथ्वी में दे इन्द्र को ही उसे बध करने को कहा—

पूर्वसौहृदबद्धोऽस्मि वृत्रस्येह महात्मनः।
तेन युष्मत्प्रियार्थं हि नाहं हन्मि महासुरम्॥ ८५, ४॥

अवश्यं करणीयं च भवतां सुखमुत्तमम्।
तस्मादुपायमाख्यास्ये सहस्राक्षो वधिष्यति॥ ८५, ५॥

त्रैधाभूतं करिष्यामि आत्मानं सुरसत्तमाः ।
तेन वृत्रं सहस्राक्षो वधिष्यति न संशयः ॥ ८५, ६ ॥
एकांशो वासवं यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ।
तृतीयो भूतलं यातु तदा वृत्रं हनिष्यति ॥ ८५, ७ ॥

वृत्र को ध्यानावस्था में ही इन्द्र ने यथाविधि वज्रप्रहार से उसका विनाश किया—

तेषां चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरंदरः ।
वज्रं प्रगृह्य पाणिभ्यां प्राहिणोद् वृत्रमूर्धनि ॥ ८५, १३ ॥

कालाग्निनेव घोरेण दीप्तेनेव महार्चिषा ।
पतता वृत्रशिरसा जगत् त्रासमुपागमत् ॥ ८५, १४ ॥

इन्द्र को ब्रह्महत्या ने धर दबाया—

तमिन्द्रं ब्रह्महत्याऽऽशु गच्छन्तमनुगच्छति ।
आपतच्चास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःखमाविशत् ॥ ८५, १५ ॥

अश्वमेध से उन्होंने उस ब्रह्महत्या से मुक्त पाया—

ततोऽश्वमेधः सुमहान् महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृते ब्रह्महत्यायाः पावनार्थं नरेश्वर ॥ ८६, ९ ॥

यज्ञ समाप्त्यनन्तर ब्रह्महत्या ने देवताओं से अपने रहने का स्थान बताने को कहा—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ब्रह्महत्या महात्मनः ।
अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं क्व मे स्थानं विधास्यथ ॥ ८६, १० ॥

देवताओं ने उसे चार भागों में अपने को विभक्त करने को कहा—

ते तमूचुस्ततो देवास्तुष्टाः प्रीतिसमन्विताः ।
चतुर्धा विभजात्मानमात्मनैव दुरासदे ॥ ८६, ११ ॥

ऐसा कर उसने अपने निवास के चार स्थान माँगा। एक भाग चारमास बरसाती नदियों में, दूसरा भाग भूमि में, तीसरा भाग ऋतुमती स्त्रियों में और चौथा भाग ब्रह्महत्यारे आदिमें—

देवानां भाषितं श्रुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनाम् ।
संदधौ स्थानमन्यत्र वरयामास दुर्वसा ॥ ८६, १२ ॥
एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै ।
चतुरो वार्षिकान् मासान् दर्पघ्नी कामचारिणी ॥ ८६, १२ ॥

भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन सर्वदा।
वसिष्यामि न संदेहः सत्येनैतद् ब्रवीमि वः ॥ ८६, १४ ॥

योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु।
त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥ ८६, १५ ॥
हन्तारो ब्राह्मणान् ये तु मृषापूर्वमदूषकान्।
तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥ ८६, १६ ॥

देवताओं ने ब्रह्महत्या की मांग मान ली—

प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे।
तथा भवतु तत् सर्वं साधय त्वं यदीप्सितम् ॥ ८६, १७ ॥

उसके पश्चात् श्रीराम ने भी अश्वमेध यज्ञ की महत्ता के विषय में एक बहुत ही रोचक एवं विस्मयदायक-कथा बाह्लिक नरेश इल के सम्बन्ध में कह सुनायी जो इस यज्ञ द्वारा स्त्रीत्व से पुरुषत्व को प्राप्त किया था—

नान्यं पश्यामि भैषज्यमन्तरावृषभध्वजम्।
नाश्वमेधात् परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मनः ॥ ९०, १२ ॥

तस्माद् यजामहे सर्वे पार्थिवार्थे दुरासदम्।
कर्दमेनैवमुक्तास्तु सर्व एव द्विजर्षभाः ॥ ९०, १३ ॥
रोचयन्ति स्म तं यज्ञं रुद्रस्याराधनं प्रति।

यज्ञ सम्पन्नानन्तर रुद्र ने प्रसन्न हो देवताओं से पूछा कि, 'वाह्लिक का क्या प्रिय करूं ?"—

प्रीतोऽस्मि हयमेधेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः।
अस्य वाह्लिपतेश्चैव किं करोमि प्रियं शुभम् ॥ ९०, १७ ॥

द्विजों ने महादेवजी से 'इला को पुरुषत्व प्रदान करने के लिए प्रार्थना की—

तथा वदति देवेशे द्विधास्ते सुसमाहिताः।
प्रसादयन्ति देवेशं यथा स्यात् पुरुषस्त्विला ॥ ९०, १८ ॥

प्रसन्न हो महादेव ने इला को पुषत्व दे अदृश्य हो गये—

ततः प्रीतो महादेवः पुरुषत्वं ददौ पुनः।
इलायै सुमहातेजा दत्वा चान्तरधीयत ॥ ९०, १९ ॥

श्रीराम ने कहा, 'भाइयों ! इस यज्ञ का ऐसा प्रभाव है कि स्त्री हो जाने पर भी पुरुषत्व प्राप्त हो जाता है जो अत्यन्त दुर्लभ ही है—

ईदृशो ह्यश्वमेधस्य प्रभावः पुरुषर्षभौ।
स्त्रीभूतः पौरुषं लेभे यच्चान्यदपि दुर्लभम् ॥ ९०, २४ ॥

यज्ञस्थली में अपनी पत्नी के स्थान में सोने की सीता प्रतिमा की बनाकर आगे ले चलने की आज्ञा दें—

काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः ॥ ९१, २५ ॥

"जिस विधि और धूम-धाम से श्रीराम का यज्ञ हो रहा था, वैसा यज्ञ पहले कभी हुआ ही न था" ऐसा वृद्ध पुरुष कहते थे—

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिरजीविनः।
नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम् ॥ ९२, १४ ॥

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥ ९२, १९ ॥

उस यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि भी अपने दोनों शिष्यों लवकुश के साथ पधारे हुए थे। उन्होंने उन दोनों को तन्त्रीलयसमन्वित रामायण काव्य को घूम-घूम कर गान करने का आदेश दिया और यह भी कहा कि "यदि श्रीराम बुलाकर गाने को कहें तो विनीतभाव से उसका आदेश मानना—

वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमाद्भुते।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ ९३, १ ॥

स शिष्यावब्रवीद् हृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यं गीयतां परया मुदा ॥ ९३, ५ ॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते।
ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः ॥ ९३, ७ ॥

यदि शब्दापयेत् रामः श्रवणाय महीपतिः।
ऋषीणामुपविष्टानां यथायोगं प्रवर्तताम् ॥ ९३, १० ॥

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा।
प्रमाणैर्बहुभिस्तत्र यथोद्दिष्टं मया पुरा ॥ ९३, ११ ॥

लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा ॥ ९३, १२ ॥

इमास्तन्त्रीः सुमधुराः स्थानं वा पूर्वदर्शनम्।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरं गायतां विगतज्वरौ ॥ ९३, १४ ॥

आदिप्रभृति गेयं स्यान्न चावज्ञाय पार्थिवम्।
पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥ ९३, १५ ॥

तद् युवां हृष्टमनसौ श्वः प्रभाते समाहितौ।
गायतां मधुरं गेयं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ ९३, १६ ॥

ऋषि के आदेश सुन लवकुश दोनों भाइयों ने वैसा ही करना स्वीकार कर चल दिये—

संदिष्टौ मुनिना तेन तावुभौ मैथिलीसुतौ।
तथैव करवावेति निर्जग्मतुररिंदमौ ॥ ९३, १८ ॥

तामद्भुतां तौ हृदये कुमारौ निवेश्य वाणीमृषिभाषितां तदा।
समुत्सुकौ तौ सुखमूषतुर्निशां यथाश्विनौ भार्गवनीतिसंहिताम् ॥९३,१९

यथादिष्ट कुमारों ने दूसरे दिन यज्ञवाट में जाकर गाना आरम्भ कर दिया। श्रीराम आनन्दमग्न हो सुनने लगे। उन्हे बड़ा कुतूहल हुआ--

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम्।
अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम् ॥ ९४, २ ॥

प्रमाणैर्बहुभिर्बद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम्।
बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत् ॥ ९४, ३ ॥

रामायण का गायन सुनकर सबके सब हर्षान्वित हो, श्रीराम और गायक कुमार के रूप में सादृश्य पाने लगे--

हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ९४, १३ ॥

ऊचुः परस्पर चेदं सर्व एव समाहिताः।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ ॥ ९४, १४ ॥

जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च ॥ ९४, १५ ॥

आरम्भ से बीस सर्गों तक का गान हुआ। गान में किसी प्रकार की त्रुटि का भान नहीं हुआ। श्रीराम ने प्रत्येक गायक को अठारह अठारह सहस्र स्वर्णमुद्रायें दी। दोनों कुमारों ने उन्हें अस्वीकार करते हुए कहा कि "हम बनवासियों को स्वर्ण मुद्राओं से क्या प्रयोजन है--

एवं प्रभाषमाणेषु पौरजानपदेषु च।
प्रवृत्तमादितः पूर्वसर्ग नारददर्शितम् ॥ ९४, १६ ॥

ततः प्रभृति सर्गांश्च यावद् विंशत्यगायताम्।
ततोऽपराह्णसमये राघवः समभाषत ॥ ९४, १७ ॥

श्रुत्वा विंशतिसर्गांस्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः।

अष्टादश-सहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः ॥ ९४, १९ ॥
प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम् ।
ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक् पृथक् ॥ ९४, २० ॥
दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ ।
ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ ॥ ९४, २१ ॥
वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ ९४, २२ ॥

श्रीराम का प्रश्न मुनिदारकों से--

किं प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः क चासौ मुनिपुङ्गवः ॥ ९४, २४ ॥

श्रीराम को मुनिदारकों ने उत्तर दिया साथ ही साथ उन्होने श्रीराम से निवेदन किया कि यदि उ हें रामायण गान सुनने की रुचि हो तो वे कर्मान्तर में अनुज के साथ नित्य सुन सकते है—

वाल्मीकिर्भगवान् कर्ता समाप्तो यज्ञसंविधम् ।
यनेदं चरितं तुभ्यमशेषं सम्प्रदर्शितम् ॥ ९४, २५ ॥
संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम् ।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥ ९४, २६ ॥
आदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च ।
काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना ॥ ९४, २७ ॥
यदि बुद्धिः कृता राजञ्छ्रवणाय महारथ ।
कर्मान्तरे क्षणीभूतस्तच्छृणुष्व सहानुजः ॥ ९४, २९ ॥

कई दिनों तक श्रीराम मुनियों के साथ (रामायण) सुनते रहे--

रामो बहून्यहान्येव तद् गीतं परमं शुभम् ।
शुश्राव मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह वानरैः ॥ ९५, १ ॥

उस सभा में श्रीराम ने दूत को महर्षि वाल्मीकि से यह सवाद कहने को कहा कि, सीता अपनी शुद्धता का प्रमाण मुनि के समक्ष दें—

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा ।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥ ९५, ४ ॥

दूत ने मुनियों के निवास स्थान पर जा उन्हें प्रणाम कर श्रीराम का संवाद कह सुनाया। मुनि ने कहा—ऐसा ही होगा—

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा रामस्य च मनोगतम्।
विज्ञाय सुमहातेजा मुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ९५, ९ ॥

एवं भवतु भद्रं ते यथा वदति राघवः।
तथा करिष्यते सीता दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ॥ ९५, १० ॥

दूसरे दिन सम्पूर्ण सभासदों के समक्ष वाल्मीकि जी सीता को लेकर उपस्थित हुए--

तदा समागतं सर्वमश्मभूतमिवाचलम्।
श्रुत्वा मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥ ९६, १० ॥

तमृषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी।
कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम् ॥ ९६, ११ ॥

सभा में महर्षि वाल्मीकि श्रीराम को सम्बोधित कर कहने लगे "मैंने अपनी तपस्या के प्रभाव से जान लिया है कि सीता पूर्णरूप से पवित्र हैं—

इयं दाशरथे! सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात् परित्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥ ९६, १६ ॥
लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ९६, १७ ॥
इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९६, १८ ॥

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥ ९६, १९ ॥
अहं पञ्चसु भूतेषु मनः षष्ठेषु राघव।
विचिन्त्य सीता शुद्धेति जग्राह वननिर्झरे ॥ ९६, २२ ॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥ ९६, २३ ॥

मुनि की बात सुन श्रीराम ने कहा—"मैं आपकी बात मानता हूँ और स्वयं जानता हूँ कि यह शुद्ध है, किन्तु जनसमूह के विश्वास के लिये तो इसे प्रमाण देना ही होगा"—

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि धर्मवित्।
प्रत्ययस्तु मम ब्रह्मंस्तव वाक्यैरकल्मषैः ॥ ९७, २ ॥

लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ।
परित्यक्ता मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥ ९७, ४ ॥
जानामि चेमौ पुत्रौ मे मम जातौ कुशीलवौ ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ९७, ५ ॥

देवताओं और जनसमुदाय के समक्ष सीता की अपनी शुद्धता के लिए शपथ—और पृथ्वी से आश्रय माँगना—

सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी ॥ ९७, १३ ॥
"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ ९७, १४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ ९७, १५ ॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ ९७, १६ ॥

पृथिवी का फूटना । महानागों के मस्तक पर सिंहासनारुढ़ पृथिवी देवी का आना और उसके द्वारा सीता का उस पर बैठा लिये जाना—

तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत् तदद्भुतम् ।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ ७, १७ ॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः ।
दिव्यदिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः ॥ ९७, १८ ॥
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम् ।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत् ॥ ९७, १९ ॥

इस अद्भुत घटना को देख सबों को मोहित हो जाना —

सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा तेषामासीत् समागमः ।
तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं सम्मोहितं जगत् ॥ ९७, २६ ॥

श्रीराम को दुःसह दुःख और शोक हुआ । बहुत रोने के बाद प्रचण्ड क्रोधाभिभूत हो उन्होंने पृथिवी से सीता को यथारूप लौटाने को कहते हुए आगे कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो मैं पर्वत सहित पृथ्वी को नष्ट कर जलमय बना दूंगा—

स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन् ।

क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ९८, ३ ॥

"वसुधे देवि भवति ! सीता निर्यात्यतां मम ।
दर्शयिष्यामि वा रोषं यथा मामवगच्छसि ॥ ९८, ६ ॥

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात्तु मैथिली ।
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥ ९८, ७ ॥

तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे ।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥ ९८, ८ ॥

आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते ।
न मे दास्यसि चेत् सीतां यथारूपां महीतले ॥ ९८, ९ ॥

सपर्वतवनां कृत्स्नां विधयिष्यामि ते स्थितिम् ।
नाशयिष्याम्यहं भूमिं सर्वमापो भवन्त्विह ॥ ९८, १० ॥

श्रीराम को क्रोधाभिभूत देख देवताओं सहित ब्रह्मा ने श्रीराम को अपना वैष्णवभाव का स्मरण कराया—

राम राम न संतापं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं मन्त्रं चामित्रकर्शन ॥ ९८, १२ ॥

न खलु त्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम् ।
इमं मुहूर्तं दुर्धर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् ॥ ९८, १३ ॥

सीता के विना श्रीराम को सब कुछ सूना दीखता था। अनेकों यज्ञ किये, जिनमें सोने की प्रतिमा सीता का प्रतिनिधित्व करती थी, उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया—

अपश्यमानो वैदेहीं मेने शून्यमिदं जगत् ।
शोकेन परमायस्तो न शान्तिं मनसागमत् ॥ ९९, ४ ॥

इष्टयज्ञो नरपतिः पुत्रद्वयसमन्वितः ॥ ९९, ७ ॥

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः ।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥ ९९, ८ ॥

एवं वर्षसहस्राणि बहून्यथ ययुः सुखम् ।
यज्ञैर्बहुविधं धर्मं वर्धयानस्य सर्वदा ॥ ९९, २० ॥

कुछ काल के बाद भरत के मामा युधाजित् द्वारा भेजे हुए गर्गमुनि ने आकर गन्धर्व विषय (सिन्धुघाटी के सुन्दर भूमाग) पर चढ़ाई कर उसे अधिकृत करने को कहा—

मातुलस्ते महाबाहो वाक्यमाह नरर्षभ ! ।
युधाजित् प्रीतिसंयुक्तं श्रूयतां यदि रोचते ॥ १००, ९ ॥
अयं गन्धर्वविषयः फलमूलोपशोभितः ।
सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः ॥ १००, १० ॥
तान् विनिर्जित्य काकुत्स्थ ! गन्धर्वनगरं शुभम् ॥१००, १२ ॥
निवेशय महाबाहो स्वे पुरे सुसमाहिते ।
अन्यस्य न गतिस्तत्र देशः परमशोभनः ।
रोचतां ते महाबाहो नाहं त्वामहितं वदे ॥ १००, १३ ॥

श्रीराम ने गर्गाचार्य से हाथ जोड़कर भरत के ही दो लड़कों की वहां ले जाने को कहा—

सोऽब्रवीद् राघवः प्रीतः साञ्जलिप्रग्रहो द्विजम् ।
इमौ कुमारौ तं देशं ब्रह्मर्षे विचरिष्यतः ॥ १००, १५ ॥
भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कल एव च ।
मातुलेन सुगुप्तौ तु धर्मेण सुसमाहितौ ॥ १००, १६ ॥

सेनायुक्त आये हुए भरत को जानकर भी कालपाश-बद्ध गन्धर्व रणभूमि में आ डटे, किन्तु निमेषमात्र में ही भरत ने उन्हें यमसदन पहुँचा दिया—

ते बद्धाः कालपाशेन संवर्तेन विदारिताः ।
क्षणेनाभिहतास्तेन तिस्रः कोट्यो महात्मना ॥ १०१, ८ ॥
तद् युद्धं तादृशं घोरं न स्मरन्ति दिवौकसः ।
निमेषान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥ १०१, ९ ॥

फिर तो भरत ने तक्षको तक्षशिला और पुष्कल को पुष्कलावती के राजसिंहासन पर बिठाया—

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते ।
गन्धर्वदेशे रुचिरे गान्धारविषये च सः ॥ १०१, ११ ॥

कुछ दिन के अनन्तर मुनिवेष में काल का आगमन हुआ। उन्होंने श्रीराम से मिलकर एकान्त में उनसे यही प्रतिज्ञा कराई कि यदि वार्ताकाल में कोई तीसरा व्यक्ति वहाँ पहुँच जाय तो उसका बध आपको करना होगा—

चोदितो राजसिंहेन मुनिर्वाक्यमभाषत ।
"द्वन्द्वे ह्येतत् प्रवक्तव्यं हितं वै यद्यवेक्षसे ॥ १०३, १२ ॥
यः शृणोति निरीक्षेद् वा स वध्यो भविता तव ।
भवेद् वै मुनिमुख्यस्य वचनं यद्यवेक्षसे ॥ १०३, १३ ॥

श्रीराम ने प्रतिज्ञा स्वीकार की और लक्ष्मण से ही द्वार पर रहने को कहा—

तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
द्वारि तिष्ठ महाबाहो ! प्रतिहारं विसर्जय ॥ १०३, १४ ॥

काल ने ब्रह्माजी का संवाद श्रीराम को सुनाकर कहा कि जिस काम के लिए आपने अवतार धारण किया था, वह काम और आपका समय भी पूरा हो गया अब आप निजधाम को पधारें—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
कृत्वा वासस्य नियमं स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १०४, १२ ॥
स त्वं मनोमयः पुत्रः पूर्णायुर्मानुषेष्विह।
कालोऽयं ते नरश्रेष्ठ समीपमुपवर्तितुम् ॥ १०४, १३ ॥

श्रीराम ने उसे सुनकर कहा—"ठीक है, मैं प्रस्थान करूंगा"—

श्रुत्वा मे देवदेवस्य वाक्यं परममद्भुतम्।
प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसम्भवा ॥ १०४, १७ ॥
त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः।

उसी सवाद के अभ्यन्तर दुर्वासा मुनि का श्रीराम के दर्शनार्थ वहाँ आगमन हुआ—

तथा तयोः संवदतोर्दुर्वासा भगवानृषिः ॥ १०८, १८ ॥
रामस्य दर्शनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागमत्।

उन्होंने लक्ष्मण को शीघ्र जाकर श्रीराम को सूचित करने को कहा, ऐसा न करने पर वे लक्ष्मण, राम और सबको शाप दे देंगे—

अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय।
अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि।
विषयं त्वां पुर चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥ १०५, ६ ॥

लक्ष्मण ने सर्वनाश को बचाने के लिये केवल अपने ही को बलि देना अच्छा समझा—

एकस्य मरणं मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशनम्।
इति बुद्धया विनिश्चित्य राघवाय न्यवेदयत् ॥ १०५, ९ ॥

लक्ष्मण ने जाकर कहा और श्रीराम ने आकर मुनि को भोजन कराया—

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा राघवः प्रीतमानसः।
भोजनं मुनिमुख्याय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १०५, १४ ॥

मुनिके चले जाने पर श्रीराम को प्रतिज्ञा की बात याद आई और वे चिन्ता-ग्रस्त हो गये--

तस्मिन् गते मुनिवरे स्वाश्रमं लक्ष्मणाग्रजः ।
संस्मृत्य कालवाक्यानि ततो दुःखमुपागमत् ॥ १०५, १६ ॥

धर्मात्मा लक्ष्मण ने श्रीराम से अनुरोध किया कि सहर्ष आप मेरा वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें--

जहि मां सौम्य विस्रब्धं प्रतिज्ञां परिपालय ।
हीनप्रतिज्ञाः काकुत्स्थ प्रयान्ति नरकं नराः ॥ १०६, ३ ॥

यदि प्रीतिर्महाराज यद्यनुग्राह्यता मयि ।
जहि मां निर्विशङ्कस्त्वं धर्मं वर्धय राघव ॥ १०६, ४ ॥

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने बहुत विचार कर श्रीराम से कहा कि जो घटना घटने वाली है, उसे मैंने अपने तपों के बल देख लिया है। 'राम ! तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो'—

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम् ।
लक्ष्मणेन वियोगश्च तव राम ! महायशः ॥ १०६, ८ ॥

त्यजैनं बलवान् कालो मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ।
प्रतिज्ञाया हि नष्टाया धर्मो हि विलयं व्रजेत् ॥ १०६, ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सदेवर्षिगणं सर्वं विनश्येत् तु न संशयः ॥ १०६, १० ॥

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण मैं तुम्हें त्यागता हूँ। सत्पुरुष के लिये त्यागना और वध दोनों समान है।"—

विसर्जये त्वां सौमित्रे ! मा भूद् धर्मविपर्ययः ।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्युभयं समम् ॥ १०६, १३ ॥

श्रीराम के निर्णय सुन लक्ष्मण ने सीधे सरयू में प्रवेश कर योगद्वारा प्राण त्याग किया—

स गत्वा सरयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि निःश्वासं न मुमोच ह ॥ १०६, १५ ॥

अनिःश्वसन्तं युक्तं तं सशक्राः साप्सरोगणाः ।
देवाः सर्षिगणाः सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥ १०६, १६ ॥

श्रीराम, भरत को राज्य देकर प्रयाण करना चाहते थे। इस पर भरत ने सौगन्ध खायी कि उन्हें श्रीराम के बिना कुछ प्रिय है ही नहीं—

सत्येनाहं शपे राजन्! स्वर्गभोगेन चैव हि।
न कामये यथा राज्यं त्वां विना रघुनन्दन ॥ १०७, ६ ॥

उन्होंने लव को उत्तर में और कुश को कौशल में अभिषेक कराया—

इमौ कुशीलवौ राजन्नभिषिच्य नराधिप।
कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ॥ १०७, ७ ॥

प्रजावर्ग ने भी श्रीराम को अपने साथ ही ले चलने का आग्रह किया, चाहे कहीं जाना हो वे उन्हीं के साथ जायेंगे—

ततः सर्वाः प्रकृतयो रामं वचनमब्रुवन्।
गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम! गमिष्यसि ॥ १०७, १२ ॥
तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर ॥ १०७, १४ ॥
एषा नः परमा प्रीतिरेष नः परमो वरः।
हृद्गता नः सदा प्रीतिस्तवानुगमने नृप ॥ १०७, १५ ॥

शत्रुघ्न को श्रीराम का संवाद मिला, उन्होंने दोनों बेटों को अभिषेक कराकर राज्य को बाँट दिया—

सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम्।
द्विधा कृत्वा तु तां सेनां माधुरीं पुत्रयोर्द्वयोः।
धनं च युक्तं कृत्वा वै स्थापयामास पार्थिवः ॥ १०८, १० ॥

शत्रुघ्न ने अयोध्या पहुँच श्रीराम से हाथ जोड़कर कहा, "दोनों कुमारों को अभिषेक कर आ रहा हूँ। आप के साथ चलने के लिये कृतनिश्चय हूँ—

सोऽभिवाद्य ततो रामं प्राञ्जलिः प्रयतेन्द्रियः।
उवाच वाक्यं धर्मज्ञं धर्ममेवानुचिन्तयन् ॥ १०८, १३ ॥
कृत्वाऽभिषेकं सुतयोर्द्वयो राघवनन्दन।
तवानुगमने राजन् विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ १०८, १४ ॥
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो वीर न शासनम्।
विहन्यमानमिच्छामि मद्विधेन विशेषतः ॥ १०८, १५ ॥

उसके बाद श्रीराम ने वसिष्ठ मुनि के निर्देशानुसार सभी अवधवासी प्राणियों को साथ ले महाप्रयाण किया। वानर भालुओं को भी साथ लिये। सुग्रीव ने आकर

कहा कि अंगद को राज्य सौंपकर मैं भी सम्मिलित होने के लिए को आ गया हूं—

एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः ।
प्रणम्य विधिवद् वीरं विज्ञापयतुमुद्यतः ॥ १०८, २२ ॥
"अभिषिच्याङ्गदं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर ।
तवानुगमने राजन् ! विद्धि मां कृतनिश्चयम्" ॥ १०८, २३ ॥

श्रीराम सुग्रीव के विना कहीं जाना नहीं चाहते थे—

सखे ! शृणुष्व सुग्रीव ! न त्वयाहं विना कृतः ।
गच्छेयं देवलोकं वा परमं वा पदं महत् ॥ १०८, २५ ॥

श्रीराम ने विभीषण को लंका पर शाश्वत शासन करने को कहा—

यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत् त्वं वै विभीषण ।
राक्षसेन्द्र महावीर्य ! लङ्कास्थः स्वं धरिष्यसि ॥ १०८, २७ ॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् तिष्ठति मेदिनी ।
यावच्च मत्कथा लोके तावद् राज्यं तवास्त्विह ॥ १०८, २८ ॥

हनुमान् जी से तबतक जीवन धारण करने को कहा जबतक श्रीराम कथा का प्रचार धराधाम पर होता रहे—

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
जीविते कृतबुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः ॥ १०८, ३२ ॥
मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ।
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥ १०८, ३३ ॥

जामवन्त, मैन्द, द्विविदादि पाँच ऋक्ष एवं वानरों को कलि के आरंभकाल तक जीवित रहने को कहा—

जाम्बवन्तं तथोक्त्वा तु वृद्धं ब्रह्मसुतं तदा ।
मैन्दं च द्विविदं चैव पञ्च जाम्बवता सह ।
यावत् कलिश्च सम्प्राप्तस्तावज्जीवत सर्वदा ॥ १०८, ३७ ॥

उनके अतिरिक्त सबों को महाप्रयाण में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी—

तानेवमुक्त्वा काकुत्स्थः सर्वांस्तानृक्षवानरान् ।
उवाच बाढं गच्छध्वं मया सार्धं यथोदितम् ॥ १०८, ३८ ॥

महाप्रस्थान का दृश्य—

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः ।
चकार विधिवद् धर्मं महाप्रास्थानिकं विधिम् ॥ १०९, ३ ॥

ततः सूक्ष्माम्बरधरो ब्रह्ममावर्तयन् परम् ।
कुशान् गृहीत्वा पाणिभ्यां सरयूं प्रययावथ ॥ १०९, ४ ॥

अव्याहरन् क्वचित् किंचिन्निश्चेष्टो निःसुखः पथि ।
निर्जगाम गृहात् तस्माद् दीप्यमानो यथांशुमान् ॥ १०९, ५ ॥

मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्रपशुबान्धवाः ।
सर्वे सहानुगा राममन्वगच्छन प्रहृष्टवत् ॥ १०९, १३ ॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः ॥ १०९, १४ ॥

नोच्छ्वसत् तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते ।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः ॥ १०९, २२ ॥

सरयू पहुँच कर महाप्रस्थान का अन्त । ब्रह्मा द्वारा अनेकों दिव्य विमानों की व्यवस्था—

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः ॥ ११०, १ ॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥ ११०, ३ ॥

आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः ।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥ ११०, ४ ॥

ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत ।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ११०, ८ ॥

ब्रह्मा ने श्रीराम का स्वागत किया—

ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि ।
हृष्टैः प्रमुदितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवं महत् ॥ ११०, २८ ॥

❀ इत्यार्षे संक्षिप्ते श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे उत्तरकाण्डम् ❀

卐 समाप्तं चेदं संक्षिप्तं वाल्मीकिरामायणम् 卐

शुद्धिपत्र

बालकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
तन्त्रालय	४	१८	तन्त्रीलय
घामत	,,	१३	धीमत:
क्ररं	७	१५	क्रूरं
तस्मद्	११	३३	तस्माद्
लाकपाल	२१	७	लोकपाल
प्रतोऽस्मि	२३	१६	प्रीतोऽस्मि
शोलेन	२८	२३	शीलेन

अयोध्याकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
जोवितु	३२	१५	जीवितु
स्वत्ययनानि	४०	४६	स्वस्त्ययनानि
गणाकार्ण	४६	११	गणाकीर्ण
त्राणि	४९	२१	त्रीणि
प्राञ्जाल	५५	४	प्राञ्जलि
वेगे	५६	१७	वेगेन
स्थता	६५	२८	स्थिता
स्प्राक्षा	७०	६	स्प्राक्षी:
उतीक्ष्य	७४	१८	उदीक्ष्य
उश्राण	७८	३	अश्रूणि
जनपते	९३	३१	जनपदे
सवेकामैश्च	१०६	४	सर्वकामैश्च
अश्रण्य	११०	४०	अश्रूण्य
वितुरायस्य	११६	४१	पितुरार्यस्य
विवर्तयतुम्	१२३	२१	व्यावर्तयितुम्
द्दष्टम्वपि	१२८	६	द्दष्टास्वपि
अंकनादाय	१३३	९	अंकेनादाय

अरण्यकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
दशम्	१४७	९	देशम्
समायं	१५२	२६	समार्यं
दागपाणि	१५६	३२	गदापाणि:
पत्रगा		१०	पन्नगा:
हनास्तान	१६०	४०	हतास्तात
महिषा	१७१	३	महिषी

किष्किन्धाकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
चारवाससी	२००	८	चीरवाससी
कामवक्षस्य	२११	२०	कामवृत्तस्य
,, मार्याविमऽस्मिम्			मार्याभिमर्शोऽस्मिन्‌
संवर्तयत्न	२१६	४८	संवर्तयत्न्
चापमद्यम	२१८	१२	चापमुद्यम्य

सुन्दर काण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
नव	२४३	१०	नैव
वाक्यैर्विधैश्च	२६१	१४	वाक्यैर्विविधैश्च
प्रकार	२७२	३४	प्राकार

लङ्काकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
शत्रन्	२८६	२८	शत्रून्
प्रत्यभिनाद्य	२९२	३८	प्रत्यभिनन्द्य
मम			मुखे
प्रच्छदयामास	३००	४४	प्रच्छादयामास
शरणं	३०१	४५	शरणं स्म
	३१२		६९के ८६वें श्लोक को ८७ वें के साथ मिलावें
व्यसाययुक्तो	३१३	४५	व्यवसाययुक्तो
नानाशास्त्र	३१४	४	नानाशस्त्र
रघो:	३२६	५४	घोर:
प्रष्टह्य	३४३	५	प्रगृह्य
पनद्मभो	३४४	१७	पद्मनाभो

उत्तरकाण्ड

अशुद्ध	पृ०	श्लो०	शुद्ध
कैकेयी	३५८	२७	कैकसी
लाकं	३६१	९	लोकं

सम्मति

डॉ० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी

भूतपूर्व-प्राक्टर : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

अध्यक्ष : साहित्य विज्ञान शास्त्रीमण्डल : उत्तरप्रदेश हिन्दीग्रन्थ अकादमी

श्री वाल्मीकिरामायण के इस संक्षिप्त रूप को पढ़ कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। श्री भागवत प्रसाद सिंह जी ने बड़ी कुशलता और सावधानी से इसमें आदि काव्य का सार दे दिया है। कथा-सूत्रों को मिलाए रखने के लिए हिन्दी में संक्षिप्त संकेत भी दे दिये हैं। इससे रामायण-प्रेमी पाठक कथा का पूरा रस प्राप्त कर सकते हैं। प० कृष्णमोहन (ठाकुर) शास्त्री ने इसमें एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी जोड़ दी है। इससे यह पुस्तक और भी उपयोगी हो गई है। मुझे यह पुस्तक बहुत अच्छी लगी है। मुझे आशा है कि इससे साधारण संस्कृत जानने वाले लोग भी लाभान्वित होंगे। श्री भागवत प्रसाद सिंह जी इस सार संकलन के लिए सभी धर्म और साहित्य प्रेमियों की बधाई के पात्र हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी